हिन्दी भाषा और उसका इतिहास

हिन्दी भाषा और उसका इतिहास

•

डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'
एम० ए० (हिन्दी संस्कृत), पी०-एच० डी० आर० ई० एस०
हिन्दी-विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अजमेर

किताब महल (होलसेल डिविजन) प्राइवेट लिमिटेड
रजिस्टर्ड ऑफिस : ५६-ए जीरो रोड, इलाहाबाद
१९६३

दो शब्द

विभिन्न विश्वविद्यालयों की एम० ए० (हिन्दी) परीक्षा के पाठ्यक्रम मे 'भाषा-विज्ञान' विषय के अन्तर्गत हिन्दी भाषा के इतिहास का अध्ययन भी सम्मिलित है। अब तक इस विषय पर डा० धीरेन्द्र वर्मा का "हिन्दी भाषा का इतिहास", डा० उदयनारायण तिवारी का "हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास", डा० श्यामसुन्दर दास का "हिन्दी भाषा" आदि मौलिक तथा कतिपय अन्य प्रश्नोत्तरात्मक ग्रन्थ उपलब्ध है। प्रथम तीन ग्रन्थ मौलिकता की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। अन्य छोटी पुस्तके उन्ही के आधार पर लिखी गई है। एम० ए० (हिन्दी) के छात्रों को भाषा-विज्ञान पढाते समय मुझे सदा यह अनुभव होता रहा है कि छात्रो को पाठ्यक्रम मे निर्धारित सामग्री के लिए पूर्वोक्त सभी पुस्तको की छान-बीन मे पर्याप्त् समय नष्ट करना पडता हे और फिर भी वे सन्तोषजनक स्वाध्याय नही कर पाते। इसका फल यह होता है कि वे कक्षा मे सुने हुए व्याख्यान पर ही निर्भर रह कर सन्तोष कर लेते है। मेरे कई छात्रो न इस विषय पर पाठ्यक्रम के अनुसार एक पुस्तक लिखने का आग्रह किया। अपने ज्ञान की सीमाओ की सकीर्णता से परिचित होते हुए भी मै अपने अध्ययनशील प्रिय छात्रो के उस आग्रह की उपेक्षा न कर सका। अतः उपलब्ध समस्त सामग्री का मथन करके मैंने प्रस्तुत पुस्तक लिखने का साहस किया है। जिन ग्रन्थो से इसके प्रणयन मे सहायता ली गई है, उनके नाम सहायक ग्रन्थ सूची में दे दिये गए है। छात्रो को विस्तृत अध्ययन के लिए उनका अवलोकन करना चाहिए।

प्रस्तुत पुस्तक लिखने मे मैंने राजस्थान के विश्वविद्यालयो का पाठ्यक्रम विशेष रूप से ध्यान मे रखा है और उसके अनुसार हिन्दी तथा अँगरेजी की पुस्तकों एव पत्र-पत्रिकाओ मे जहाँ-कही भी सामग्री मिली है, उसका मधु मैंने मधुमक्षिका-वृत्ति से सञ्चित किया है। अत इस पुस्तक मे अभिव्यक्त समस्त ज्ञान-रस उन ग्रन्थ-पुष्पो का है, जिनके अधिकारी विद्वान् जीवनोद्यान का शृगार करने मे ही सतत साधना-रत रहे है। मुझमे उतनी शक्ति और सामर्थ्य कहाँ, जो मै उनके समान साधना कर नए पुष्प महका सकूँ।

फिर भी मैंने उन विद्वानो के ग्रन्थ-रत्नो से जो ज्ञानज्योति प्राप्त की है, वही प्रस्तुत पुस्तक के रूप मे हिन्दी-भाषा और साहित्य के प्रेमी छात्रो के सामने सकोच-पूर्वक प्रस्तुत कर रहा हूँ।

मै उन सभी विद्वानो के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनके ग्रन्थों से मैंने इस पुस्तक के लेखन मे सहायता ली है—विशेपत मै गुरु-वृन्द डा० धीरेन्द्र वर्मा एव डा० उदयनारायण तिवारी का आभारी हूँ, जिनके ग्रन्थ सदैव मेरे अध्ययन-मार्ग का निर्देशन करते रहे है। किताव-महल के सञ्चालक श्रीयुत् एस० एन० अग्रवाल तथा जयपुर-शाखा के प्रवन्धक श्री चम्पालाल राका के प्रति भी मै अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना नही भूल सकता, जिन्होने इस पुस्तक के प्रकाशन मे पर्याप्त् तत्परता दिखाकर मेरे श्रम को प्रोत्साहित किया है।

आशा है, अधिकारी विद्वान् मुझे इस पुस्तक के सम्वन्ध मे अपने उचित परामर्श भेजकर आगामी सस्करण को अधिक उपयोगी वनाने मे योग देंगे तथा छात्र-गण इसके अध्ययन से लाभ उठाकर मेरे श्रम को सफल वनाएँगे।

रामनवमी,

सवत् २०२० वि०

बापूनगर, अजमेर

रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

सहायक ग्रन्थ

अँग्रेजी ग्रन्थ

1 Language—L. Bloomfield
2 Comparative Grammar of Sanskrit, Greek etc.—Franz Bopp
3 Article on the Origin of Brahmi Alphabet By I. J. S. Tarapurwala—Fourth Oriental Conference
4. Modern Indo Aryan Vernaculars—G. A. Grierson
5 Vedic Grammar—A. A. Macdoneli
6. Hindustani phonetics—Qadri
7. Manual of Sanskrit Phonetics—Uhlenbeck
8 The Origin and Development of the Bengali Language —Dr. chatarjee

सस्कृत-हिन्दी-ग्रन्थ

१ सस्कृत व्याकरण प्रवेशिका—डा० बाबूराम सक्सेना
२ हिन्दी-व्याकरण—कामताप्रसाद गुरु
३ प्राचीन लिपि माला—गौरीशकर हीराचद ओझा
४ भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी—सुनीतिकुमार चटर्जी
५ भारत की भाषाएँ और भाषा-सम्बन्धी समस्याएँ—चटर्जी
६. राजस्थानी भाषा—चटर्जी
७ व्रजभापा—डा० धीरेन्द्र वर्मा
८ हिन्दी भाषा का इतिहास—डा० धीरेन्द्र वर्मा
९ भाषा-रहस्य—पद्मनारायण आचार्य
१० भाषा-विज्ञान—डा० भोलानाथ तिवारी
११ सस्कृत का वैज्ञानिक अनुशीलन—विधुशेखर शास्त्री
१२ प्राकृत-प्रकाश—वररुचि
१३ सामान्य भाषा-विज्ञान—डा० बाबूराम सक्सेना
१४ हिन्दी ही क्यो—कमलादेवी गर्ग

१५. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया
१६. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० हीरालाल माहेश्वरी
१७. अवधी और उसका साहित्य—डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित
१८. हिन्दीभाषा का उद्गम और विकास—डा० उदयनारायण तिवारी
१९. भाषा-विज्ञान—डा० श्यामसुन्दर दास

सहायक पत्रिकाएँ

१ हिन्दी-अनुशीलन—डा० धीरेन्द्र वर्मा-विशेषांक—प्रयाग
२. सम्मेलन-पत्रिका—प्रयाग
३. नागरी प्रचारिणी पत्रिका—वाराणसी

विषय-सूची

१—पृष्ठभूमि

२—भारत के भाषा-परिवार

३—भारतीय आर्य भाषाओ का सक्षिप्त इतिहास

१२—खड़ी बोली हिन्दी के व्याकरण की रूपरेखा

१३—हिन्दी की संज्ञा

१४—हिन्दी-लिंग

१५—हिन्दी-वचन

विषय पृष्ठ

१६—हिन्दी के कारक-चिह्न

१७—हिन्दी-सर्वनाम

१८—हिन्दी-विशेषण

१९—हिन्दी-क्रिया

१ | पृष्ठभूमि

(क) भाषा

चर और अचर रूप मे दिखाई देने वाला समस्त विश्व दो प्रकार के भौतिक तत्वो पर आधारित है—

१—सूक्ष्म ध्वनि-तत्व

२—स्थूल रूप-तत्व

ये दोनो भौतिक तत्व परस्पर अन्योन्याश्रित है। जहाँ कोई ध्वनि होती है, वहाँ किसी न किसी रूप मे कोई स्थूल तत्व भी वर्तमान् रहता है। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि जहाँ कोई स्थूल-तत्व होता है, वहाँ किसी न किसी रूप मे कोई ध्वनि-तत्व भी व्याप्त या प्रकट भाव से रहता है। धरती से आकाश पर्यन्त इन्ही दोनो तत्वो के पारस्परिक अन्तर्भाव की जगत् के रूप मे अभिव्यक्ति हो रही है। कठोर और ठोस पर्वतो से जब वायु टकराती है, तो उन सूक्ष्म रूप मे व्याप्त ध्वनि प्रकट हो जाती है। बडी-बडी शिलाएँ शिखरो से टूट कर नीचे की ओर आती हुई कर्ण-भेदी ध्वनि उत्पन्न करती है। निर्झरो के रूप मे, पाषाणो की छाती चीर कर, बह चलने वाला जल ध्वनि को साथ लेकर ही अपना मार्ग बनाता है। नदियो की कल-कल सागर की गर्जना मे, अपने भीतर समाए हुए ध्वनि-तत्व का विराट् रूप मे साक्षात्कार करती है। जगलो, मैदानो, खेतो-खलिहानो और प्रासादो के उद्यानो मे पशु-पक्षियो, मनुष्यो आदि के स्थूल रूप के साथ वही ध्वनि-तत्व अभिन्न भाव से जुडा हुआ दिखाई देता है।

'भाषा' का अर्थ

सूक्ष्म ध्वनि-तत्व और स्थूल रूप-तत्व की यह अभिन्नता ससार की सबसे महत्वपूर्ण तथा आधारभूत घटना है। यदि यह घटना न हुई होती तो यह समस्त विश्व-प्रपच व्यर्थ हो जाता।

भाषा इस घटना की सज्ञा-व्यवस्था का परिणाम् है। स्थूल वस्तुएँ जब अपने ध्वनि-तत्व को लेकर प्रकट होती है, तो वे अपने रूप और क्रियाओ का बोध कराती है। भाषा उन रूपो और क्रियाओ की सज्ञाएँ निर्धारित करती है।

भाषा की सीमा

चूंकि सज्ञा-निर्धारण का कार्य सम्पन्न करने की क्षमता मानव और मानवेतर प्राणियो मे भिन्न-भिन्न प्रकार की है, इसलिए भाषा की भी एक सीमा है।

अचर जगत् मे भी सदैव क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती है। वायु चलती है, पर्वत टूटते है, जल बहता है, वृक्षादि उत्पन्न होकर बढते और सूख कर गिर जाते है। ये सब पदार्थ भी अपने अस्तित्व से सम्बद्ध विभिन्न भावो और व्यापारो की सूचना अपनी विभिन्न ध्वनियो से देते है। किन्तु इन सब जड पदार्थो मे सज्ञा-निर्धारण की क्षमता नही है।

पशु और पक्षी चलते-फिरते तथा मुख से ध्वनि उत्पन्न करते है। वे अपनी विभिन्न क्रियाओ-प्रतिक्रियाओ तथा भावो को अपने व्यापारो और ध्वनियो से प्रकट करते है। बछडे को देख कर गाय उसे दूध पिलाने एव प्यार दिखाने के लिए रँभाती है, बन्दर बालको को डराने के लिए घुडकी देता है तथा बैल दाने-चारे के अभाव मे अपने स्वामी को सीग दिखाता है। किन्तु इन सब जीवो के पास भी वह क्षमता नही है, जिससे सूक्ष्म ध्वनि-तत्व और स्थूल रूप-तत्व की घटनाओ को जोडने वाली सज्ञा-व्यवस्था हो सके।

मनुष्यो मे भी अनेक मनुष्य ऐसे होते है, जो ऐन्द्रिक दुर्बलता के कारण उस क्षमता से रहित होते है। ऐसे मनुष्यो को क्रोध प्रकट करने के लिए मुक्का दिखाना पडता है और कृपा चाहने के लिए हाथ जोडने पडते है।

अत स्थूल रूप-तत्व का अनिवार्य धर्म होने पर भी सूक्ष्म ध्वनि-तत्व उस सज्ञा-व्यवस्था मे सब का साथ नही दे पाता, जिसे भाषा कहा गया है।

सामान्य रूप से पशु-पक्षी और ऐन्द्रिक दृष्टि से दुर्बल मनुष्य भी अपना काम तो चलाते ही है। अत यदि यह कहा जाय कि उनके जगत् मे भी एक प्रकार की सज्ञा-व्यवस्था रहती है, वे भी वस्तुओ और घटनाओ को किसी न किसी रूप मे पहचानते ही है, तो असगत न होगा। परन्तु उनकी सज्ञा व्यवस्था से वह सज्ञा-व्यवस्था भिन्न है, जिसे भाषा कहा गया है।

'मुक्का दिखाना' जिस भाव और क्रिया की सज्ञा है, उसका अर्थ सीमित है। इसी प्रकार के सीमित अर्थ को वे सब सज्ञाएँ प्रकट करती है, जो पशु-पक्षी या ऐन्द्रिक दुर्बलता-ग्रस्त मानवो के भावो और व्यापारो से सम्बन्ध रखती

है। अत वे सज्ञाएँ भापा नही कही जा सकती। यही कारण है कि पशु-पक्षियो या मूक प्राणियो आदि के कार्य-व्यवहार की क्षमता को भापा नही माना जाता।

भाषा की विशेषताएँ

वस्तुत भापा जिस सज्ञा-व्यवस्था को कहा गया हे, उसमे निम्नाकित विशेषताओ का होना आवश्यक है

१–ध्वनि-घटक

२–ध्वनि-घटक की निरर्थकता

३–निरर्थक ध्वनि-घटको का सार्थक आवर्तन

४–निरर्थक ध्वनि-घटको के सार्थक आवर्तन की एक विशेष व्यवस्था।

इन विशेपताओ को हम इस प्रकार समझ सकते है—

१ **ध्वनि-घटक**–जव हम क्, स्, र्, प्, आदि ध्वनियो का उच्चारण करते है, तव इन्हे ध्वनि-घटक कहा जाता है।

२. **ध्वनि-घटको की निरर्थकता**–क्, स्, र्, प्, आदि ध्वनि-घटक स्वतत्र रूप मे निरर्थक होते है। हम उनका अलग-अलग उच्चारण करके किसी अर्थ को उत्पन्न नही कर सकते।

३ **निरर्थक ध्वनि-घटको का सार्थक आवर्तन**–जव हम अपने मन का कोई भाव अर्थात् कोई अर्थ अन्य व्यक्ति को प्रेषित करते है, तव हमे ध्वनि-घटको मे आवर्तन उत्पन्न करना पडता है। यह आवर्तन अर्थ की दृष्टि से होने के कारण सार्थक हो जाता है। यथा, जव हम 'कलम' अर्थ प्रेपित करना चाहते है, तव क्, अ, ल्, अ, म्, अ—इन ६ ध्वनि-घटको को इस प्रकार रखते है कि उनसे मिलकर 'कलम' शव्द प्रेषित होता है, जो अभिप्रेत अर्थ वहन करता है। जव हमे 'कमल' का अर्थ प्रेषित करना होता है, तव हम उन्ही ६ ध्वनि-घटको का नए ढग से आवर्तन करते है।

४ **निरर्थक ध्वनि-घटको के सार्थक आवर्तन की एक विशेष व्यवस्था**–ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि जो ध्वनि-घटक स्वतत्र रूप मे निरर्थक थे, वे सार्थक आवर्तन मे एक विशेष व्यवस्था से रखे गये है। यदि यह व्यवस्था न होती, तो उनका आवर्तन सार्थक न हो पाता। यह व्यवस्था ही भाषा की पूर्णता की अन्तिम कडी है। सज्ञा-वोध इसी व्यवस्था पर निर्भर है। ध्वनि-घटक तो सीमित होते है। यदि वे सीमित न हो तो भाषा सर्वग्राह्य होने का गुण खो वैठे। इन सीमित ध्वनि-घटको का आवर्तन असख्य हे और उसी के लिए विशेष व्यवस्था चाहिए, जिससे प्रत्येक आवर्तन मे सार्थकता आ सके।

ये चारो विशेषताएँ पशु-पक्षियो की ध्वनि या मनुष्य के सकेत आदि मे नही होती, क्योकि––

१. उनसे सूचित सज्ञाएँ सीमित होती हैं।

२ उनके प्रारभिक सज्ञा-घटक, जैसे 'मुक्का दिखाना', 'भौहे चढाना', 'चिचियाना' या 'सीग दिखाना' आदि का भाषा के ध्वनि-घटको के समान आवर्तन नही हो सकता।

३. उनका प्रारभ मे जो अर्थ होता है, वही अर्थ सदैव बना रहता है, जैसे 'मारने' का अर्थ व्यक्त करने के लिए मुक्का दिखाया गया, तो उसका वही अर्थ रहेगा, किसी अन्य प्रकार से मुक्का दिखा कर हम प्यार करना आदि विपरीत तथा भिन्न अर्थों मे उसका आवर्तन नही कर सकते।

यो भाषा-प्रयोग से हीन प्राणियो के सज्ञा-घटक प्रारभ मे सार्थक होते हैं, पर आवर्तन की योग्यता से रहित होने के कारण विभिन्न अर्थो की उत्पत्ति नही करते, जबकि भाषा के प्रारभिक सज्ञा-घटक, जो ध्वनि-घटक कहे जाते हैं, अर्थ-हीन होते है, किन्तु आवर्तन की योग्यता के कारण वे विभिन्न अर्थों की सूचना देते हैं।

इसी अन्तर के आधार पर हम विश्व-रचना मे समाये हुए सूक्ष्म ध्वनि-तत्व का वह रूप उसके अन्य रूपो से पृथक् कर सकते हैं, जिसे अर्थ-हीन सीमित ध्वनि-घटको के सार्थक आवर्तन की एक विशेष व्यवस्था पर आधारित होने के कारण भाषा कहा जाता है।

भाषा के अग

पूर्वोक्त परिभाषा के अनुसार भाषा के स्पष्टत दो अग है––

(१) उच्चारण

(२) अर्थ

(१) **उच्चारण**––जब हम किसी सज्ञा-बोध को दूसरो तक पहुँचाने के लिए उत्सुक होते हैं, तो ध्वनि-घटको का एक विशेष व्यवस्था के साथ उच्चारण करते हैं। उच्चारण के अभाव मे ध्वनि-घटक का सूक्ष्म रूप प्रकट नही हो सकता।

(२) **अर्थ**––हम ध्वनि-घटको के उच्चारण मे आवर्तन की जो विशेष व्यवस्था करते हैं, उसका लक्ष्य कोई अर्थ होता है, जो श्रोता के पास जाता है। जब तक यह अर्थ श्रोता को प्राप्त नही होगा, तब तक 'भाषा' में उच्चारण मात्र से पूर्णता नही आ सकती।

पशु, पक्षी आदि की सज्ञा-व्यवस्था सीमित रहती है, इसलिए उनके

संज्ञा-घटक और उच्चारण मे अन्तर नही होता। किन्तु, मानवीय संज्ञा-व्यवस्था असीम है और ध्वनि-घटक सीमित होते है, इसलिए ध्वनि-घटक और उच्चारण का भेद भाषावैज्ञानिकों द्वारा स्वीकार किया जाने लगा है। इसी के साथ यह भी मान लिया गया है कि ध्वनि-घटक अर्थ-घटक (मोर्फीम) को जन्म देते है। ये अर्थ-घटक (मोर्फीम) अर्थ से भिन्न रह सकते है। यही कारण है कि प्रत्येक भाषा सीमित ध्वनियो और सीमित शब्दो से असख्य प्रकार के अर्थ व्यञ्जित करने मे समर्थ होती है। उसकी यह सामर्थ्य ध्वनि-घटको के सार्थक आवर्तन की विशेष व्यवस्था पर ही नही, अर्थ-घटको की एक विशेष व्यवस्था पर भी निर्भर है। यह अर्थ-घटक-व्यवस्था ही मानवीय भावो और विचारो को उस अभिव्यक्ति को अन्तिम पूर्णता देती है, जिसे भाषा कहा जाता है। अस्तु।

भाषा और विचार

'भाषा' शब्द मनुष्य-समाज मे भावो और विचारो की अभिव्यक्ति के एक सार्वजनीन साधन के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। इस शब्द के अर्थ-क्षेत्र मे मानवेतर जीवो की भाषा या मानव के इगित-व्यापार के लिए अब कोई स्थान नही है, यद्यपि प्रारभिक अवस्था मे इगित-व्यापार से काम चलाया जाना स्वाभाविक था। मनुष्य अपने भावो और विचारो की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्तिगत अर्थ मे भी ध्वनि-घटको के सार्थक आवर्तन की व्यवस्था करके शब्द-प्रयोग नही कर सकता, उसके लिए सार्वजनिक स्वीकृति अनिवार्य है, तभी उसकी अभिव्यक्ति को भाषा कहा जा सकता है। डा० बाबूराम सक्सेना ने लिखा है कि "जिन ध्वनि-चिह्नो द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, उनकी समष्टि को भाषा कहते है।"[1] उन्होने आगे लिखा है कि, "भाषा मनुष्य के केवल विचार-विनिमय का ही साधन नही है, विचार का भी साधन है।"[2] इस कथन का तात्पर्य यही है कि विचार, जिसे हम अर्थ के रूप मे पहले व्यक्त कर चुके है, भाषा का अनिवार्य अग है।

(ख) भाषा का विकास

भाषा की परिभाषा और उसकी सीमाओ को हम पीछे समझ चुके है और इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि भाषा मानव-समाज की वस्तु है, जो ध्वनि-घटक

---

१ सरल भाषा-विज्ञान--डा० बाबूराम सक्सेना, पृष्ठ ६

२. सरल भाषा-विज्ञान--डा० बाबूराम सक्सेना, पृष्ठ ९

उच्चारण, अर्थ-घटक, अर्थ और विचारणा के माध्यम से रूप प्राप्त करती है। अत ससार मे भाषा का विकास तभी प्रारम्भ हुआ होगा जब ये सब तत्व सघटित हो गये होग। ध्वनि-घटक और उच्चारण का सम्बन्ध यदि मनुष्य के मुख-विवर से है, तो अर्थ-घटक और अर्थ से विचारणा तक की प्रक्रिया मनुष्य के बौद्धिक विकास से जुडी हुई है। अत मनुष्य के प्रारभ के साथ ही भाषा प्रारभ हो गई हो, यह सभव नही है।

भाषा की उत्पत्ति के विषय मे विभिन्न अनुमान लगाए गए है। यथा- -

१ भाषा ईश्वर-प्रदत्त है

ससार की सभी सभ्य जातियो मे, जो किसी न किसी धर्म को मानती है, यह मान्यता पाई जाती है। लोगो का विश्वास है कि जिस दैवी शक्ति ने इस ससार को बनाया, उसी ने भाषा को भी उत्पन्न किया होगा। वैदिक धर्म को मानने वाले लोग वेदो को ब्रह्म की वाणी मानकर सस्कृत को देव-भाषा बतलाते है। ईसाई लोग 'ओल्ड टेस्टामेण्ट' ग्रन्थ की भाषा 'हिब्रू' को भगवान् द्वारा उत्पन्न मानते है। बौद्ध ईश्वर को नही मानते, पर वे भी 'पाली' को अपौरुषेय बताकर उसी मत की अभिव्यक्ति करते है। जैनियो के अनुसार 'अर्धमागधी' आदि भाषा है, जो मनुष्य के साथ ही उत्पन्न हुई है। प्लेटो ने सभी वस्तुओ के नामो को प्रकृति-प्रदत्त मान कर भाषा की अपौरुषेयता घोषित की है।

मिस्र के राजा सेमेटिक्स ने दो बालको को उनके जन्म लेने के उपरान्त समाज से अलग रख कर इस मान्यता की सच्चाई का पता लगाने की चेष्टा की थी। उसने देखा कि बडे होने पर वे बालक केवल 'बेकोस' शब्द बोल सके और वह शब्द भी उन्होने रोटी देने वाले फ्रीजियन नौकर से सुन लिया था। अकबर बादशाह ने भी इसी प्रकार का प्रयोग करके देखा था कि जिन बालको को समाज से अलग रखा गया वे भाषा से वञ्चित रह गए।

अत यह मान्यता कि भाषा ईश्वर-प्रदत्त या अपौरुषेय है, एक अनुमान मात्र है।

२. भाषा धातुओ से उत्पन्न हुई

जर्मन विद्वान् प्रो० हेस ने यह मत निकाला कि प्रारभ मे प्राकृतिक ध्वनियो के अनुकरण पर मनुष्य ने विभिन्न वस्तुओ और व्यापारो की सज्ञा-व्यवस्था की। इस व्यवस्था की ध्वन्यात्मक अभिव्यक्तियाँ धातु कहलाईं, जो प्रारम्भ मे बहुत अधिक थी, पर धीरे-धीरे उनमें से अधिकाश का लोप हो गया तथा ४००–५०० धातुएँ शेष रह गईं, जिनसे भाषा उत्पन्न

हुई। प्रो० हेस के शिष्य स्टाइन्थाल तथा मैक्समूलर ने भी प्रारभ मे इस मत का समर्थन किया ।

किन्तु यह मत भी अनुमान पर ही आधारित है। ससार की कुछ भाषाएँ हो ऐसी है, जिनमे धातुएँ उपलब्ध है, अन्यथा अधिकाश भाषाएँ धातु-हीन ही है। फिर भाषा की रचना मे ध्वनि-घटक और अर्थ-घटक का समान महत्व है। प्रत्यय, उपसर्ग आदि अर्थ-घटक धातु-जन्य नही माने जा सकते।

३. भाषा सार्वजनिक निर्णय से उत्पन्न हुई

यह एक तीसरी कल्पना है। कहा जाता है कि प्रारम्भ मे मनुष्यो ने अपना काम चलाने के लिए मिलकर विभिन्न ध्वनि-सकेतो, साकेतिक नामो, आदि का निर्णय किया, जिससे भाषा उत्पन्न हुई ।

यह मान्यता तो स्पष्टत एक हास्यास्पद अनुमान है, क्योकि न तो सब मनुष्यो का कही एकत्र होना सभव है और न किसी भाषा की पूर्व स्थिति के बिना निर्णयार्थ विचार-विनिमय ही सभव है।

४. भाषा अनुकरण से उत्पन्न हुई

यह चौथा अनुमान है। कहा जाता है कि मनुष्यो ने अपने पडौसी जीवो को ध्वनि करते देखा, उसी के अनुकरण पर उसने अपनी भाषा का विकास कर लिया। प्रत्येक भाषा मे कुछ ऐसे शब्द मिलते है, जो ध्वनि, अनुरणन और दृश्य आदि के अनुकरण पर बने है। बिल्ली 'म्याऊँ'-'म्याऊँ' करती है, तो उसके लिए 'म्याऊँ' या उसकी बोली के लिए 'म्याऊँ' शब्द बन गया, ऐसा माना जाता है। मिमियाना, दहाडना, हिनहिनाना, घुग्घू आदि शब्दो को ध्वनि के अनुकरण का उदाहरण कहा जाता है। कल-कल, छल-छल, ठक्-ठक् आदि शब्द अनुरणन का अनुकरण माने जाते है। 'बगबग' 'जगजग' आदि दृश्यात्मक अनुकरण की कोटि मे आते है।

परन्तु इन सीमित शब्दो से ही भाषा की उत्पत्ति सिद्ध नही की जा सकती। भाषा का अपार शब्द-कोष और उसकी असीम अर्थ-शक्ति अनुकरणोत्पन्न बताना भी अनुमान मात्र है।

५. भाषा मनोभावाभिव्यञ्जकता से उत्पन्न हुई

इस मत के प्रतिपादक बतलाते है कि मनुष्य ने आवेश मे आकर 'वाह वाह' 'उफ' 'छि' 'धत्' आदि शब्दो का उच्चारण किया और धीरे-धीरे इसी प्रकार उसकी भाषा का विकास हो गया।

परन्तु ससार की सभी भाषाओ मे ये शब्द समान रूप से नही मिलते। दूसरी बात यह कि सभी शब्दो को आवेशमूलक शब्दो से उत्पन्न नही माना

जा सकता। वास्तव मे ये शब्द भाषा के विकास के सूचक न होकर ह्रास के सूचक है, क्योकि जहाँ भाषा के पास भावो को व्यक्त करने के लिए शब्द नही होते, वहाँ इनका प्रयोग किया जाता है।

६. श्रम-परिहरण की चेष्टा से भाषा उत्पन्न हुई

यह उन लोगो की मान्यता है जो यह कहते है कि भाषा परिश्रम का कार्य करते समय श्वास की तीव्रता और स्वर-तन्त्रियो के कम्पन से उत्पन्न हुई। कठिन परिश्रम करने वाले 'हियो' 'सियो' 'हेहो' आदि शब्दो का श्वास लेने के लिए उच्चारण करते जाते है।

परन्तु भाषा की रचना के तत्वो पर विचार करते समय हम देख चुके है कि ध्वनि-घटक के साथ उसके सार्थक आवर्तन, अर्थ-घटको की व्यवस्था और अर्थ का अटूट सम्बन्ध है। परिश्रम करते समय ध्वनि से अर्थ और विचार तक की शब्द-यात्रा पर ध्यान नही रहता। फिर परिश्रम-जन्य थोडे से शब्दो से असख्य शब्दो और उनके भिन्न-भिन्न अर्थों का उत्पन्न होना भी सभव नही है।

७ इगितो से भाषा उत्पन्न हुई

जब पूर्वोक्त अनुमानो से काम न चला तो यह मत निकाला गया कि मनुष्य अपने अगो की क्रियाओ को ध्यान से देखकर उनके इगित ग्रहण करता रहा और उनसे भाषा बन गई। इस मत मे पशु-पक्षियो के अनुकरण से लेकर प्राकृतिक वस्तुओ के अनुकरण तक इगितो का ग्रहण करने की बात स्वीकार की गई है, किन्तु शारीरिक इगितो से उनका सम्बन्ध जोडा गया है। कहा गया है कि मनुष्य ने अपने शरीर मे विभिन्न हाव-भाव अनुभव किये और उनसे इगित ग्रहण करता रहा। ध्वनियो से सार्थक शब्दो की उत्पत्ति भी इस मान्यता के आधार पर बतलाई गई है। जैसे, 'र्' के उच्चारण मे जीभ दौडती है और 'म्' के उच्चारण मे रुकती है, इसलिए 'र्' से आरभ होने वाली धातुएँ 'गति' तथा 'म्' से आरभ होने वाली धातुएँ 'रोध' या 'चुप होने' के अर्थ में बनी।

किन्तु यह सिद्धान्त भी अनुमान के ही अधिक निकट है। यदि मनुष्य ने आरभ मे इतना ध्यान रखकर शरीर और वाणी के इगित ग्रहण किए, तो वह ससार भर मे भाषा-सम्बन्धी एकता क्यो नही रख सका? साथ ही, 'हिब्रू' की कुछ धातुएँ लेकर यह मत भले ही प्रतिपादित किया जाय, किन्तु सस्कृत, ग्रीक आदि भाषाओ मे ऐसा नियम नही मिलता कि सभी गत्यर्थक धातुएँ 'र्' ध्वनि से ही बनी हो।

८. सगीत से भाषा उत्पन्न हुई

डार्विन, स्पेन्सर तथा येसपर्सन आदि विद्वानो के मतो से इस मान्यता को बल मिला कि गायन से प्रारभ मे अर्थ-विहीन अक्षर बने तथा उनके विशेष प्रयोग से सार्थक शब्द उत्पन्न हो गए।

प्रारभ मे मनुष्य की प्रवृत्ति सगीत की ओर रही हो, यह तो माना जा सकता है, किन्तु उसने गाने के लिए ध्वनियो का उच्चारण करते-करते सार्थक भाषा बना डाली, यह बात हास्यास्पद है।

९ सामाजिक सम्पर्क से भाषा उत्पन्न हुई

इस मत का प्रतिपादन प्रो० रेवेज (Revesz) ने किया। उन्होने मनोविज्ञान का सहारा लेकर मनुष्य को पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करने को प्रवृत्ति से इस सिद्धान्त को निकाला। समाज मे रहन वाले सभी मनुष्य परस्पर सम्पर्क रखने के इच्छुक होते है। प्रारभिक मनुष्यो मे भी यह प्रवृत्ति रही होगी। सम्पर्क की प्रेरणा से मुख से ध्वनियो का उच्चारण होता गया और उनको सार्थक बनाने का अभ्यास चलता रहा। आरभ मे ध्वनियो मे जो स्वाभाविकता थी, वह धीरे-धीरे सम्पर्क की माँग को पूर्ण करने के लिए कृत्रिमता मे परिणत हो गई। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के व्यवहार के लिए विभिन्न शब्द निर्मित हुए।

यह मत भाषा और समाज के सम्बन्ध को ध्यान मे रखते हुए प्रतिपादित किया गया है। अत. इसमे ध्वनि-घटक से अर्थ तक की भाषा-प्रक्रिया का निर्वाह हुआ है। परन्तु समस्त भाषा का आविर्भाव इस अनुमान से भी सिद्ध नही होता।

१०. विभिन्न प्रवृत्तियो के समन्वय से भाषा उत्पन्न हुई

जब पूर्वोक्त किसी एक अनुमान से काम न चला तो 'स्वीट' आदि कतिपय विद्वानो ने समन्वय का सिद्धान्त निकाला। इस सिद्धान्त के अनुसार यह मान लिया गया कि भाषा की उत्पत्ति किसी एक प्रकार से नहीं हुई, बल्कि पूर्वोक्त सभी मार्गों से शब्द और अर्थ का सृजन व सामञ्जस्य हुआ। ध्वनियो की उत्पत्ति में दैवी शक्ति छिपी हुई है। प्राकृतिक ध्वनियो से भी मनुष्य ने कुछ शब्द बनाये। कुछ शब्द आस-पास के जीवो की बोली के अनुकरण पर बने। छल-छल, कल-कल जैसे शब्दो मे अनुरणन का अनुकरण काम करता है। स्वीट का कथन है कि आरभिक शब्द-समूह तीन प्रकार का रहा होगा—

१ अनुकरणात्मक—जैसे म्याऊँ, काँव-काँव, आदि।

२ मनोभावाभिव्यजक—जैसे ओह, आह, धत् आदि।

३ प्रतीकात्मक—जैसे मामा, वावा, पापा आदि।

प्रारभ को इस प्रकार को शब्दावली धीरे-धीरे वढती गई। सामाजिक सम्पर्क न इस शब्द-वृद्धि तथा अर्थ-व्यापकता मे योग दिया। सगीत और इगित के सिद्धान्तो से भी भापा के निर्माण मे योग मिला। यो धीरे-धीरे भाषा का एक ऐसा रूप उत्पन्न हुआ जिसने प्रारभिक मानव-समाज का काम चलाया। भाषा की उत्पत्ति के सम्वन्ध में विद्वानो की प्रतिभा इससे आगे कोई ऐसा अनुमान नही लगा सकी जिसके आधार पर भौतिक विज्ञानो की तरह कोई बात पूर्ण दृढता के साथ कही जा सके तथा दूसरे लोग उसे पूर्ण विश्वास के साथ स्वीकार कर सके। फिर भी जिन अनुमानो की ऊपर चर्चा की गई है, उनसे भाषा की उत्पत्ति के सम्वन्ध मे उठने वाली जिज्ञासा किसी सीमा तक शान्त हो ही जाती है।

मुख्य निष्कर्ष

भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे प्रतिपादित किये गये पूर्वोक्त सिद्धान्तो का सार लेकर हम यह कह सकते है कि विद्वानो ने क्रम-क्रम से यही अनुमान लगाया है कि

१ किस प्रकार ध्वनियाँ विकसित हुई,

२. किस प्रकार मनुष्य ने ध्वनियो से अर्थ-घटक वनाया ;

३ किस प्रकार उसने दृष्ट पदार्थों, क्रियाओ और मनोभावो या व्यापारो के लिए सज्ञा-व्यवस्था की, तथा

४ किस प्रकार उसकी उच्चारण और अर्थ-बोध की क्षमता का विकास हुआ।

यो ध्यान से देखा जाय तो भाषा मनुष्य-समाज की परम्परा मे दीर्घकाल तक विभिन्न स्तरो से शब्द और अर्थ के विकसित होते रहने का परिणाम् है। भाषा मे जो ध्वनियाँ या ध्वनि-घटक होते है, वे सार्थक नही है। उनका समूह भाषा नही है। भाषा का रूप देने के लिए ध्वनि-घटको का व्यवस्थित आवर्तन करने और उस आवर्तन मे विभिन्न अर्थो का आरोप करने के लिए मानव-समाज को वर्षो तक सतत प्रयास करना पडा होगा। यह प्रयास ही भाषा को विचारो की अभिव्यक्ति और विचारणा का साधन बना सका। अत. भाषा की उत्पत्ति किसी एक सिद्धान्त से मानना व्यर्थ है। हमे किसी भी भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए उसके सतत विकास की प्रक्रिया को

सदैव ध्यान मे रखना चाहिए। सबसे पहले मनुष्य की जो भाषा रही होगी, उसको धीरे-धीरे विकास की प्रक्रिया से ही अस्तित्व प्राप्त हुआ होगा तथा आज ससार मे जो भाषाएँ है, उनका भी विभिन्न पूर्ववर्ती भाषा-स्तरो से विकास हुआ है।

(ग) भाषा के विभिन्न परिवार

भाषा का विकास समय के साथ धीरे-धीरे होता रहा। हम पहले कह आए है कि भाषा मे ध्वनि-घटको की सख्या सीमित है। ससार बहुत बडा है। समस्त भूमण्डल मे मानव-जाति फैल गई है। विभिन्न देशो मे रहने वाले मनुष्य किसी न किसी रूप मे भाषा का प्रयोग करते है, किन्तु किसी भी मानव-वर्ग की भाषा मे अब तक ६०—६५ से अधिक ध्वनि-घटक उपलब्ध नही है। इन्ही सीमित ध्वनि-घटको का सार्थ आवर्तन इतने रूपो मे व्यवस्थित किया गया है कि ससार मे भाषा के अनेक परिवार बन गए है। वे परिवार भी धीरे-धीरे विकसित होते रहे है और आगे भी होते रहेगे। उन्ही परिवारो के विभिन्न भाषा-रूपो को विभिन्न भाषाओ के सामान्य अर्थ मे पृथक्-पृथक् नाम देकर पुकारा जाता है। 'हिन्दी' नाम से पुकारी जाने वाली भाषा की उन परिवारो मे कहाँ और क्या स्थिति है, यह जानने के लिए हम यहाँ ससार के विभिन्न भाषा-परिवारो का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते है।

१. ससार की भाषाएँ

ससार मे इस समय अनेक भाषाएँ बोली जाती है। विद्वानो ने उनकी सख्या दो सहस्र के लगभग मानी है; इस सख्या मे बोलियाँ और उपभाषाएँ सम्मिलित नही है। भाषा-विज्ञान के विद्वान् सतत परिश्रम करके जो निष्कर्ष निकाल रहे है, उनसे ज्ञात होता है कि अभी तक अफ्रीका, अमेरिका तथा द्वीपान्तरो की कई भाषाओ को पूरा महत्व नही दिया गया है; क्योकि उनका सम्यक् अध्ययन अभी नही हुआ है। बहुत सभव है कि भविष्य मे कई बोलियाँ या उपभाषाएँ भी भाषा की श्रेणी मे स्थान पाने की अधिकारिणी सिद्ध हो या वे तब तक इतना विकास कर ले कि उन्हे भाषा का स्थान देना आवश्यक हो जाय। इस समय जो भाषाएँ बोली जाती है या जिन भाषाओ का साहित्य मिलता है अथवा जिनके चिह्न शिलालेख आदि के माध्यम से मिलते है, उनके अतिरिक्त भी कई अन्य भाषाएँ प्राचीन काल मे विकसित हुई होगी, किन्तु अब वे काल-कवलित हो चुकी है। ऐसी कुछ भाषाओ का विद्वानो ने पता भी लगाया है। अब भी कई भाषाएँ, जो

अपना साहित्य नही प्रस्तुत कर सकी तथा जिनका वैज्ञानिक अध्ययन भी सभव नही हो सका—धीरे-धीरे नष्ट होती जा रही है।

२. संसार की भाषाओ का वर्गीकरण

भाषा-विज्ञान के विद्वानो ने ससार की विभिन्न भाषाओ का दो प्रकार से वर्गीकरण किया है—

(१) आकृतिमूलक वर्गीकरण
(२) पारिवारिक वर्गीकरण

आकृतिमूलक वर्गीकरण सम्बन्ध-तत्व के आधार पर किया गया है। इसमें वाक्य और पद की रचना-शैली को प्रधानता दी जाती है और उसी के अनुसार विभिन्न भाषाओ को विभिन्न वर्गों मे रखा जाता है। इस वर्गीकरण को रूपात्मक वर्गीकरण भी कहते है।

१ आकृतिमूलक वर्गीकरण

आकृति या रूप की दृष्टि से ससार की भाषाओ को निम्नाकित दो वर्गों मे बाँटा गया है—

१—योगात्मक भाषाएँ
२—अयोगात्मक भाषाएँ

इन दोनो के उप-वर्ग भी बनाए गए है, जो इस प्रकार है—

२
अयोगात्मक भाषाएँ

एकाक्षर	सुर (Tone)–प्रधान	स्थान-प्रधान	निपात-प्रधान
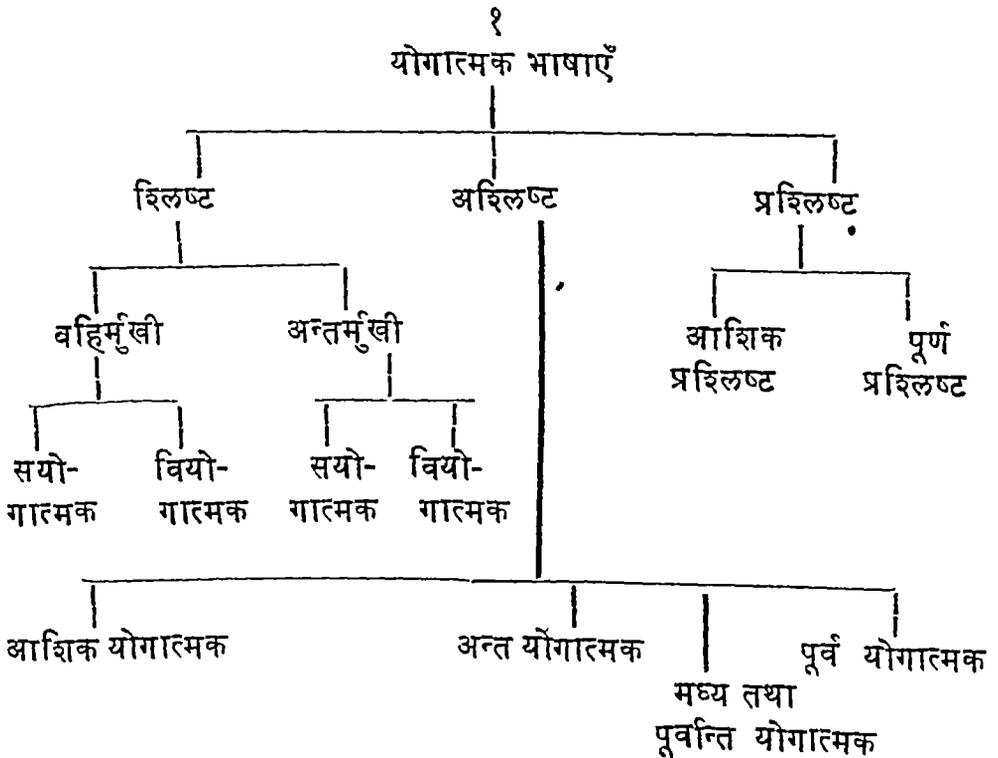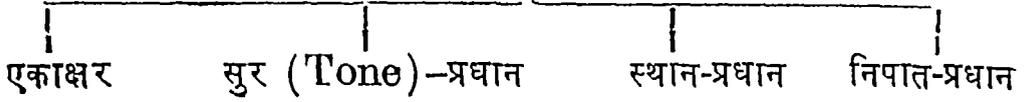
आकृति-मूलक या रूपात्मक वर्गीकरण के अनुसार उपर्युक्त वर्गों मे जो भाषाएँ विभाजित हैं, उनका विवरण देना अनावश्यक है।[1] यहाँ केवल इतना जान लेना चाहिए कि 'हिन्दी' वियोग-प्रधान बहिर्मुखी श्लिष्ट योगात्मक भाषा है।

पारिवारिक वर्गीकरण

पारिवारिक वर्गीकरण को ऐतिहासिक वर्गीकरण भी कहते हैं। इस वर्गीकरण का आधार यह है कि प्राचीन काल मे कुछ गिनी-चुनी भाषाएँ थी। उन भाषाओ ने धीरे-धीरे विकास किया और वे विभिन्न भाषाओ, उप-भाषाओ और बोलियो के रूप मे परिवर्तित हो गई। यो प्रत्येक भाषा के अपने-अपने परिवार बन गए। इन परिवारो की भाषाओ को भिन्न-भिन्न वर्गों मे ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर रखा जाता है। इसीलिए इस प्रकार किये गये वर्गीकरण के ऐतिहासिक तथा पारिवारिक नाम रखे गए हैं।

पारिवारिक वर्गीकरण के अनुसार ससार की भाषाएँ निम्नाकित वर्गो मे विभाजित हैं–

(१) **भारोपीय परिवार**–यह ससार का सबसे महत्वपूर्ण भाषा-परिवार है। भारत-योरोपीय, भारत-जर्मनिक आदि कतिपय अन्य नाम भी इस परिवार को दिये गये हैं। इस परिवार की मूल भाषा कौन-सी थी, इसका पता नही चल सका। जो प्राचीन भाषाएँ मिली हैं, उनके तुलनात्मक अध्ययन से एक मूल भाषा की कल्पना भाषावैज्ञानिकों ने की है। विद्वानो का अनुमान हैकि वह भाषा लगभग ढाई हजार वर्ष ईसा पूर्व वर्तमान् थी तथा उसी से भारोपीय परिवार की प्राचीन भाषाएँ उत्पन्न हुई। इस परिवार मे निम्नाकित भाषा-शाखाएँ सम्मिलित हैं ·

(अ) भारत-ईरानी शाखा

(आ) तुखारी शाखा

(इ) हत्ती या खत्ती शाखा

---

१ आकृतिमूलक वर्गीकरण के विस्तृत विवरण के लिए 'किताब महल' द्वारा प्रकाशित डा० भोलानाथ तिवारी का 'भाषा-विज्ञान' देखिए।

(ई) आर्मनी शाखा
(उ) आल्बनी शाखा
(ऊ) बाल्वक तोस्लाशिाखा
(ए) ग्रीक शाखा
(ऐ) जर्मनिक शाखा
(ओ) इतालिक शाखा
(औ) केल्टिक शाखा

सस्कृत, पाली, प्राचीन ईरानी, ग्रीक, लैटिन आदि प्राचीन भाषाएँ तथा अग्रेजी, फ्रासीसी, जर्मन, नई फारसी, पश्तो, मराठी, बगाली, गुजराती, हिन्दी आदि अर्वाचीन भाषाएं इमी परिवार के अन्तर्गत आती है।

(२) **सामी या सेमेटिक परिवार**—इस परिवार की भाषाओ की दो शाखाएँ मानी गई है--पूर्वी शाखा और पश्चिमी शाखा। पूर्वी शाखा के अन्तर्गत असीरियन, वेबीलोनियन आदि की गणना की जाती है। पश्चिमी शाखा मे कनानीय, फोनेशियन, आरमीय, हिब्रू, प्राचीन अरबी आदि भाषाएँ सम्मिलित है।

इस परिवार की अधिकाश प्राचीन भाषाएँ लुप्त हो चुकी है। हिब्रू के प्राचीन रूप मे बाइविल की रचना हुई थी तथा प्राचीन अरबी मे कुरान लिखी गई थी। अरबी इस परिवार की महत्वपूर्ण जीवित भाषा है।

(३) **हामी या हेमेटिक परिवार**—प्राचीन मिस्र की भाषा को, जिसके ईसा से ४ शताब्दी पूर्व के उदाहरण मिले है, इस परिवार मे विशेष स्थान प्राप्त है। मिस्र को प्राचीन काप्टिक भाषा के चिह्न चित्रलिपि मे उपलब्ध हुए है। लीबियन (बर्बर), हौसा, एथियोपियन आदि इस परिवार की जीवित भाषाएँ है।

(४) **बाँटू परिवार**—इस परिवार की भाषाएँ दक्षिण और मध्य अफ्रीका मे बोली जाती है। स्याहिली इस परिवार की महत्वपूर्ण जीवित भाषा है। गडा, बेम्बा, ग्जोसा, जूलू आदि इस परिवार की अन्य भाषाएँ है।

(५) **फिन्नो उग्री परिवार**—इस परिवार मे फिनलैण्ड, हुँगरी, एस्थोनिया, लिवोनिया तथा लैपलैण्ड मे बोली जाने वाली भाषाएँ सम्मिलित है। मग्यार तथा सुओमी इस परिवार की प्रधान भाषाएँ हैं।

(६) **यूराल अल्टाइक परिवार**—इस परिवार की भाषाएँ मगोलिया, मचूरिया तथा साइबेरिया मे प्रचलित है। तुर्की इस परिवार की प्रमुख भाषा है। मचू तथा ओखोतस्क इस परिवार की अन्य प्रसिद्ध भासपाएँ है। इ परिवार की एक शाखा योरप मे भी चली गई है।

(७) **काकेशी परिवार**—कृष्ण सागर से कैस्पियन सागर तक इस परिवार

की भाषाएँ मिलती हैं। जार्जियन इस वर्ग की प्रमुख भाषा है।

(८) **मध्य अफ्रीकी परिवार**–अफ्रीका में हैमेटिक और बांटू परिवारो के मध्य का क्षेत्र इस भाषा-परिवार का क्षेत्र माना जाता है। सूदानी भाषाएँ इस परिवार मे सम्मिलित हैं।

(९) **आस्ट्रिक परिवार**–इस परिवार की भाषाएँ मलाया प्रायद्वीप एव जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, मडागास्कर आदि द्वीपो मे बोली जाती हैं। भारत-वर्ष मे भी इस परिवार की कई भाषाएँ बोली जाती ह। मुण्डा भाषा उनमे मुख्य है। सथाली, खसी, हो, भूमिज, खडिया आदि अन्य भाषाएँ हैं, जो भारत के बिहार आदि क्षेत्रो मे कोल-भाषा-भाषी लोगो द्वारा बोली जाती हैं।

(१०) **द्रविड परिवार**–इस परिवार मे दक्षिण भारत की भाषाएँ तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम तथा कोडगू, गोडी, कध, माल्तो आदि अन्य सामान्य भाषाएँ सम्मिलित ह।

(११) **तिब्बती-चीनी परिवार**–चीन, तिब्बत, बर्मा तथा हिमालय के पहाडी प्रदेशो की भाषाएँ इस परिवार म सम्मिलित हैं। चीनी भाषा स परिवार की महत्वपूर्ण भाषा है।

(१२) **अमेरिकी परिवार**–उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका के आदि निवासी जो भाषाएँ बोलते हैं, उन्हे इस वर्ग मे रख सकते हैं। इरोकोइयन, सियोयन आदि इस परिवार की मुख्य भाषाएँ है।

इन परिवारो के अन्तर्गत जिन भाषाओ की गणना नही की जा सकती, उन्हे 'शेष भाषा परिवार' मे रख दिया गया है। बास्क, यूट्रस्कन आदि कई भाषाएँ ऐसी ही भाषाएँ हैं।

उपसहार

भारत मे आजकल जो भाषाएँ बोली जाती हैं अथवा जो प्राचीन भाषाएँ अब केवल ग्रन्थो मे पाई जाती हैं तथा जिन्हे उनके विद्वान् लिखते-पढते हैं, उन सब का पूर्वोक्त भाषा-परिवारो मे से किसी-न-किसी परिवार से सम्बन्ध है। हिन्दी भाषा का विकास जिन भारतीय भाषाओ से हुआ है, उनकी स्थिति को इन परिवारो के मध्य समझना पडता है। भाषा के रूप और विकास की सीमाओ का उल्लेख करते समय हम यह स्पष्ट कर आए हैं कि प्रत्येक भाषा एक परम्परा मे विकसित होती है। अत हिन्दी भाषा का विकास किस प्रकार हुआ, इसको स्पष्टत समझने के लिए पूर्वोक्त सभी बाते पृष्ठभूमि के रूप मे जान लेना आवश्यक है। इसी पृष्ठभूमि से सम्बन्ध जोडते हुए हम आगे के अध्यायो मे हिन्दी भाषा और उसके इतिहास पर विचार करेंगे।

२ | भारत के भाषा-परिवार

विषय-प्रवेश

भाषा सस्कृति का एक महत्वपूर्ण अग है। सस्कृति के विकास के साथ भाषा का भी विकास होता है। जब किसी देश की सस्कृति दूसरे देश मे जाती है, तब वह अपनी भाषा भी ले जाती है। विजयी सस्कृति विजित जाति की सस्कृति को धीरे-धीरे प्रभावित करती रहती है। इसका परिणाम् यह होता है कि विजित जाति की भाषा भी विजयी जाति की भाषा के प्रभावो को विभिन्न रूपो मे स्वीकार कर लेती है। इस प्रकार भाषाओ का रूप बदलने लगता है तथा नई भाषाएँ विजित देश मे फैल जाती है।

भारतवर्ष एक विशाल देश है। इस देश मे शताब्दियो से सास्कृतिक लेन-देन की प्रक्रिया चलती रही है। अनेक विदेशी जातियाँ यहाँ आई और अनेक बार यहाँ की सस्कृति बाहर भी गई। फलत यहाँ कितनी ही भाषाओ का आगमन हुआ और उनका यहाँ की भाषाओ पर भी प्रभाव पडा जिससे उनकी पारिवारिक शुद्धता कम हो गई। फिर भी प्रत्येक भाषा की कुछ न कुछ ऐसी विशेषताएँ मिल ही जाती है, जिनके आधार पर उनका भिन्न-भिन्न परिवारो से सम्बन्ध खोजा जा सकता है।

कहा जाता है कि आर्यों का मूल निवास स्थान भारत नही था। वे यहाँ मध्य एशिया से आए थे। यह भी कहा जाता है कि वे दो बार यहाँ आए थे। प्रथम बार उनका यहाँ जिस जाति से सघर्ष हुआ, वह द्रविड थी। उस जाति को पूर्वागत आर्यों ने पराजित कर दक्षिण की ओर भगा दिया तथा बाद मे उन्हे भी नवागत आर्यों से सघर्ष करना पडा। अन्त मे नवागत आर्य ही मध्य देश मे बसे तथा पूर्वागत आर्यों को मध्य देश के चारो ओर बसना पडा। आर्यों के बाद अन्य अनेक जातियाँ इस देश पर आक्रमण करती रही और अपनी सस्कृति तथा भाषा के साथ यहाँ बसती गई। शक, हूण, मुसलमान,

अंग्रेज आदि विभिन्न जातियों की संस्कृति और भाषाएँ इस देश की संस्कृति और भाषाओं के साथ फैलती रही। परिणामस्वरूप इस समय भारत में अनेक परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं। यहाँ संक्षेप में उनका परिचय प्रस्तुत किया जाता है।

मुख्य भाषा-परिवार

जिन परिवारों की भाषाएँ भारत में बोली जाती हैं, उनमें से मुख्य परिवार निम्नांकित हैं :—

१—आग्नेय परिवार

२—एकाक्षर परिवार

३—द्रविड परिवार

४—आर्य परिवार

५—अनिश्चित परिवार

१. आग्नेय परिवार—इस परिवार को आस्ट्रिक परिवार भी कहते हैं। इस परिवार की निम्नांकित दो शाखाएँ हैं—

(क) आग्नेय द्वीपी

इस शाखा की भाषाएँ भारत से सम्बन्ध नहीं रखती, क्योंकि उनका प्रचार प्रशान्त महासागर के द्वीपों में है।

(ख) आग्नेय देशी

इस शाखा की कई भाषाएँ भारत में फैली हुई हैं। प्राचीन काल में पूर्वी भारत तथा हिन्द-चीनी प्रायद्वीप में इस शाखा की भाषाओं का प्रचार था। आजकल नीकोबार, खासी-जयन्ती की पहाड़ियों पर और बंगाल, बिहार तथा मध्य प्रदेश के कुछ भागों में इस परिवार की बोलियाँ मिलती हैं। निकोबार द्वीप में निकोबारी बोली पाई जाती है। खासी-जयन्ती की पहाड़ियों के निवासी 'खासी' बोली बोलते हैं।

इस परिवार की सबसे महत्वपूर्ण भाषा मुण्डा है, जिसके बोलने वाले पश्चिमी बंगाल से मद्रास के गंजाम जिले तक बिखरे-बिखरे बसे हुए हैं। अन्य स्थानीय भाषाओं ने इस भाषा को पर्याप्त प्रभावित भी किया है।

मुण्डा भाषा प्रत्यय-प्रधान होती है तथा उसमें स्त्रीलिंग एवं पुल्लिंग व्याकरण के आधार पर नहीं बनते। सजीव और निर्जीव का भेद ही लिंग-निर्णय में सहायक होता है। सजीव पदार्थ पुल्लिंग माने जाते हैं तथा निर्जीव पदार्थ स्त्रीलिंग। मुण्डा भाषा में तीन वचन होते हैं तथा क्रियाओं में पर-प्रत्यय

के साथ-साथ अन्त प्रत्यय भी लगते हैं। वाक्य-रचना में शब्द-भेद की पहचान कठिन होती है। मुण्डा का ध्वनि-समूह आर्य भाषाओं की भाँति घोष, अघोष, महाप्राण और अल्पप्राण से ही बना माना गया है। मूल शब्द अधिकतर दो अक्षरों के होते हैं तथा एक ही शब्द सञ्ज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि का स्थानानुकूल काम देता है। उत्तम पुरुष के द्विवचन तथा बहुवचन में दो-दो रूप होते हैं। मुण्डा भाषाओं में १ से १० तक तथा २०—यों कुल ११ सख्याएँ हैं और उन्हीं से धन-ऋण करके शेष सख्याओं का काम चलाया जाता है।

मुण्डा भाषा की निम्नांकित मुख्य शाखाएँ हैं, जो उनके आगे लिखे क्षेत्रों में फैली हुई हैं—

(i) कनावरी—शिमला का निकटवर्ती क्षेत्र।
(ii) खेरवारी—विन्ध्याचल का पूर्वी भाग।
सथाली और मुडारी इसी की प्रमुख बोलियाँ हैं। मुडारी बोली के मुडा शब्द से ही मुण्डा शाखा का नामकरण हुआ है।
(iii) कुर्कू—मालवा का निकटवर्ती क्षेत्र तथा मेवाड।
(iv) खडिया—राँची के निकट।
(v) जुआग—केदूझर और ढेकानाल राज्य में।
(vi) शावरी } इन दोनों के बोलने वाले आन्ध्र प्रदेश की सीमा
(vii) गदबा } के निकट रहते हैं।

मुण्डा भाषाओं को आर्य और द्रविड भाषाओं से भी प्राचीन बताया जाता है। यह मान्यता है कि आर्यों और द्रविड दोनों ने मुण्डाभाषी लोगों को मार भगाया था, अत वे विभिन्न क्षेत्रों में फैल गए तथा अब तक जगली अवस्था में पाए जाते हैं। यह सब होने पर भी यह तो मानना ही पड़ता है कि आर्य भाषाओं को मुण्डा-भाषाओं ने बहुत प्रभावित किया है। हिन्दी भाषा में अनेक शब्द मुण्डा से आए हैं। वस्तुओं की कोडियों में गिनती, मालवी आदि बोलियों में 'हम' एव 'अपन' तथा गुजराती में अमे और 'आपणे' जैसे उत्तम पुरुष बहुवचन के दो रूप मुण्डा के प्रभाव से ही आए हैं।

२ **एकाक्षर परिवार**—इस परिवार में जो भाषाएँ सम्मिलित हैं, उनकी दो शाखाएँ हैं—तिब्बती-बर्मी और स्यामी-चीनी। इनमें से दूसरी शाखा के बोलने वाले भारत के निवासी नहीं हैं, केवल कुछ प्रवासी पाए जाते हैं, जो चीनी भाषा का प्रयोग करते हैं।

तिब्बती-बर्मी शाखा के तीन स्कन्ध हैं--

१--तिब्बती-हिमालयी

२--असमोत्तरी

३--असम-बर्मी

तिब्बती-हिमालयी शाखा में उत्तरी हिमालय की कुछ बोलियाँ सम्मिलित हैं। असमी-बर्मी शाखा में बर्मा के निकट के असम-सीमावासी लोगों की बोलियाँ सम्मिलित हैं। असमोत्तरी वर्ग की बोलियाँ इन दोनों स्कन्धों के मध्य-क्षेत्र में बोली जाती हैं।

ये भाषाएँ एकाक्षर इसलिए कही जाती हैं, क्योंकि इनकी धातुएँ एकाक्षर हैं। चीनी इस परिवार की प्रधान भाषा है, जिसमें इस परिवार के नियम विशेषत सत्य पाए जाते हैं, शेष भाषाओं पर आर्य-परिवार की भाषाओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इस परिवार की भाषाओं को स्थान-प्रधान या अयोगात्मक कहा जा सकता है। शब्दों के सम्बन्ध का पता अधिकतर उनके स्थान से लगाया जाता है। प्रत्येक शब्द एक अक्षर का होता है और उसका रूप सदा एक-सा रहता है। विभिन्न अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए स्वर या तान का प्रयोग किया जाता है। जब स्वर से काम नहीं चलता तो द्वित्व का प्रयोग करते हैं। ये भाषाएँ व्याकरण-रहित हैं, क्योंकि एक ही शब्द को कभी संज्ञा, कभी विशेषण और कभी क्रिया के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। क्रिया आदि के सूचक शब्द ही कभी-कभी स्थान के अनुसार कारक का भी काम देते हैं। ये नियम एकाक्षर परिवार की सभी बोलियों में समान रूप से नहीं पाए जाते। भारत में बोली जाने वाली एकाक्षर-परिवार की बोलियों में इन नियमों के अनेक अपवाद मिलते हैं। एकाक्षर परिवार की हिमालयी बोलियों पर मुण्डा परिवार की बोलियों का भी बहुत प्रभाव पड़ गया है। उनके दो वर्ग हो गए हैं--

१--असार्वनामिक

२--सार्वनामिक

असार्वनामिक वर्ग की बोलियाँ नेपाल, सिकिम, भूटान आदि में पाई जाती हैं। नेपाल की प्रधान बोली नेवारी इसी वर्ग में आती है। सार्वनामिक वर्ग की बोलियों के किरांत और कनौरदामी दो स्कन्ध हैं। इन दोनों में कई छोटी-छोटी बोलियाँ सम्मिलित हैं। नेपाल के पूर्व में इन बोलियों का क्षेत्र है। इन बोलियों में कर्ता और कर्म सर्वनाम होने पर क्रिया में ही प्रत्यय की तरह जुड़ जाते हैं। यथा--

हिप=मारना (क्रिया)
तू =उसे (सर्वनाम)
डग्=मैं (,,)

इन तीनो को जोड कर इस प्रकार वाक्य बनता है--

'हिप्तुड्ग' मैं उसे मारता हूँ।

३. **द्रविड परिवार**--यह परिवार भारत के भाषा-परिवारो मे आग्नेय परिवार की मुण्डा शाखा के समान प्राचीन माना जाता है। आर्य-परिवार की भाषाओ का भारत मे आगमन इस परिवार के पर्याप्त विकास के पश्चात् हुआ। यह परिवार आर्य-परिवार के बाद महत्व की दृष्टि से भारत का दूसरा श्रेष्ठ भाषा-परिवार है। इस परिवार की भाषाएँ निम्नांकित शाखाओ मे विभाजित हैं--

(१) द्रविड
(२) मध्यवर्ती
(३) तेलगु
(४) ब्राहुई

(१) **द्रविड शाखा**--इस प्रथम शाखा की पाँच उप-शाखाएँ भी हैं--

क--तमिल
ख--कन्नड
ग--तुलु
घ--कुर्गी
ङ--टुडा-कोटा

तमिल उपशाखा मे ही मलयालम भी सम्मिलित है। तमिल भाषा भारत मे पूर्वी किनारे पर मद्रास नगर के उत्तर से लेकर कुमारी अन्तरीप तक फैली हुई है। इस भाषा की 'शेन' नामक एक शिष्ट बोली है, जो सस्कृत से प्रभावित है। कोडुन नामक बोलचाल की बोली है। उसकी साहित्यिक शैली का नाम "मणि-प्रवाल" है, जिसमे भी सस्कृत-शब्दो की प्रधानता है। 'बुरगडी' 'कसुव', 'इरुल', 'कोरव', 'कैकाडी' आदि इसकी अन्य बोलियाँ मानी गई है।

तमिल की उपशाखा मलयालम मलाबार तट पर बगलौर के दक्षिण मे बोली जाती है। इस भाषा मे सस्कृत के अनेक शब्द प्रविष्ट हो गए हैं। त्रावणकोर और कोचीन के राज्यो की सहायता पाकर यह भाषा साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध होती रही। तमिल के समान इसमे पर्याप्त उत्तम कोटि का

साहित्य मिलता है। 'योरव' इसकी एक मुख्य बोली है, जिसमे भी साहित्य लिखा गया है। यह बोली कुर्ग क्षेत्र मे पाई जाती है।

कन्नड भाषा पूर्वी मद्रास को छोड हैदराबाद से बम्बई के कुछ भागों तक बोली जाती है। समस्त मैसूर इस भाषा के क्षेत्र मे आता है। द्रविड वर्ग की यह सबसे प्राचीन भाषा बताई जाती है। इस भाषा मे पर्याप्त साहित्य भी लिखा गया है। विभिन्न हिन्दू-धर्म सम्प्रदायो का समृद्ध साहित्य इस भाषा मे मिलता है। गोलारी, बडगा तथा कुरुम्बा इसकी प्रधान बोलियाँ है।

'तुलु' भाषा कुर्ग तथा बम्बई प्रदेश के सीमावर्ती क्षेत्र मे बोली जाती है। 'कोरगा' और 'बेलरा' नाम की दो बोलियाँ इसकी शाखाएँ है। इस भाषा मे साहित्य नही है। कुछ विद्वान् इस भाषा को कन्नड की उपभाषा मानते हैं।

कुर्गी या 'कोडग' पुराने कुर्ग क्षेत्र की भाषा है। कन्नड और 'तुलु' के मध्य मे इसका क्षेत्र पडता है, अत दोनो के सम्मिलित लक्षण इस भाषा मे पाए जाते है। कुछ विद्वानो की दृष्टि मे यह कन्नड की ही एक बोली है। 'टुडा' और 'कोटा' भाषाएँ नीलगिरि के जगलो मे रहने वाले असभ्य लोगो की भाषाएँ हैं, जो धीरे-धीरे ह्रास को प्राप्त हो रही है।

(२) **मध्यवर्ती शाखा**—इस शाखा मे निम्नाकित भाषाएँ सम्मिलित है—

क—गोडी

ख—कोड

ग—औराँव या कुरुख-माल्टो

घ—कधी या कुइ

ङ—कोलामी

गोडी भाषा का क्षेत्र पुराने विन्ध्य प्रदेश मे पडता है। इस भाषा को बोलने वाले लोग प्राय जगली है। गट्टू, मडिया, कोया, पार्जी, बोलियाँ इसी भाषा मे सम्मिलित हैं। इस भाषा की न तो अपनी लिपि है और न इसमे साहित्य ही मिलता है। तमिल भाषा से इसकी कई विशेषताएं मिलती ह।

उडीसा की पहाडियो मे रहने वाले लोग 'कोड' भाषा बोलते है। यह 'कुइ' का ही एक रूप मानी जाती है।

'कुरुख' या 'औराँव' के बोलने वाले मध्य प्रदेश, उडीसा और बिहार के सीमावर्ती क्षेत्र मे पाए जाते है। 'मल्हार' और 'किसान' आदि इसकी बोलियाँ ह। तमिल से इस भाषा की बहुत समानता है। इस भाषा की एक शाखा का नाम "माल्टो" है, जिसे राजमहल की पहाडियो के लोग बोलते है।

वे माल्टो जाति के है, इसलिए इस भाषा को भी माल्टो कहते है।

'कन्धी' या 'कुई' उडीसा के जगलो मे रहने वाले असभ्य लोगो की भाषा है। यह भाषा भी व्याकरण से रहित है तथा साहित्य की इसमे रचना नही होती। तेलगु भाषा से इस भाषा का बहुत सम्बन्ध है। इस भाषा मे जगल के क्षेत्रो के अनुसार अनेकरूपता है।

'कोलामी' भाषा बरार के पश्चिमी प्रदेश में बोली जाती है, किन्तु अब धीरे-धीरे ह्रास को प्राप्त हो रही है। भीली बोली का इस पर पर्याप्त प्रभाव पडा है। तेलगु भाषा से भी यह भाषा प्रभावित है। इसकी कई बोलियाँ है, जिनमे 'नैकी' बोली प्रमुख है।

(३) तेलुगु शाखा—दक्षिणी पूर्वी हैदराबाद तथा आन्ध्र प्रदेश मे यह भाषा बोली जाती है। इस भाषा मे प्राचीन साहित्य अच्छा मिलता है। वर्तमान् साहित्य भी बहुत समृद्ध है। इस भाषा का रूप बहुत मधुर माना जाता है। इसके शब्दो की यह विशेषता है कि वे स्वरान्त होते है, इसीलिए उनसे बोलने मे माधुर्य अधिक आ जाता है। सस्कृत भाषा का इस भाषा पर बहुत प्रभाव पड़ा है। कोमटाउ, गोलरी, बेरडी, वडरी, कामाठी, दासरी, सालेवारी आदि इसकी प्रमुख बोलियाँ है।

(४) ब्राहुई—यह भी द्रविड परिवार की भाषा मानी जाती है। इसका क्षेत्र अब हिन्दुस्तान में नही है, केवल इसके बोलने वाले कुछ लोग यत्र-तत्र घूमते हुए कभी मिल जाते है।

द्रविड परिवार की भाषाओ की कुछ ऐसी विशेषताएँ है, जिनके कारण यह भाषा-समूह एक पृथक् परिवार माना जाता है। इस परिवार की भाषाएँ तुर्की की तरह अश्लिष्ट अन्तयोगात्मक होती है। शब्द-रचना के लिए मूल धातु मे प्रत्यय जोडते जाते है। अत मूल धातु मे कोई परिवर्तन नही होता है। बडी-बडी सामासिक पदावली भी सरलता-पूर्वक बन जाती है। एक अन्य विशेषता यह है कि शब्द के अन्त में 'उ' स्वर जोड दिया जाता है। स्वर-अनुरूपता इसकी अन्य विशेषता है। शब्द के आरभ में घोष व्यजनो का अभाव होता है तथा मध्य के अनुनासिक व्यजनो के साथ घोष व्यजन जोडे जाते है। 'ट' वर्ग की ध्वनियाँ इन भाषाओ मे अधिक पाई जाती है। वचन दो होते है तथा प्रत्यय जोड कर बहुवचन बनाते की है। सस्कृत तरह तीन लिंग माने जाते है। सज्ञानी और अज्ञानी दो प्रकार की सज्ञाएँ होती है। कभी-कभी कुछ सज्ञाओ से क्रिया का भी काम लिया जाता है। क्रियाओ मे पुरुष का बोध करान के लिए पुरुषवाची सर्वनाम जोड़ने

की प्रथा है। इन भाषाओ मे कर्मवाच्य का बोध कराने के लिए सहायक क्रिया का प्रयोग किया जाता है।

४ आर्य-परिवार—भारत का यह भाषा-परिवार ससार के सबसे बडे भाषा-परिवार "भारोपीय परिवार" का एक स्कन्ध है। प्रारभ मे कुछ विद्वानो ने भारोपीय परिवार को ही आर्य-परिवार का नाम दिया था, किन्तु बाद मे 'भारोपीय परिवार' नाम ही स्वीकृत हुआ। आजकल 'हित्ती' को शामिल करके 'भारत-हित्ती' या भारोपीय-हित्ती नाम भी दिया जाने लगा है।

यहाँ हम 'आर्य परिवार' शब्द भारतीय आर्यों की भाषाओ के लिए प्रयुक्त कर सकते हैं। ये भाषाएँ भारत-हित्ती' परिवार की तीन शाखाओ—हित्ती, ग्रीक तथा भारत-ईरानी मे से तीसरी शाखा—भारत-ईरानी के अन्तर्गत आती है। यह भारोपीय परिवार की सबसे महत्वपूर्ण शाखा है। इसी शाखा ने भाषा-विज्ञान को सर्वाधिक अध्ययन-सामग्री प्रदान की है। भारत-ईरानी या आर्य शाखा की भारतीय भाषाएँ आर्य-भाषाएँ कही जा सकती है। ये भाषाएँ समस्त उत्तरी भारत मे बोली जाती है। दक्षिण मे इन भाषाओ का क्षेत्र द्रविड परिवार की भाषाओ से मिला हुआ है। इस परिवार की प्रमुख भाषा सस्कृत ने द्रविड परिवार के क्षेत्र मे भी ब्राह्मणो की वाणी के रूप मे बहुत पहले प्रवेश पा लिया था। आजकल उसी की उत्तराधिकारिणी भाषा हिन्दी द्रविड-क्षेत्र के प्रमुख नगरो तक पहुँच रही है।

भारतीय आर्य शाखा की भाषाओ को डा० ग्रियर्सन ने तीन उपशाखाओ, छः उप-वर्गो तथा सत्रह भाषाओ मे विभाजित किया था।

इस परिवार मे प्राचीन और नवीन दो प्रकार की भाषाएँ सम्मिलित है। प्राचीन भाषाओ मे वैदिक सस्कृत, सस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रश प्रमुख है। इन भाषाओ मे सस्कृत को छोड कर, जो पढे-लिखे पण्डितो के शिष्ट व्यवहार मे यदा-कदा काम आती है—शेष भाषाएँ साहित्य मात्र तक सीमित है। इन भाषाओ मे समृद्ध साहित्य मिलता है। सस्कृत मे तो अब भी साहित्य-रचना होती है। ये सभी भाषाएँ क्रमश एक परम्परा मे विकसित हुई है। सस्कृत भाषा को पाणिनि ने अपने व्याकरण से जकड कर ऐसा नियमित कर दिया है कि उसके रूप मे विकास के लिए अवकाश नही रहा है। किन्तु पाली, प्राकृत एव अपभ्रश भाषाएँ धीरे-धीरे विकसित होती रही है। सस्कृत भाषा कभी बोल-चाल की भाषा रही हो, इसमे भी सदेह है, क्योकि यह भाषा जन भाषा के रूप को व्याकरण के नियमो से क्लिष्ट बनाकर साहित्य-सृजन तक सीमित कर दी गई थी। जिस प्रकार वैदिक भाषा मे ऋग्वेद

से विभिन्न उपनिषदों तक एक विशाल साहित्य की रचना हुई, उसी प्रकार संस्कृत मे भी अपार साहित्य लिखा गया है। रामायण-महाभारत से संस्कृत में साहित्य-रचना प्रारभ हो जाती है और ईसा की सत्रहवी शताब्दी तक उसकी अटूट परम्परा मिलती है। आजकल भी यदा-कदा इस भाषा में ग्रन्थ-रचना होती रहती है। योरप की लैटिन के समान ही भारत मे संस्कृत का स्थान है। यहाँ की आधुनिक आर्य भाषाएँ इसी भाषा की परम्परा मे विभिन्न अपभ्रंशो से उत्पन्न हुई है। भारत मे जिन अन्य परिवारो की पीछे चर्चा की गई है, उन सब को भी सस्कृत ने थोडा-बहुत प्रभावित किया है और अब भी कर रही है। संसार के सभी महत्वपूर्ण साहित्यो तथा आस-पास के देशों की भाषाओ को भी सस्कृत के साहित्य तथा भाषा-रूपो ने पर्याप्त ऋण दिया है।

वैदिक सस्कृत श्लिष्ट योगात्मक थी तथा उसकी धातुओ के अर्थ निश्चित थे। सस्कृत मे वह नियमन कुछ परिवर्तित हुआ तथा प्रारभिक जटिलता समाप्त हो गई। नियमो से जकड जाने के कारण सस्कृत मे रूप और प्रयोग की अनियमितता न रही। वैदिक भाषा की सगीतात्मकता तथा स्वराघात-जन्य अर्थ-परिवर्तन-शीलता में भी पर्याप्त अन्तर आ गया। पहली विशेषता सस्कृत से धीरे-धीरे समाप्त हो गई तथा दूसरी विशेषता मे विकास हुआ। सस्कृत भाषा प्राचीन काल मे भारत की प्रधान भाषा थी। अतः उसे हम प्राचीन काल की राष्ट्र-भाषा भी कह सकते हैं।

राष्ट्र की बोली होने के कारण एक ओर तो इस भाषा ने अपना तत्सम रूप सुरक्षित रखा और दूसरी ओर अन्य भाषा-परिवारो की शब्दावली भी अपनाई और उसे अपने शब्द-कोष मे इस प्रकार घुला-मिला लिया कि आज उनको किसी अन्य भाषा के शब्द मानना भी कठिन हो जाता है। कदली, नीर, दण्ड, कुण्ड, ताम्बूल आदि इसी प्रकार के शब्द है, जो द्रविड़ और आग्नेय भाषाओं से आए।

आधुनिक आर्य भाषाओ में हिन्दी, बगाली, लहँदा, सिन्धी, मराठी, उड़िया असमी, बिहारी, पजाबी, गुजराती, भीली, खानदेशी, राजस्थानी तथा पहाडी भाषाओ और उनकी विभिन्न बोलियो की गणना की जाती है। ये भाषाएँ विभिन्न अपभ्रंशो से उत्पन्न हुई है तथा सस्कृत की परम्परा मे विकसित हो रही है। इन भाषाओ मे परस्पर लेन-देन भी खूब हुआ है। अन्य भारतीय परिवारों के भी इन पर अनेक प्रभाव पडे हैं। विदेशी भाषाओ से भी इनकी वाक्य-रचना, शब्दावली तथा ध्वनियाँ प्रभावित हुई है।

विदेशी भाषाओ में अरबी, फारसी और अँगरेजी प्रमुख है, जो मुसलमानों

और अँगरेजों के साथ इस देश मे आई। इन भाषाओ के बोलने वाले अब भी पर्याप्त सख्या मे यहाँ पाए जाते हैं। आर्य भाषाओ के बोलने वालो ने भी शिष्ट व्यवहार मे इन भाषाओ या इनकी मिश्रित शब्दावली को अपना लिया है।

इन भाषाओ से क्रमश. 'उर्दू' तथा 'हिन्दुस्तानी' नाम की दो नई भाषाएँ भी पैदा हो गई हैं। उर्दू भाषा को अरबी-फारसी तथा खडीबोली हिन्दी के मिश्रण से मुगल काल मे जन्म मिला तथा हिन्दुस्तानी भाषा उर्दू, हिन्दी और अँगरेजी के मिश्रण से पढे-लिखे लोगो की बोलचाल से पैदा हुई। इस प्रकार भारतीय आर्य-परिवार मे ईरानी तथा ट्यूटानिक शाखाओ की भाषाओ का भी प्रवेश हो गया है। आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओ का विस्तृत परिचय आगे पृथक् अध्याय मे दिया जाएगा।

भारत-ईरानी आर्य-परिवार की 'दरद' शाखा की कई बोलियाँ भी प्राचीन काल मे भारत के पश्चिमोत्तर भागो मे रही होगी, किन्तु अब उनके चिह्न मात्र यहाँ को अन्य भाषाओ मराठी, सिन्धी और पजाबी मे शेष रह गए हैं। गिलगिट की घाटी मे बोली जाने वाली 'शीना' भाषा को 'दरद' की ही एक शाखा माना जाता है। कश्मीर की भाषा 'कश्मीरी' को भी विद्वानो न 'दरद' के क्षेत्र मे ही शामिल किया है। परन्तु अब भी कुछ विद्वान् कश्मीरी को सस्कृत की परम्परा मे पैशाची अपभ्रश से उत्पन्न मानते हैं। प्राचीन काल मे कश्मीर सस्कृत का गढ था, वहाँ अनेक सस्कृतज्ञ विद्वान् हुए थे, इसलिए भी उनकी मान्यता अधिक सशक्त है। मुसलमानो की आबादी अधिक हो जाने के कारण कश्मीरी भाषा पर अरबी-फारसी का बहुत प्रभाव पडा है। आजकल कश्मीर मे उर्दू भाषा ने अपना क्षेत्र बना लिया है, फिर भी कश्मीरी भाषा का पृथक् अस्तित्व सुरक्षित है।

५. अनिश्चित परिवार—इस परिवार मे हम उन भाषाओ और बोलियो को सम्मिलित कर सकते हैं, जिनका अभी तक विद्वान् लोग वर्गीकरण नही कर सके हैं। डा० ग्रियर्सन ने ऐसी २० बोलियो के नाम गिनाए थे। किन्तु दो-तीन बोलियो को छोड़ कर शेष बोलियाँ पूर्वोक्त चार परिवारो की विभिन्न भाषाओ के मिश्रण से बनी हैं। कुछ भाषाएँ एट्रेस्कन, सुमेरियन, मितानी, कोसो आदि प्राचीन शिलालेखो मे मिली हैं, किन्तु अब वे जीवित नही हैं। बुरुशास्की या खजुना तथा अडमानी—ये दो भाषाएँ ही जीवित हैं। इन्हे किसी वर्ग मे नही रखा जा सकता। खजुना भाषा का प्रयोग कश्मीर के एक क्षेत्र मे होता है। यह क्षेत्र बहुत छोटा है। प्रारभ मे इसे द्रविड परिवार मे सम्मिलित किया था, पर बाद मे ऐसा करना उचित नही माना गया।

अडमान मे बोली जाने वाली भाषा अडमानी भी अभी तक किसी परिवार मे सम्मिलित नही की जा सकी है।

साराश यह कि भारत की सस्कृति जितनी व्यापक और विस्तृत है, उसी प्रकार यहाँ की भाषाओ का भी विस्तार है। उन्हे पूर्वोक्त ५ प्रमुख परिवारो मे विभाजित किया गया है, किन्तु अभी भी इस क्षेत्र मे कार्य करने के लिये पर्याप्त अवकाश है। पहले द्रविड परिवार को यूराल-अल्टाई परिवार के अन्तर्गत माना जाता था, किन्तु बाद मे उसका स्वतत्र अस्तित्व स्वीकार किया गया। आजकल ऐसे प्रयत्न हो रहे हैं, जिनसे भविष्य मे यह सिद्ध हो सकता है कि भारत के पूर्वोक्त-भाषा-परिवार परस्पर बहुत निकट हैं। कुछ विद्वान् तो अब यह सोचने भी लगे हैं कि द्रविड और आर्य-परिवार से पर्याप्त साम्य है।

भारतीय आर्य-भाषाओं का संक्षिप्त इतिहास | ३

भारतीय आर्य-भाषाओ के इतिहास पर विचार करने का प्रश्न सामने आते ही आर्य जाति के मूल निवास स्थान की ओर विद्वानों का ध्यान जाता है। भारत का इतिहास लिखने वाले इतिहासकारो ने इस प्रश्न पर अपने ढग से विचार किया है। भापा के साथ जब इस प्रश्न को जोडा जाता है, तो विचार करने की पद्धति वदल जाती है। ऐतिहासिक सामग्री के अभाव मे इतिहासकारो ने अनेक अनुमान लगाए है और अनेक विवाद खडे किए है। किसी ने आर्यों का मूल निवास स्थान मध्य एशिया माना है, किसी ने दक्षिण-पूर्वी योरप और कुछ विद्वान् उत्तरी ध्रुव तक बढ गए है। 'भारतीयता के प्रेमी विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि आर्य भारत के ही मूल निवासी थे। कवियो ने भी भावावेश मे यही कहा है—

कहीं से हम आए थे नहीं।
हमारी जन्म भूमि है यहीं॥

—मैथिलीशरण गुप्त

किन्तु भाषा-विज्ञान की दृष्टि लेकर जब भाषा-वैज्ञानिको ने ससार की विभिन्न भापाओ पर विचार किया, तो वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि योरप, ईरान और उत्तरी भारत की प्राचीन भाषाओ मे बहुत कुछ साम्य है। अवेस्ता और ऋग्वेद की भाषाओ में पर्याप्त एकरूपता देख कर उन्हे दोनो भाषाओ के वोलने वालो की मूलभूत एकता स्वीकार करने को विवश होना पडा। इसी प्रकार योरप की प्राचीन भापाओ से जब तुलना हुई तो वे भी इन दोनो ग्रन्थो की भापाओ के निकट पाई गई। इसी समता ने विद्वानो को यह स्वीकार करने को वाध्य किया कि योरप, ईरान तथा भारत के प्राचीन निवासी किसी एक ही स्थान से इधर-उधर फैले थे। यो आर्यों को भारत का आदि निवासी न मान कर मध्य एशिया से आया हुआ माना गया।

हार्नली, ग्रियर्सन तथा डा० धीरेन्द्र वर्मा के मतानुसार आर्य भारत में दो बार आए। डा० धीरेन्द्र वर्मा लिखते हैं––

"भारत में आने वाले आर्य एक ही समय मे नही आए होंगे, किन्तु संभावना ऐसी है कि वे कई बार आए होंगे। वर्तमान् भारतीय आर्य भाषाओ से पता चलता है कि आर्य लोग भारत मे दो बार अवश्य आए। ऋग्वेद तथा बाद के सस्कृत साहित्य मे भी इस बात के कुछ प्रमाण मिलते हैं।'[1]

भारत मे आर्यों के बाहर से दो बार आगमन की बात स्वीकार कर लेने से आर्य भाषाओ के इतिहास की वह पृष्ठभूमि प्राप्त हो जाती है, जिसके आधार पर उनकी रूप और रचना-गत भिन्नता तथा विकास आदि से सम्बन्ध रखने वाली अनेक जिज्ञासाएँ सुलझाई जा सकती हैं, साथ ही द्रविड़ आदि विभिन्न भारतीय भाषा-परिवारो से उनके पृथक् होने का कारण भी जाना जा सकता है।

आर्यों के भारत मे दो बार आगमन के फल-स्वरूप उनकी भाषा की एक-रूपता स्थिर न रह सकी होगी। समय-समय पर उसमे कई परिवर्तन हुए होंगे; किन्तु आज उनका परिचय देने वाली सामग्री उपलब्ध नही है। फिर भी हमें यह मानने में कोई सकोच नही होना चाहिए कि जितनी प्राचीन तथा प्रामाणिक सामग्री आर्य भाषाओ के पास सुरक्षित है, ससार की अन्य बडी भाषाओ के पास उतनी भी सामग्री नही है। आर्यों की प्राचीन भाषा का रूप बताने वाला सबसे पुराना ग्रन्थ ऋग्वेद भारत मे आने वाले आर्यो ने ही लिखा। इसी ग्रन्थ की परम्परा मे लिखे गए वाङ्मय के आधार पर प्राच्य और पाश्चात्य भाषा-वैज्ञानिको ने अनेक महत्वपूर्ण खोजे की। भारतीय आर्य-भाषाओं का इतिहास भी इसी ग्रन्थ से प्रारभ होता है।

काल-विभाजन

भारतीय आर्य-भाषाओ का इतिहास ऋग्वेद से प्रारभ कर देना तो सरल है, किन्तु यह बताना बहुत कठिन है कि ऋग्वेद की रचना कब प्रारभ हुई ? आर्यों के मूल-निवास के समान यह प्रश्न भी विवादास्पद उत्तर प्रस्तुत करता है। इस ग्रन्थ की भाषा प्रारभ से अन्त तक एक रूप में नही चली। प्रथम मण्डल से दशम मण्डल तक आते-आते उसकी भाषा मे पर्याप्त अन्तर आ गया है। आगे के मण्डलो की भाषा तो प्रथम मण्डल से और भी भिन्न है। इससे विदित होता है कि ऋग्वेद की रचना धीरे-धीरे हुई और उसके रचयिता भी अनेक

---

१ देखिए 'हिन्दी भाषा का इतिहास'—डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ ४२–४३।

व्यक्ति रहे होगे। ऐसा प्रतीत होता है कि समय-समय पर आर्य-ऋषियो ने जो मत्र रचना की, उसे श्रुति-रूप मे सुरक्षित रखा गया। सुनकर स्मरण रखने और दूसरों को सुनाने मे मत्रो के उच्चारण की पवित्रता नष्ट न हो जाए, इसका बहुत ध्यान रखा गया। बाद मे सब मत्रो का सम्पादन हुआ। यह कार्य एक दीर्घकालीन प्रक्रिया के रूप मे चला होगा। अत ऋग्वेद का समय ठीक-ठीक निर्धारित नही किया जा सकता। फिर भी विद्वानो ने उसके आधार पर आर्य-भाषा का ऐतिहासिक अध्ययन करने के लिए १५०० ई०पूर्व की सीमा निर्धारित की है। अत. इस समय को भारतीय आर्य-भाषा का प्रारभ काल मान कर हम अब तक के उसके इतिहास का इस प्रकार काल-विभाजन कर सकते हैं——

१——**प्रथम युग** प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा-काल——१५०० ई० पू० से ५०० ई० पू० तक।

५०० ई० पू० तक इस काल को मानने का कारण यह है कि इस समय वैदिक भाषा को नियमबद्ध करने वाले महर्षि पाणिनि[1] का वह कार्य सामने आया, जिसने उसे पूर्णत सस्कृत बनाकर उसका विकास रोक दिया। अत. उसके भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन की भावी सभावनाएँ समाप्त् हो गई। दूसरा कारण यह है कि इस समय के आस-पास प्राकृत भाषाओं का विकास प्रारभ हुआ।

२——**द्वितीय युग** भारतीय आर्य-भाषा का मध्य काल——५०० ई० पू० से १००० ई० तक।

इस काल की अन्तिम सीमा १००० ई० तक मानने का कारण यह है कि इस समय के लगभग प्राकृत भाषाओ के अपभ्रश रूपों से उन आर्य-भाषाओ का विकास प्रारभ हुआ, जो आजकल समस्त उत्तरी भारत मे बोली जाती हैं।

३——**तृतीय युग** आधुनिक आर्य-भाषा-काल——१००० ई० से अद्यावधि।

तृतीय काल की अवधि अभी समाप्त् नही हुई है, यद्यपि आधुनिक आर्य-भाषाएँ गत सहस्राधिक वर्षों मे पर्याप्त विकास कर चुकी हैं।

---

१. मैक्समूलर आदि विद्वान् पाणिनि का समय ३५० ई० पू० के बाद मानते हैं भण्डारकर और गोल्डस्कर ने ५०० ई० पू० से भी पहले उनका समय माना है। सत्यव्रत आदि विद्वान् उस समय को २४०० ई० पू० तक खीच ले गए हैं। परन्तु डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने पर्याप्त प्रमाण देकर ५०० ई० पू० को पाणिनि का समय सिद्ध किया है।

संक्षिप्त इतिहास

पूर्वोक्त तीनो कालो मे भारतीय आर्य-भाषाओ ने किस प्रकार विकास कर वर्तमान् रूपो को प्राप्त किया तथा हिन्दी की उस विकास के मध्य क्या स्थिति है, यह जानने के लिए प्रत्येक काल का सक्षिप्त इतिहास यहाँ प्रस्तुत किया जाता है --

प्रथम युग प्राचीन आर्यभाषा-काल---जिस समय आर्य भारत मे आए उस समय वे किस भाषा का व्यवहार करते थे, इसका कोई भी प्रमाण आज उपलब्ध नही है। चूँकि वे दो बार मे यहाँ आकर बसे थे, इसलिए पूर्वागत आर्यों की भाषा नवागत आर्यों से भिन्न रही होगी। दोनो बार यहाँ आकर बसने मे उन्हे पर्याप्त समय लगा होगा। साथ ही, यात्रा-गत परिस्थितियो ने भी उनकी भाषा को प्रभावित किया होगा। आज उनकी उस समय की व्यावहारिक भाषा को जानने का ऋग्वेद से भिन्न कोई साधन प्राप्त नही है। ऋग्वेद मे जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, वह प्राचीन आर्यों की साहित्यिक भाषा है। इसकी सरलता को देखकर कुछ विद्वान् उसे बोल-चाल की भाषा से अधिक भिन्न नही मानते। किन्तु अधिकतर विद्वानो ने यही माना है कि ऋग्वेद की भाषा साहित्यिक है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने माना है कि "बोलचाल की भाषा से मिश्रित साहित्यिक रूप ऋग्वेद मे मिलता है।"[1] किन्तु उसमे बोलचाल की भाषा का कितना रूप मिश्रित है तथा वह रूप कैसा है, इसका उल्लेख उन्होने नही किया। वस्तुत अब तक ऋग्वेद की भाषा का जो अध्ययन हुआ है, उससे तत्कालीन व्यावहारिक आर्यभाषा के रूप का कोई पता नही चलता।

ऋग्वेद की रचना धीरे-धीरे होती रही तथा विभिन्न ऋषि उसके रचयिता थे। अत प्राचीन आर्य भाषा का जो साहित्यिक रूप उसमे मिलता है, उसमे भी एकरूपता नही है। प्रथम मण्डल से दशम मण्डल तक उस भाषा मे पर्याप्त अन्तर आ गया है। आगे चलकर वह रूप और भी अधिक बदल गया है। ऋग्वेद के पश्चात् उपनिषदो तक जो साहित्य लिखा गया, उसमे वह प्राचीन आर्य भाषा पर्याप्त विकास करती गई है। विद्वानो ने इस भाषा को "वैदिक भाषा" या "वैदिक सस्कृत" नाम दिए है।[2]

---

१ हिन्दी भाषा का इतिहास, डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ ४५।

२ देखिए, हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास---डा० उदय नारायण तिवारी, पृष्ठ ३२ एव ३३।

वैदिक संस्कृत साहित्य-सृजन की भाषा हो गई थी, इसलिए जनता की भाषा का स्वतत्र विकास अवश्य हुआ होगा। साहित्यिक वैदिक भाषा भी विकासोन्मुखी थी, इसलिए विद्वानो को वैदिक साहित्य के प्रामाणिक रूप की सुरक्षा की चिन्ता होने लगी थी। 'पदपाठ' के रूप मे वैदिक सहिताओ का पद-रूप निर्धारण इसीलिए आवश्यक हुआ। आगे चलकर वैदिक मत्रो के पदोच्चारण की शुद्धता बनाए रखने की चिन्ता भी विद्वानो को हुई और उसके फलस्वरूप प्रातिशाख्यों की रचना का कार्य सम्पन्न हुआ। जन-भाषा को इन सब प्रयत्नो ने साहित्यिक भाषा से बहुत भिन्न कर दिया। आगे चल कर शिक्षा, निघण्टु एव निरुक्त की रचना ने भी साहित्यिक भाषा के स्वरूप-निर्धारण का ही कार्य किया। अन्त मे पाणिनि ने अपने महान् प्रयत्न से वेदोत्तर साहित्य की भाषा को, जिसे लौकिक सस्कृत कहा गया है, पूर्णत अनुशासित कर दिया। फल यह हुआ कि उसमे साहित्य-रचना तो बहुत हुई, किन्तु उसके रूप मे परिवर्तन के लिए कोई अवकाश न रहा। इस प्रकार वैदिक सस्कृत या वैदिक भाषा एक सतत प्रवाहमान धारा थी, किन्तु लौकिक सस्कृत, जिसे पाणिनि ने सस्कार करके सस्कृत बनाया, एक कृत्रिम भाषा बन गई। वैदिक भाषा से इसमे पर्याप्त अन्तर आ गया। वैदिक स्वराघात का सस्कृत मे कोई स्थान न रहा। शब्दो के रूप बदले और उनके अर्थों मे भी पर्याप्त अन्तर उपस्थित हुआ।

निश्चय ही वैदिक भाषा का जिस दीर्घ काल मे पाणिनि की सस्कृत के रूप मे विकास हुआ, उस काल मे आर्यों की जन भाषा ने भी अपना स्वतत्र विकास किया होगा। उसका इतिहास न मिलने पर भी तत्कालीन साहित्य मे उपलब्ध प्रमाणो से यह सिद्ध है कि जनता की बोल-चाल की भाषा ही आगे चल कर 'प्राकृत भाषा' के रूप मे सस्कृत के सघर्ष मे सामने आई।

२—**द्वितीय युग भारतीय आर्य-भाषा का मध्य-काल**—पाणिनि के समय मे ही जन-भाषा साहित्यिक भाषा से बहुत दूर जा चुकी थी। गौतम बुद्ध के पश्चात तो यह अन्तर अत्यधिक बढता गया। ज्यो-ज्यो आर्य लोग भारत के विभिन्न क्षेत्रो में अपनी आबादी बढाते गए तथा वहाँ की मूल जातियो को इधर-उधर भगाते या अधीन करते गए, त्यो-त्यो व्यावहारिक आर्य-भाषा के रूप में भी परिवर्तन आता गया। पतजलि के समय ही सस्कृत का शुद्ध रूप में उच्चारण करने वालो की सख्या घटने लगी थी। जनता मे जो भाषा प्रचलित थी, उसपर अनार्य प्रभाव पडते जा रहे थे। अत ५०० ई० पू० से आर्य-भाषा का जो विकास प्रारभ हुआ वह कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस

समय सस्कृत भाषा तो विकास की दृष्टि से गतिरुद्ध हो ही चुकी थी, व्यावहारिक या बोलचाल की आर्य-भाषा को भी अनार्य लोगो की वाणी मे नया रूप मिला।

वैदिक भाषा के विकास के समय आर्यों की बस्तियाँ न तो अधिक घनी थी और न अधिक दूर तक बसी थी। उस समय मध्य देश मे नवागत आर्य निवास करते थे और उसके आसपास के पूर्व प्रदेश मे पूर्वागत आर्य बसे थे। इन दोनो आर्य-वर्गों की व्यावहारिक भाषा मे भी अन्तर था। अतः प्रथम युग मे साहित्यिक वैदिक भाषा लौकिक सस्कृत के अतिरिक्त जिन आर्य-बोलियो का विकास हुआ होगा, उन्हे पूर्वी तथा पश्चिमी बोलियाँ कह सकते है। द्वितीय काल मे इन बोलियो ने पर्याप्त विकास किया। इस समय तक उत्तरी भारत मे कई आर्य-जनपद स्थापित हो चुके थे। अत उन जनपदो मे धीरे-धीरे विभिन्न बोलियाँ विकसित होती रही। ये बोलियाँ प्राकृतो और अपभ्रशो के रूप मे सामने आई। ५०० ई० से १००० ई० पू० तक परिनिष्ठित सस्कृत के साथ इन बोलियो का जो विकास हुआ, उसे हम निम्नाकित तीन अवस्थाओ मे समझ सकते है—

क–प्रथम अवस्था–५०० ई० पू० से १ ई० पू० तक।

ख–द्वितीय अवस्था–१ ई० पू० से ५०० ई० तक।

ग–तृतीय अवस्था–५०० ई० से १००० ई० तक।

इन तीनो अवस्थाओ मे जिन आर्य-भाषाओ का विकास हुआ, उनका सक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है —

(क) प्रथम अवस्था (५०० ई० पू० १ ई० पू०)—मध्यकाल की यह प्रथम अवस्था सस्कृत के साथ-साथ जन-भाषा के एक नए रूप के साहित्यिक विकास के लिए अवसर प्रस्तुत करती है। अब तक साहित्यिक भाषा जन-भाषा की यथा-साध्य उपेक्षा करती थी। सस्कृत को व्याकरण के नियमो मे जकड कर पाणिनि ने उस उपेक्षा-भाव को अत्यधिक बढा दिया था। फल यह हुआ कि जन-भाषा 'पाली' के रूप मे साहित्य-रचना का माध्यम बनी।

बौद्धो की हीनयान शाखा का साहित्य पाली भाषा मे लिखा गया। अशोक के समय मे साहित्य-रचना का अधिकाश काम इसी भाषा मे होता था, सस्कृत भाषा केवल ब्राह्मणों के साहित्य मे ही व्यवहृत होती थी। कुछ विद्वानो का मत है कि साहित्य की भाषा बनने से पूर्व पाली मगध की जन-भाषा थी। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों मे भी जन-भाषाएँ पनप रही थी। किन्तु अन्य विद्वानो ने मगध की जन-भाषा को मागधी नाम दिया है और उसे पाली

से भिन्न माना है। डा० उदय नारायण तिवारी ने विभिन्न विद्वानो के मतो पर विचार करते हुए जो निष्कर्ष उपस्थित किया है, वह अधिक युक्ति-संगत है। वे कहते हैं कि "मध्य देश की भाषा ही पाली का आधार है, पर मागधी से अनूदित होने के कारण इसमे (त्रिपिटक मे) उसके अनेक रूप रह गए और पैशाची अनुवाद से भी इसने कुछ रूप ग्रहण किए। सिंहल में प्रतिष्ठित हो जाने पर पाली साहित्यिक भाषा बन गई और इसमे अन्य भाषाओं के रूप भी लिए जाने लगे।"[1]

अत पाली मध्यदेश की जन-भाषा से उत्पन्न वह साहित्यिक भाषा थी जिसने ५०० ई० पू० से १ ई० पू० तक विकास किया। आर्यों की पूर्वी तथा उत्तरी-पश्चिमी बोलियो के रूप भी इसमे स्थान पाते गए। सस्कृत के भी तत्सम, अर्ध-तत्सम एव तद्भव रूप पाली मे प्रयुक्त होने लगे। फल यह हुआ कि इस भाषा मे एक शब्द के दो-दो रूप स्थान पा गए। प्राचीन आर्य भाषा की अनेक ध्वनियाँ लुप्त हो गई। यथा, सध्यक्षर 'ऐ' तथा 'औ' को हटा कर पाली ने 'ए' तथा 'ओ' को अपनाया। सयुक्त व्यजनों से पूर्व ह्रस्व स्वर के प्रयोग की प्रवृत्ति बढी। 'ए' तथा 'ओ' ध्वनियाँ भी अपना उच्चारण पूर्ण मात्रा तक सुरक्षित न रख सकी, उन्हे भी सयुक्त व्यजनो से पूर्व आने पर ह्रस्व होना पडा। ऋ, लृ तथा विसर्ग ध्वनियो का लोप हो गया। स्वराघात के स्थान पर शब्दो के किसी विशेष भाग पर बलाघात की प्रवृत्ति बढी। श्, ष्, का उच्चारण 'स' के रूप मे होने लगा, अत ये ध्वनियाँ मध्य कालीन आर्य-भाषाओ मे न रही। अनुस्वार स्वतत्र नासिका स्वर बन गया तथा 'म्' को भी सर्वत्र अनुस्वार के रूप मे प्रयोग किया जाने लगा।

मागधी इस समय प्राच्य जन-भाषा थी। उसके सम्पर्क से भी पाली के साहित्यिक रूप मे कई मिश्रण हुए। यथा, कुछ शब्दो मे दन्त्य व्यजनो के स्थान पर मूर्धन्य व्यजन आ गए। पाली मध्यदेश की भाषा थी, अत इसमें 'र्' और 'ल्' दोनो ध्वनियाँ थी, परन्तु पूर्व की जन-भाषा मे इनमे से केवल 'ल्' ध्वनि थी। अत पाली के अनेक शब्दो मे 'र्' के स्थान पर भी 'ल्' ध्वनि रह गई। इसी प्रकार उत्तर-पश्चिम की जन-भाषा के प्रभाव से पाली

---

१ हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास—डा० उदयनारायण तिवारी पृष्ठ ६६।

की 'लृ' ध्वनि कहीं-कहीं पर 'र्' भी हो गई। किन्तु संस्कृत की अनेक ध्वनियाँ भी पाली तथा तत्कालीन अन्य प्राकृत जन-भाषाओं में समान रूप से बदल गईं। यथा, संस्कृत 'क्ष' ध्वनि पाली तथा अन्य प्राकृतों में 'क्ख्' या 'च्छ' बन गई।

अशोक के शिलालेखों से मध्यकालीन आर्य-भाषा की प्रथम अवस्था के विभिन्न क्षेत्रीय विकासों का अच्छा पता चलता है। साहित्यिक पाली की एक-रूपता से भाषा के विकास का उतना पता नहीं चलता, जितना पता अशोक के शिलालेखों की भाषा से चलता है, क्योंकि वे भारत भर के विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय भाषा-रूपों को ध्यान में रखकर निर्मित हुए थे। क्षेत्रीय जनता की भाषा का उन शिलालेखों में प्राचीन रूप सुरक्षित है। पेशावर से ४० मील उत्तर-पूर्व शाहबाजगढ़ी में तथा पंजाब के हजारा जिले में जो दो शिलालेख मिले हैं, उनमें खरोष्ठी लिपि का प्रयोग किया गया है। गुजरात में गिरनार पर्वत पर, देहरादून जिले में कालसी नामक स्थान पर तथा उड़ीसा में धौली और जौगड नामक स्थानों पर जो अन्य चार शिलालेख मिले हैं, उनसे भी जन-भाषा के विभिन्न रूपों का पता चलता है। डा० उदयनारायण तिवारी ने इन शिलालेखों के आधार पर निम्नांकित तीन जन-भाषाओं का पता लगाया है :–[1]

१–उत्तरी-पश्चिमी जन-भाषा

२–मध्य-देशीय जन-भाषा या दक्षिणी-पश्चिमी जन-भाषा

३–प्राच्य भाषा

ख–द्वितीय अवस्था (१ ई० से ५०० ई० तक)–मध्य एशिया में अश्वघोष (१००–२०० ई०) के दो संस्कृत नाटकों की खण्डित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनसे तत्कालीन आर्य-भाषाओं के अध्ययन की पर्याप्त सामग्री संकलित की गई है। इन नाटकों में जनता की प्राकृत भाषाओं का प्रयोग मिलता है। जनता की भाषा में निरन्तर परिवर्तन हो रहा था। अशोक के शिलालेखों में जिन जन-भाषाओं का प्रयोग किया गया है, वे ही बाद में 'प्राकृत' के नाम से पुकारी जाने लगीं। संस्कृत भाषा जनता से दूर हट गई थी और पाली बौद्ध धर्म की भाषा बन गई थी। इसलिए संस्कृत के विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में संस्कृत के साथ जनता की प्राकृत भाषाओं का प्रयोग भी प्रारंभ कर दिया था। अश्वघोष के नाटकों की भाषा इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। काव्यों में भी प्राकृतों के प्रयोग की परम्परा चली।

---

१ हिन्दी-भाषा का उद्गम और विकास, डा० उदयनारायण तिवारी पृष्ठ ९२।

वस्तुत 'प्राकृत' नाम तत्कालीन सभी जन-भाषाओ को इसलिए दिया गया था क्योंकि वे बिना किसी नियम के प्रकृत रूप मे जन-साधारण मे प्रयुक्त होती थी। यह नाम सस्कृत की तुलना मे दिया गया था, क्योकि यह भाषा जन-साधारण की भाषाओ के ठीक विपरीत पाणिनीय व्याकरण के अटल नियमों से शासित थी। पाली की साहित्यिकता की ओर विद्वानो ने 'प्राकृत, नाम देते समय ध्यान नही दिया था। इसलिए मध्यकालीन आर्य-भाषा की द्वितीय अवस्था मे जो जन-भाषाएँ विकसित हुई, उनको निम्नाकित प्राकृतो के नाम से पुकारा गया—

१—मागधी प्राकृत
२—अर्द्धमागधी प्राकृत
३—शौरशेनी प्राकृत
४—महाराष्ट्री प्राकृत
५—पैशाची प्राकृत

ये प्राकृत भाषाएँ भी सस्कृत भाषा के ग्रन्थो मे स्थान पाने तथा स्वतत्र ग्रन्थ-रचना का माध्यम बन जाने के कारण धीरे-धीरे जन-साधारण मे बोले जाने वाले अपने रूपो से भिन्न हो गईं। आज इन प्राकृतो के जो रूप उपलब्ध है, वे जनता की प्राकृत बोलियो से पर्याप्त भिन्न है, किन्तु उन रूपो के अध्ययन की कोई सामग्री उपलब्ध नही है। साहित्यिक प्राकृतो का सक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जाता है—

१ **मागधी प्राकृत**—यह प्राकृत प्राचीन मगध क्षेत्र की जन-भाषा थी, जो धीरे-धीरे साहित्यिक भाषा बनने का प्रयत्न करती रही। सस्कृत के नाटको मे इस प्राकृत का प्रयोग निम्न श्रेणी के पात्रो की बात-चीत मे मिलता है। इस भाषा मे वर्ण-विकार अधिक होता रहा। 'र्' ध्वनि के स्थान पर 'ल्' 'स्' एव 'ष्' के स्थान पर 'श्' आदि करने की प्रवृत्तियाँ इस भाषा मे मिलती है।

'शवरी' तथा 'चाण्डाली' बोलियाँ मागधी से विकृत होकर बनी तथा 'शाकारि' नामक एक त्रिभाषा भी इससे उत्पन्न हुई।

२ **अर्द्धमागधी प्राकृत**—इसका दूसरा नाम आर्षी भी है। जैन-आचार्यों ने इस भाषा को साहित्यिक भाषा बनाकर जन-भाषा से दूर कर दिया। काशी और कोशल के क्षेत्र मे पहले यह जन-भाषा के रूप मे प्रयुक्त होती

थी। सस्कृत के नाटको में भी इस प्राकृत का प्रयोग होता था। इस प्राकृत पर शौरशेनी और मागधी दोनो का सम्मिलित प्रभाव पाया जाता है। डा० उदयनारायण तिवारी के मतानुसार "अर्ध-मागधी की एक प्रमुख विशेपता यह है कि स्वर-मध्यग लुप्त स्पर्श-व्यजनो का स्थान 'य्' ध्वनि ले लेती है।"[1]

३. **शौरसेनी प्राकृत**—इस प्राकृत का मूल केन्द्र शूरसेन प्रदेश अर्थात् मथुरा था। यह क्षेत्र मध्यदेश के केन्द्र मे पडता था। अत सस्कृत भाषा का इस पर बहुत प्रभाव पडा। सस्कृत के नाटको मे इस भाषा का प्रयोग स्त्रियो और विदूषको की बातचीत मे मिलता है। मध्यदेश की भाषा होने के कारण इसका प्रभाव-क्षेत्र धीरे-धीरे बढता रहा। इस भापा की सबसे बडी विशषेता यह है कि दो स्वरो के बीच मे सस्कृत के 'त्' और 'थ्' क्रमश 'द्' और 'ध्' बन जाते हैं, पर 'द्' और 'ध्' हो तो उनके रूप मे परिवर्तन नही होता। गच्छति का गच्छदि तथा यथा का 'जधा' हो जाना इसके प्रमाण हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने शौरसेनी को पश्चिमी आर्य-भाषा का मुख्य रूप माना है।[2]

४. **महाराष्ट्री प्राकृत**—यह प्राकृत साहित्यिक दृष्टि से अन्य प्राकृतो की अपेक्षा अधिक विकसित है। सस्कृत नाटको मे प्राकृत के जो पद्य मिलते हैं, वे इसी भाषा मे लिखे गए हैं। यह प्राकृत इतनी अधिक विकसित हो गई थी कि कवि-गण इसमे स्वतत्र काव्य-रचना भी करने लगे थे। "रावणवहो" (रावण-बध) तथा 'गउडवहो' काव्य इसी प्राकृत मे लिखे गए थे। इस प्राकृत मे स्वर-मध्यग स्पर्श व्यजन घिस गए हैं तथा ख्, थ्, फ्, घ्, घ् तथा 'म्' के स्थान पर 'ह' हो गया है। यथा—क्रोध =कोहो, गच्छति =गच्छइ, यथा = जहा।

डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने इसे शौरसेनी प्राकृत और शौरसेनी अपभ्रंश के बीच की अवस्था बतलाया है।[3] यह प्राकृत महाराष्ट्र क्षेत्र की भाषा थी।

५. **पैशाची प्राकृत**—कहा जाता है कि गुणाढ्य की बृहत्कथा, जो अब उपलब्ध नही है, इसी भाषा मे लिखी गई थी।[4] इस भाषा की चर्चा सस्कृत ग्रन्थो मे भी मिलती है। काव्यादर्श (१/३८) मे इसे "भूत भाषा" कहा गया है। वाग्भटालकार (२/३) मे इसे 'भौतिक' नाम से भी पुकारा गया है।

---

१ हिन्दी-भाषा का उद्‌गम और विकास—पृष्ठ १७

२ देखिए, हिन्दी भाषा का इतिहास, पृष्ठ ४७

३ देखिए, इडो आर्यन एण्ड हिन्दी, पृष्ठ ८६

४ देखिए, अपभ्रश-साहित्य—डा० हरिवश कोछड़, पृष्ठ १४

सरस्वती-कण्ठाभरण (५७/११) मे इसका 'भूत-वचन' नाम भी मिलता है। वस्तुत. यह उस पिशाच जाति की भाषा थी, जिसके नाम का उल्लेख महाभारत (७/१२१/१४) मे किया गया है। गुलेरी जी ने कश्मीर के उत्तरी क्षेत्र को 'पिशाच' देश माना है तथा वहाँ की भाषा को पैशाची कहा है, किन्तु वास्तव मे यह प्राकृत वर्तमान् राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा कश्मीर के कुछ क्षेत्रो मे बोली जानेवाली भाषा थी। डा० उदयनारायण तिवारी ने इस भाषा की निम्नांकित दो विशेषताएँ बतलाई है—

"१—सघोष व्यंजनो के स्थान पर समान अघोष व्यंजनो का प्रयोग, यथा, नगर का नकर, राजा का राच।

२—पैशाची की दूसरी विशेषता यह बताई गई है कि इसमे स्वर-मध्यग स्पर्श-व्यंजनो का लोप नही होता।"[1]

पैशाची मे इन नियमो के अनुसार बदलने वाले कुछ अन्य रूप देखिए—

मेघो = मेखो
वारिद = वारितो
गगन = गकन

३. **तृतीय अवस्था**—(५०० ई०–१००० ई०) मध्यकालीन आर्य-भाषा का विकास ५०० ई० से १००० ई० तक चरम सीमा पर पहुँचा। इस काल मे विभिन्न प्राकृतो से अपभ्रंश बोलियाँ अलग होकर विकसित हुईं और धीरे-धीरे वे भी प्राकृतो की तरह साहित्यिक भाषा बनी। अपभ्रंश भाषाओ के विकास को प्राकृत की व्याकरण-गत अस्वाभाविकता ने अधिक बल दिया। जनता ने जब देखा कि प्राकृतो के साहित्यिक रूप उनकी स्वाभाविक बोली से दूर होते जा रहे है तथा वैयाकरण उन्हे व्याकरण के नियमो मे जकडने लगे है, तो उन्होने अपनी बोलियो का स्वतंत्र विकास किया। शिष्ट समाज जो प्राकृत-भाषी था, जन-बोलियो को अशुद्ध, अपभ्रष्ट आदि घृणा-सूचक विशेषणों से पुकारता रहा। अन्त मे जनता की बोलियो का नाम ही "अपभ्रंश" पड गया। अपभ्रंश का अर्थ है "बिगडी हुई" भाषा। किन्तु वास्तविकता यह थी कि ये जन-भाषाएँ विकास की नई दिशा खोज रही थी। जब साहित्यिक प्राकृते जन-वाणी से अलग होकर मृत हो गईं तो अपभ्रंशो को भी गौरव मिलने लगा। साहित्यकारो ने उनमे ग्रन्थ लिखना प्रारंभ किया। डा० धीरेन्द्र वर्मा का मत है कि साहित्यकार लोग "तत्कालीन

---

१ हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास, पृष्ठ ११९

बोली के आधार पर आवश्यक परिवर्तन करके साहित्यिक प्राकृतों को ही अपभ्रंश बना लेते थे, शुद्ध अपभ्रंश, अर्थात् लोगो की बोली मे नही लिखते थे।"[1] उनके इस कथन का आशय यही है कि जिस समय अपभ्रंश भाषाओं को साहित्य मे स्थान मिला उस समय जनता की अपभ्रंश का रूप दूसरा ही रहा होगा, जिसके कोई लिखित प्रमाण आज उपलब्ध नही हैं। तथापि, ग्रन्थो मे जिस रूप मे विभिन्न अपभ्रंश भाषाएँ मिलती है, उनसे जनता की बोलियो का भी यत्किञ्च अनुमान तो लगाया ही जा सकता है।

डा० धीरेन्द्र वर्मा ने प्रत्येक प्राकृत से एक अपभ्रंश का उदय माना है। उनके मतानुसार शौरसेनी प्राकृत से शौरसेनी अपभ्रंश, मागधी प्राकृत से मागधी अपभ्रंश, अर्द्धमागधी प्राकृत से अर्द्धमागधी अपभ्रंश, महाराष्ट्री प्राकृत से महाराष्ट्री अपभ्रंश तथा पैशाची प्राकृत से पैशाची अपभ्रंश उत्पन्न हुई। उन्होने पैशाची का उल्लेख नही किया है, किन्तु "इत्यादि" शब्द लगाकर उसी की सूचना दी है।[2] अपभ्रंश के वैयाकरणो ने ये भेद नही किए है, इसका कारण यह है कि व्याकरण के लिए साहित्यिक अपभ्रंश को ही अध्ययन का आधार बनाया गया होगा। साहित्यिक अपभ्रंश का रूप प्रायः समान पाया जाता है, केवल कही-कही ग्रन्थो में स्थानीयता की झलक मिल जाती है। इसलिए वैयाकरणो की दृष्टि में अपभ्रंश के ये तीन रूप थे—

(१) नागर अपभ्रंश
(२) ब्राचड अपभ्रंश
(३) उपनागर अपभ्रंश

(१) नागर अपभ्रंश—यह गुजरात मे बोली जाती थी। इसके बोलने वाले नागर ब्राह्मण थे, अत इसका नाम नागर अपभ्रंश पडा और इसी आधार पर नागरी लिपि का भी नाम पडा—ऐसा अनुमान लगाया गया है। शौरसेनी प्राकृति से इस अपभ्रंश का उदय हुआ था। आगे चलकर इसी अपभ्रंश में हेमचद्र ने अपना अपभ्रंश का प्रसिद्ध व्याकरण बनाया था।

(२) ब्राचड़ अपभ्रंश—इस अपभ्रंश का प्रचार सिन्ध क्षेत्र में था, जो अब हिन्दुस्तान मे नही है। यह अपभ्रंश भी शौरसेनी प्राकृत के ही एक रूप से बनी थी।

(३) उपनागर—पश्चिमी राजस्थान तथा दक्षिणी पंजाब की बोली थी। यह भी शौरसेनी प्राकृत से ही उत्पन्न हुई थी।

---

१ हिन्दी भाषा का इतिहास, पृष्ठ ४८

२ देखिए, हिन्दी भाषा का इतिहास, पृष्ठ ४८

अपभ्रंश भाषाओ मे सस्कृत एव प्राकृत से चले आने वाले अन्त्य स्वरो का लोप हो गया था तथा अन्य स्वरो से पूर्व पडने वाले स्वरो की मात्रा शेष रह गई थी। आरभ मे आने वाले अक्षर मे व्यजन का द्वित्व समाप्त् करके एक व्यजन का प्रयोग होने लगा था। इसी प्रकार व्याकरण-सम्बन्धी भी कई नई विशेषताएँ विकसित हो गई थी। सस्कृत के तत्सम शब्दो को तद्भव बनाकर अपनाने के साथ-साथ जनता मे प्रचलित नए शब्द भी सभी अपभ्रशो मे स्वतत्रता से स्थान पाने लगे थे। इस प्रकार १००० ई० तक आते-आते अपभ्रशों के रूप मे आर्य-भाषा का जो विकास हुआ, उसमे धीरे-धीरे उन प्रवृत्तियो के बीज आ गए थे, जिनसे आगे चलकर आधुनिक आर्य-भाषाओ के विकास की परम्परा प्रारभ हुई।

३ **तृतीय युग** आधुनिक आर्य भाषा-काल (१००० ई० से अद्यावधि)

१००० ई० के लगभग भारतीय आर्य-भाषा के विकास का तीसरा युग प्रारभ हुआ। विभिन्न अपभ्रशो ने आधुनिक भारतीय भाषाओ के रूप में विकास किया। १००० ई० की सीमा-रेखा मोटे तौर पर ही स्वीकृत हो सकती है, क्योकि अपभ्रशो से देशी भाषाओ का उदय एकाएक नही हुआ। प्रत्येक देशी भाषा ने धीरे-धीरे रूपग्रहण किया। साथ ही, अपभ्रश से आधुनिक भाषा के उदय की प्रक्रिया में अपभ्रश का विकास एकदम रुक गया था। बहुत समय तक बाद मे भी उसमे साहित्य लिखा जाता रहा। आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओ का जो प्रारभिक रूप मिलता है, उसमे भी अपभ्रश का मिश्रण पर्याप्त मात्रा मे दिखाई देता है। बारहवी शताब्दी मे हेमचद्राचार्य ने अपभ्रश का व्याकरण लिखा, जिससे यह सिद्ध होता है कि उस समय के लगभग अपभ्रश जन-भाषा का साथ छोडने की प्रतिज्ञा कर चुकी थी तथा व्याकरण के शास्त्रीय नियमो से शासित होना चाहती थी। हेमचद्र ने ग्रामीण अपभ्रश का उल्लेख किया है, जिससे यह स्पष्ट सकेत मिलता है कि उस समय जन-भाषा को अपभ्रश से पृथक् कर दिया गया था। किन्तु जन-भाषा के विभिन्न रूप शीघ्र ही साहित्य मे भी आदर पाने लगे तथा सोलहवी-सत्रहवी शताब्दी मे सभी नवोदित जन-भाषाओ का साहित्य समृद्धता प्राप्त करने लगा। इससे सिद्ध होता है कि अपभ्रश मे व्याकरण-रचना के पूर्व से जन-भाषाएँ आदर पाने लगी थी तथा साहित्यकार भी उनको साहित्य में लाने को उत्साहित हो रहे थे, इसीलिए विद्वानो ने व्याकरण के नियमो से जकड़ कर अपभ्रश के रूप की जन-भाषाओ के मिश्रण से सुरक्षा की।

उधर जन-भाषाओ मे साहित्य-रचना की जो प्रवृत्ति झलकी, उसने सिद्ध कर दिया कि वे भी अपभ्रशो का विकास रोककर अपने लिए स्वतत्र दिशाएँ खोज रही थी।

ईसा की पन्द्रहवी शताब्दि के आस-पास जन-भाषाएँ अपने पुराने अपभ्रश रूपो से पूर्णत मुक्त होकर नए रूपो मे प्रकट हुई। इस समय निम्नांकित भाषाएँ अपने जन-प्रचलित रूप को सुधार कर साहित्य-सिंहासन पर प्रतिष्ठत हुईं। प्रत्येक भाषा के सामने उस अपभ्रश का नाम भी दिया जा रहा है, जिससे उसका उदय हुआ।

आधुनिक आर्य भाषाएँ

असमी	—मागधी	अपभ्रश
बँगला	—	,, ,,
बिहारी	—	,, ,,
उड़िया	—	,, ,,
पूर्वी हिन्दी	—अर्द्ध-मागधी	अपभ्रश
पश्चिमी हिन्दी	—शौरसेनी	अपभ्रश
राजस्थानी	—	,, ,,
गुजराती	—	,, ,,
पहाडी	—	,, ,,
पजाबी	—	,, ,,
मराठी	—महाराष्ट्री	अपभ्रश
आधुनिक सिन्धी	—पैशाची	अपभ्रश

डा० उदयनारायण तिवारी ने पजाबी को भी पैशाची अपभ्रश से उत्पन्न माना है[1] तथा डा० धीरेन्द्र वर्मा ने सिन्धी को ब्राचड अपभ्रश से उत्पन्न बतलाया है। वर्मा जी ने लहँदा के लिए केकय अपभ्रश की भी कल्पना की है। इसी प्रकार यह भी माना है कि पहाडी भाषाएँ 'खस' नाम की किसी अपभ्रश से उत्पन्न हुईं और बाद मे वे राजस्थानी से प्रभावित हो गई। शौरसेनी अपभ्रश के नागर रूप से राजस्थानी और गुजराती को उत्पन्न बताकर वर्मा जी ने इन दोनो भाषाओ की पारस्परिक निकटता की ओर भी सकेत किया है।[2]

---

१. देखिए, हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृष्ठ १५८

२. देखिए, हिन्दी भाषा का इतिहास, पृष्ठ ४८–४९

अपभ्रश भाषाओ से उत्पन्न होने वाली पूर्वोक्त सभी आधुनिक भाषाओं मे से पूर्वी आर्य-भाषाएँ पश्चिमी भाषाओ की अपेक्षा जल्दी-जल्दी रूप-परिवर्तन करती रही। इसी का परिणाम् यह हुआ कि बिहारी और बँगला भाषाओ ने मध्यकालीन अपभ्रश-रूपो को अधिकाश मे छोड दिया, किन्तु पजावी और सिन्धी मे मध्यकालीन अधिकाश प्रवृत्तियाँ सुरक्षित है। सस्कृत का प्रभाव भी कई आधुनिक आर्य-भाषाओ ने अधिकाश मे स्वीकार किया है।

आधुनिक आर्य-भाषाओ मे स्वरो के मात्राकाल मे पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। कही-कही स्वरो के लोप की प्रवृत्ति भी अधिक बढ गई है। उच्चारण-सम्बन्धी अन्तर भी आधुनिक आर्य भाषाओ मे आ गया है। सस्कृत के तत्सम शब्दो मे यह अन्तर स्पष्ट प्रकट होता है। यथा, मराठी मे 'च्' एव 'ज्' का उच्चारण 'त्स' तथा 'द्ज्' हो गया है। इसी प्रकार राजस्थानी तथा पश्चिमी हिन्दी मे अनेक ध्वनियो का उच्चारण वदल गया है। सस्कृत से प्राकृत मे होकर आधुनिक आर्य-भाषाओ तक आने वाले शब्द किस प्रकार रूप वदलने को बाध्य हुए है, यह निम्नाकित उदाहरणो से जाना जा सकता है—

सस्कृत	प्राकृत	आधुनिक
कर्म	कम्म	काम (हिन्दी)
अद्य	अज्ज	आज ,,
कण्टक	कण्टअ	काँटा ,,
घृत	घिअ	घी ,,
वत्सरूप	बच्छरूअ	वाछुर (बँगला)
अरघट्ट	अरहट्ट	रहट (हिन्दी)

लिंग-सम्बन्धी परिवर्तन भी आधुनिक आर्यभाषाओ मे हुआ है। सस्कृत के तीन लिंग प्राकृत मे भी स्वीकृत हुए थे, किन्तु आधुनिक आर्य-भाषाओ मे स्त्रीलिंग एव पुल्लिग ही रह गए, तीसरा नपुसक लिंग हट गया। साथ ही, सस्कृत के तत्सम शब्दो को भी आधुनिक भाषाओ मे स्त्रीलिंग एव पुल्लिग सम्वन्धी नई प्रवृत्तियो से शासित किया गया। परिणाम्, यह हुआ कि सस्कृत के अनेक पुल्लिग शब्द आधुनिक आर्य-भाषाओ मे स्त्रीलिंग वन गए। सस्कृत के अनेक नपुंसक लिंग शब्द भी स्त्रीलिंग वन गए। कुछ उदाहरण देखिए—

स० पु०	प्रा० आ० भा० मे स्त्रीलिंग
इक्षु	ईख (हिन्दी)
	ऊस (मराठी)

अग्नि	आग (हिन्दी)
	अग्ग (पंजाबी)
आत्मा	आत्मा } (हिन्दी)
	आतमा

इसी प्रकार वचनो मे भी परिवर्तन हुआ। आधुनिक आर्य-भाषाओ मे सस्कृत के कई एकवचन शब्द बहुवचन के रूप में प्रयुक्त होने लगे एव बहुवचन को एकवचन के रूप मे भी प्रयुक्त किया जाने लगा। सस्कृत के द्विवचन के लिए तो कोई स्थान नही रहा, उसे बहुवचन मे ही सम्मिलित कर दिया गया तथा क्रिया-प्रयोगो मे सरलता आ गई।

आधुनिक आर्य-भाषाओ ने शब्द-कोष के क्षेत्र मे भी उदारता दिखाई। देशज तथा विदेशी शब्दो को अपनी प्रकृति से शासित करके सभी आधुनिक आर्य-भाषाओ ने अपनाया। इसका फल यह हुआ कि द्रविड आदि अन्य भारतीय भाषा-परिवारो के शब्द तो आधुनिक आर्य-भाषाओ मे आए ही, अरबी, फारसी तथा अँगरेजी भापाओ के भी अनेक शब्द अपना लिए गए। इन देशी-विदेशी भाषाओ का आधुनिक आर्य-भाषाओ की वाक्य-रचना आदि पर भी पर्याप्त प्रभाव पडा। अनेक विदेशी ध्वनियाँ भी स्वीकार की गई। यथा क ख ज़ फ आदि ध्वनियाँ अरबी फारसी से आई तथा 'ऑ' ध्वनि का अगरेजी से आगमन हुआ। प्रत्येक भाषा ने अपनी-अपनी लिपि विकसित करने का प्रयत्न भी तीव्र कर दिया। इस प्रकार आधुनिक आर्य भाषाएँ उन समृद्ध रूपो को प्राप्त हुई, जो आजकल उपलब्ध हैं।

आधुनिक आर्य-भाषाएँ अपने-अपने क्षेत्र में विकास कर रही हैं। लगभग सभी प्रमुख भाषाओं का अपना व्याकरण है। उनमे साहित्यिक समृद्धता आ रही है तथा उनकी विभिन्न बोलियाँ और उपभाषाएँ भी विकास कर रही हैं। आधुनिक आर्य-भाषाओ की सबसे महत्व-पूर्ण विशेषता यह है कि वे एक ओर तो जन-जीवन की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बनती जा रही हैं और दूसरी ओर उनकी शब्द तथा रचना सम्बन्धी समृद्धता भी बढती जा रही है। हिन्दी, बँगला, मराठी आदि कई आधुनिक आर्य भाषाएँ विश्व की महत्वपूर्ण भाषाओ मे स्थान पा रही है। इनका साहित्य विश्व के उच्च कोटि के साहित्य की श्रेणी में गिना जाने लगा है। निश्चय ही आधुनिक आर्य-भाषाओं का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। हिन्दी को इन भाषाओ में क्षेत्र, समृद्धता तथा साहित्यिक दृष्टि से प्रथम स्थान प्राप्त है। भारतीय जनता ने उसे अपनी राष्ट्रभाषा के रूप मे स्वीकार किया है।

४ | आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ का वर्गीकरण करने के लिए जिन प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वानो ने प्रयत्न किए है, उनमे सर जार्ज ग्रियर्सन तथा डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन दोनो विद्वानो के मतो मे पर्याप्त अन्तर है। दोनो ने अपने-अपने वर्गीकरण के कुछ मौलिक सिद्धान्त भी बतलाए है। यथा--

सर जार्ज ग्रियर्सन का सिद्धन्त

डा० ए० एफ० आर० हार्नले ने सन् १८८० मे आधुनिक आर्य-भाषाओ के अध्ययन के आधार पर यह मत निर्धारित किया था कि भारतवर्ष मे आर्य दो बार मे बाहर से आकर बसे थे। जो आर्य पहले आए थे, वे पजाब में बस गए थे और जो आर्य बाद मे आए, उन्होने पूर्वागत आर्यों को विस्थापित किया। कहा जाता है कि दूसरी बार आने वाले आर्य मध्य एशिया से चले थे तथा काबुल नदी के मार्ग से गिलगित एव चित्रल मे होकर वे मध्यदेश की ओर बढ़े थे। इन आर्यों ने पूर्वागत आर्यो को पूर्व से दक्षिण तथा पश्चिम की ओर खदेड दिया एवं मध्यदेश में अपनी सस्कृति फैलाई। उस समय की उनकी बस्तियो के अनुसार मध्यदेश की सीमा उत्तर मे हिमालय, दक्षिण मे विन्ध्याचल, पश्चिम में सरहिन्द तथा पूर्व मे प्रयाग के सगम तक थी। इस प्रकार पूर्वागत आर्य मध्यदेश की बाहरी सीमाओ पर रहे, इसलिए उन्हे बाहरी आर्य कहा गया एव मध्यदेशीय आर्यो को भीतरी आर्य कहा गया। सर जार्ज ग्रियर्सन ने आर्यों के इस भीतरी एव बाहरी भेद को आधार बनाया और इसी के अनुसार आधुनिक आर्य-भाषाओ का वर्गीकरण किया। उनके मतानुसार भारतीय आर्य भाषाये दो भागो मे विभक्त हो गईं। इसी एतिहासिक स्थापना के अनुसार उन्होने आधुनिक आर्य-भाषाओ के भीतरी अर्थात् अतरग एव बाहरी

अर्थात् बहिरग, दो वर्ग बनाए। अन्तरग शाखा मे उन्होंने नवागत आर्यों की मध्य-देशीय भाषाओ को सम्मिलित किया तथा बहिरग भाषाओ मे पूर्वागत आर्यो की सीमावर्ती भाषाएँ सम्मिलित की। उन्होने इस ऐतिहासिक स्थापना के साथ-साथ उच्चारण तथा व्याकरण को भी वर्गीकरण के समय ध्यान मे रखा। अतरग शाखा की उन्होने एक मध्यवर्ती उपशाखा भी बनाई। उनके वर्गीकरण के सिद्धान्त मे एक अन्य महत्वपूर्ण बात सम्मिलित है। वह यह है कि उन्होंने अतरग एव बहिरग भाषाओ की प्रवृत्ति भी अलग-अलग बताई है। उनका मत है कि बहिरग भाषाएँ सयोगावस्था मे है तथा अतरग भाषाएँ वियोगा-वस्था मे है। अत ये दोनो शाखाएँ उनके मत से निम्नाकित सिद्धान्तो पर आधारित है--

१--ऐतिहासिक अन्तर
२--उच्चारण-भेद
३--व्याकरण की भिन्नता
४--सयोग और वियोग की पृथक्-पृथक् प्रवृत्तियाँ

डा० सुनीतिकुमार चटर्जी का सिद्धान्त

डा० चटर्जी को डा० ग्रियर्सन का मत कई आपत्तियो के कारण स्वीकार नही हुआ। उनका कथन है कि अन्तरग और बहिरग शाखाओ मे जो भाषाएँ सम्मिलित की गई है, उनमे परस्पर भी ध्वनि एव रचनात्मक व्याकरण सम्बन्धी पर्याप्त भेद है। पूर्व और पश्चिम की भाषाएँ विषमता के अनेक तत्वो से युक्त है। उनके मत से वे भाषाएँ जिनमे परस्पर भिन्नता है, किसी एक अन्तरग या बहिरग शाखा मे नही रखी जा सकती। वे सर जार्ज ग्रियर्सन की ऐति-हासिक स्थापना से भी सहमत नही है। वे यह मानते है कि सप्तसिन्धु मे आर्यो का निवास प्रामाणिक है। उन्होंने ग्रियर्सन के वर्गीकरण को सशोधित करने के लिए अपने नए सिद्धान्त स्थापित किए है। अन्तरग वर्ग की भाषा को केन्द्र मानकर उन्होने समस्त आर्य-भाषाओ का वर्गीकरण किया है। उन्होने हिन्दी के इधर-उधर की भाषाओ को उदीच्य, प्रतीच्य' मध्य, दाक्षिणात्य, प्राच्य नामक वर्गों मे विभाजित किया है। इस प्रकार डा० चटर्जी के सिद्धान्त मे मूलत ऐतिहासिक स्थापना का अन्तर है। उन्होने हार्नले के मत से असहमत होकर आर्यों के सप्तसिन्धु-निवास को वर्गीकरण का आधार बनाया है।

यहाँ दोनो विद्वानो द्वारा किए गए वर्गीकरण प्रस्तुत किए जाते है।

सर जार्ज ग्रियर्सन का वर्गीकरण

सर जार्ज ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओ को अन्तरग, मध्य तथा बहिरग शाखाओ मे इस प्रकार विभाजित किया है.—

१—बहिरंग शाखा

इस शाखा की भाषाएँ निम्नाकित तीन वर्गो मे विभाजित है

क—पश्चिमोत्तरी वर्ग

(1) लहँदा

(11) सिन्धी

ख—दक्षिणी वर्ग

(1) मराठी

ग—पूर्वी वर्ग

(1) असमी या असमिया

(11) बँगला

(111) उड़िया या उत्कली

(1V) बिहारी

२—मध्यवर्ती शाखा

इसको बहिरग तथा अन्तरग शाखाओ के मध्य मे माना है।

भाषा—(1) पूर्वी हिन्दी

३—अन्तरग शाखा

इस शाखा के निम्नाकित दो वर्ग है—

क—केन्द्रीय वर्ग

(1) पश्चिमी हिन्दी

(11) पजाबी

(111) गुजराती

(1V) भीली

(V) खानदेशी

(V1) राजस्थानी

ख—पहाड़ी वर्ग

(1) पूर्वी पहाड़ी या नेपाली

(11) केन्द्रवर्ती पहाडी

(111) पश्चिमी पहाडी

इन भाषाओ मे गुजराती को अन्तरग शाखा मे लिया गया है, यद्यपि गुजरात—जिस क्षेत्र की यह भाषा है—मध्यदेश का भाग नही है। पर इसका कारण यह है कि मध्य देश के केन्द्र मथुरा ने इस क्षेत्र को प्रभावित किया था, अत वहाँ की भाषा का मध्यदेशीय भाषा की प्रवृत्तियों के अनुसार विकास हुआ।

डा० सुनीतिकुमार चटर्जी का वर्गीकरण

डा० चटर्जी ने पूर्वोक्त वर्गीकरण को अस्वीकार कर अपना वर्गीकरण इस प्रकार प्रस्तुत किया—

क—उदीच्य या उत्तरी वर्ग
- **१–सिन्धी**
- **२–लहँदा**
- **३–पजाबी**

ख—प्रतीच्य या पश्चिमी वर्ग
- **१–गुजराती**
- **२–राजस्थानी**

ग—मध्यदेशीय वर्ग
- **१–पश्चिमी हिन्दी**

घ—प्राच्य या पूर्वी वर्ग
- **१–पूर्वी हिन्दी**
- **२–बिहारी**
- **३–उडिया**
- **४–बँगला**
- **५–असमी या असमिया**

ङ—दाक्षिणात्य या दक्षिणी वर्ग
- **१—मराठी**

इनमे से उन्होने पूर्वी हिन्दी को कोशली नाम भी दिया है तथा बिहारी, उडिया, बगला एव असमिया को मागधी से प्रसूत मानकर पूर्वी हिन्दी से अलग माना है, यद्यपि इन सब का वर्ग एक ही बतलाया है।

समीक्षा—डा० चटर्जी ने कश्मीरी एव पहाडी भाषाओ को दरद या खस भाषा से उत्पन्न बतलाया है। वस्तुत कश्मीरी भाषा कश्मीर निवासी सारस्वत ब्राह्मणो की भाषा रही है। अत यह भाषा सस्कृतनिष्ठ है एव आधुनिक

आर्य-भाषाओ मे उसका महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय सविधान मे इस भाषा को भी आधुनिक भाषाओ मे स्वीकृत किया गया है। डा० चटर्जी ने इस भाषा की सिन्धी, पजाबी एव लहँदा से जो समानता है, उसे भुला दिया है तथा केवल असमानता को ध्यान मे रखा है। इसी प्रकार उन्होने पहाडी भाषा की भी उपेक्षा की है। उन्होने पहाडी बोलियो को राजस्थानी, प्राकृत एव अपभ्रशो से प्रभावित मानकर तथा पैशाची, दरद एव खस से सम्बन्धित करके पृथक् स्थान नही दिया। इसी प्रकार डा० ग्रियर्सन के वर्गीकरण मे भौगोलिक और भाषा-वैज्ञानिक आधार तो है, परन्तु सिन्धी और असमी को वहिरग शाखा मे रखकर उन्होने भी भूल की है। साथ ही मध्यवर्ती शाखा मे केवल पूर्वी हिन्दी को रखना ठीक नही है, क्योकि पश्चिमी हिन्दी ही वास्तव मे भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से मध्यवर्ती भाषा है। डा० चटर्जी के वर्गीकरण मे इस प्रकार का दोष नही है। ग्रियर्सन महोदय यह नही समझ पाए कि पश्चिमी तथा पूर्वी वहिरग शाखा मे अन्तर है और पश्चिमी तथा पूर्वी अतरग शाखाएँ भी समान नही है। वे पश्चिमी अतरग तथा पश्चिमी वहिरग की समानता से भी अपरिचित रहे है। डा० चटर्जी ही इस अन्तर और समानता को वैज्ञानिक ढग से समझते है। ग्रियर्सन का मत था कि वहिरग भाषाओ मे शब्दाश इ, उ, ए लुप्त हो जाते है, परन्तु यह बात सभी वहिरग भाषाओं पर घटित नही होती। साथ ही उनका यह कथन कि वहिरग भाषाओ मे 'इ' का 'ए' और 'उ' का 'ओ' हो जाता है, अन्तरग भाषाओ पर भी लागू होता है। तव उनके वर्गीकरण की वैज्ञानिकता ही क्या रही ? अन्तरंग और वहिरग शाखाओ के रूपात्मक तथा व्याकरणिक—दोनो प्रकार के साम्य को डा० ग्रियर्सन उपेक्षित कर गए है। डा० चटर्जी के वर्गीकरण मे इस प्रकार की त्रुटियाँ नही है। ग्रियर्सन महोदय को स्वय भी अपने वर्गीकरण की वैज्ञानिकता मे सदेह हो गया था, अत उन्होंने अपने मत मे निम्नाकित द्वितीय वर्गीकरण प्रस्तुत करके सशोधन किया था।' इसी प्रकार डा० चटर्जी ने भी अपने मत की त्रुटियो का परिहार करने के लिए एक दूसरा वर्गीकरण प्रस्तुत किया था। दोनों विद्वानो के द्वितीय वर्गीकरण इस प्रकार है—

सर जार्ज ग्रियर्सन का द्वितीय वर्गीकरण

१—मध्यदेशीय भाषा

क—हिन्दी (पश्चिमी)

२--अन्तवर्ती भाषाएँ इसकी दो शाखाएँ कीं--

अ--मध्यदेशीय भाषा से सम्बद्ध अन्तर्वर्ती भाषाएँ--

(क) पंजाबी

(ख) राजस्थानी

(ग) गुजराती

(घ) पहाड़ी वर्ग (नेपाली)

ब--बहिरंग से सम्बद्ध अन्तवर्ती भाषा

(क) पूर्वी हिन्दी

३--बहिरंग भाषाएँ--

इसके उन्होंने तीन भेद किए --

क--पश्चिमोत्तरी वर्ग

(१) लहँदा

(२) सिन्धी

ख--दक्षिणी वर्ग

(१) मराठी

ग--पूर्वी वर्ग

(१) बिहारी

(२) उड़िया

(३) बँगला

(४) असमी या असमिया।

इस वर्गीकरण मे गुजराती, भीली तथा खानदेशी को राजस्थानी मे सम्मिलित कर दिया गया है।

डा० चटर्जी का द्वितीय वर्गीकरण

१--प्रथम श्रेणी--उत्तरी पहाड़ी वर्ग

(1) नेपाली

(11) गढ़वाली

२--द्वितीय श्रेणी--पश्चिमोत्तरी पहाड़ी वर्ग

(1) लहँदा

(11) सिन्धी

३--तृतीय श्रेणी--मध्यदेशीय वर्ग

(1) पश्चिमी हिन्दी

१--खड़ी बोली

२--ब्रजभाषा

३--उर्दू

४--बाँगरू

५--बुंदेली

(ii) पंजाबी

(iii) राजस्थानी

(iv) गुजराती

४--चतुर्थ श्रेणी--पूर्व मध्य वर्ग

(i) पूर्वी हिन्दी

१--अवधी

२--बघेली

३--छत्तीसगढ़ी

५--पञ्चम श्रेणी--पूर्वी वर्ग

(i) असमी या असमिया

(ii) बँगला

(iii) उड़िया

(iv) बिहारी

६--षष्ठ श्रेणी--दक्षिणी वर्ग

(i) कोंकणी

(ii) हल्बी

इन दोनो मे भी ग्रियर्सन के वर्गीकरण की अपेक्षा डा० चटर्जी का वर्गीकरण ही अधिक वैज्ञानिक है। उनके द्वारा बनाए गए वर्गों मे अपवादो के लिए अधिक स्थान नही है। किन्तु यह बात ग्रियर्सन के वर्गीकरण के विषय मे नही कही जा सकती।

डा० धीरेन्द्र वर्मा ने भी डा० चटर्जी के वर्गीकरण मे अधिक वैज्ञानिकता स्वीकार की है तथा उसी के आधार पर निम्नांकित वर्गीकरण स्वीकार किया है और कहा है कि, "ग्रियर्सन साहब के समुदायो के विभाग से यह वर्गीकरण कुछ साम्य रखता है।"[1]

---

१ हिन्दी भाषा का इतिहास--डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ ५३

डा० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा स्वीकृत वर्गीकरण[1]

क—उदीच्य (उत्तरी)

१—सिन्धी

२—लहँदा

३—पंजाबी

ख—प्रतीच्य (पश्चिमी)

४—गुजराती

ग—मध्य देशीय (बीच का)

५—राजस्थानी

६—पश्चिमी हिन्दी

७—पूर्वी हिन्दी

८—बिहारी

घ—प्राच्य (पूर्वी)

९—उड़िया

१०—बंगाली

११—असमी

ङ—दाक्षिणात्य (दक्षिणी)

१२—मराठी

जो विद्वान् डा० चटर्जी तथा ग्रियर्सन, दोनो के वर्गीकरण को अवैज्ञानिक बताते हैं, उनमे श्री राममूर्ति मेहरोत्रा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने अपना वर्गीकरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

१—पश्चिमी भाषाएँ

(क) सिन्धी

(ख) पंजाबी

(ग) लहँदा

(घ) राजस्थानी

(ङ) गुजराती

(च) मराठी

(छ) पहाड़ी

२—केन्द्रीय भाषाएँ

[1] हिन्दी भाषा का इतिहास—डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ ५३

(क) पश्चिमी हिन्दी

३--पूर्वी भाषाएँ--

(क) हिन्दी पूर्वी

(ख) बिहारी

(ग) बँगला

(घ) उडिया

(ङ) असमी

इस वर्गीकरण मे सरलता तो अवश्य है, किन्तु वैज्ञानिकता इसमे अधिक नही है। साथ ही, इसे मौलिक भी नही कहा जा सकता। आचार्य सीताराम चतुर्वेदी ने भी एक वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, किन्तु वह भी भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि पर आधारित नही है।

अत अन्त मे हमे डा० धीरेन्द्र वर्मा के साथ सहमत होकर डा० चटर्जी के वर्गीकरण को ही सबसे अधिक वैज्ञानिक मानने के लिए बाध्य होना पडता है। उन्होने अपने वर्गीकरण के साथ जो भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन तथा सूक्ष्म दृष्टि प्रस्तुत की है, वह भी उसके साथ पर्याप्त महत्व रखती है।

डा० चटर्जी के वर्गीकरण की वैज्ञानिकता निम्नाकित निष्कर्षो पर आधारित है--

१--गुजराती, राजस्थानी, पश्चिमी हिन्दी आदि अतरग भाषाओ मे अल्पप्राण और महाप्राण का अभेद मिलता है। यथा,

वेश = भेस

विभूति = भभूति

२--सिन्धी और लहँदा भाषाओ मे 'स' का 'ह' हो जाता है एव मराठीव बँगला मे 'श' हो जाता है। अन्तरग भाषाओ मे भी 'स' का 'ह' या 'श हो जाता है। यथा--

केसरी = केहरी

तस्य = ताहि

द्वादश = बारह

३--म्ब का 'म' या 'बन' अन्तरग भाषाओ मे हो जाता है तथा 'इ' का 'उ' भी हो जाता है। यथा--

अम्बी = अमिया

निम्बु = नीबू

बिन्दु = बूंद

४––बहिरंग और अन्तरंग की अपनी-अपनी सब धातुएँ तथा शब्द समान नही हैं। बँगला और बिहारी के शब्दो मे मराठी से भिन्नता है। इसी प्रकार बहिरंग के शब्द अन्तरंग में मिलते है।

५––विभक्ति तथा प्रत्यय-प्रधान शब्द बहिरंग मे ही हो ऐसी बात नही, वे अन्तरंग मे भी पाए जाते हैं। यथा––

मैंने =मैं

तूने =तैंने

साथे =माथे पर

६––सब बहिरंग भाषाओ मे भूतकालिक क्रियाओ के अन्तर्गत सर्वनाम का समाहार नही मिलता।

७––सभी भूतकालिक क्रियाओ के रूपो मे कर्त्ता के पुरुष तथा वचन का बोध नही होता, अकर्मक क्रियाओ के भूतकाल से ही होता है। सकर्मक क्रियाओ के भूतकालिक रूपो मे बहिरंग और अन्तरंग शाखाओ की पूर्वी तथा पश्चिमी भाषाओ मे अत्यधिक भिन्नता मिलती है। पूर्वी भाषाएँ कर्त्ता-प्रधान हैं तथा पश्चिमी भाषाएँ कर्म-प्रधान हैं। फलत सकर्मक भूतकालिक क्रियाओ से कर्त्ता के पुरुष और वचन का बोध केवल पूर्वी भाषाओ मे ही सभव है।

इन तर्कों के आधार पर स्व-भिन्न मत का खण्डन कर डा० चटर्जी ने अपना मत प्रमाणित किया है। अब तक भाषा-विज्ञान के क्षेत्र की उपलब्धियो के अनुसार आधुनिक आर्य-भाषाओ के वर्गीकरण की बात इससे आगे नही बढी है। वास्तव मे डा० चटर्जी के वर्गीकरण मे जो वैज्ञानिकता है उसको भुलाया नही जा सकता और इसीलिए यह कहा जा सकता है कि वह वर्गीकरण ही अब तक किए गए तद्विषयक प्रयासो में सर्वाधिक महत्व रखता है।

आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं का परिचय | ५

गत अध्याय में हमने डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, सर जार्ज ग्रियर्सन तथा अन्य विद्वानो के मतानुसार जिन आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओ का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, उनका सक्षिप्त परिचय जान लेना अत्यावश्यक है, ताकि उनके सदर्भ मे हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक अध्ययन भली प्रकार किया जा सके। यहाँ भौगोलिक क्रम से प्रत्येक भाषा के सम्बन्ध मे अपेक्षित जानकारी प्रस्तुत की जाती है –

१. **सिन्धी**—सिन्ध प्रदेश मे पहले व्राचड नाम का एक प्रदेश था। इसी प्रदेश के नाम पर वहाँ की अपभ्रश व्राचड कहलाती थी। इस अपभ्रश से १००० ई० के पश्चात् सिन्धी भाषा का उदय हुआ। समस्त सिन्ध मे यह भाषा बोली जाती है। इसको बोलने वाले अधिकाश हिन्दू लोग भारत के विभिन्न क्षेत्रो में आ गए हैं, क्योकि सिन्ध प्रान्त पाकिस्तान मे चला गया है। डा० उदयनारायण तिवारी ने इसको पैशाची के निकट माना है। इस भाषा की पाँच प्रमुख बोलियाँ हैं। मध्य भाग की बोली का नाम 'बिचोली' है। इसी बोली ने सिन्धी का साहित्यिक स्थान ग्रहण किया है। इस भाषा की अपनी विकसित लिपि नही है, इसलिए साहित्यिक कार्यों मे फारसी लिपि के एक विकृत रूप का तथा घर के कार्यो मे देवनागरी के एक विकृत रूप का प्रयोग होता है। कभी-कभी इस भाषा को गुरुमुखी लिपि मे भी लिखा जाता है। इस भाषा मे साहित्य अधिक नही है। शब्द-कोष मे अरबी-फारसी के शब्द भी सम्मिलित हो गए हैं। सस्कृत के प्राकृत और अपभ्रश के माध्यम से बदलते आने वाले शब्द लगभग ५० प्रतिशत हैं। कुछ ध्वनियो का प्रयोग नए ढग से होता है। यथा, ग्, ज्, ड्, ब् आदि ध्वनियाँ कुछ कण्ठावरोध के

तथा पश्चिमी दो भेदों मे बाँट दिया गया है। इस भाषा का क्षेत्र मध्य-देश रहा है। खडी बोली तथा ब्रजभाषा पश्चिमी हिन्दी की प्रमुख बोलियाँ है, जो साहित्य-रचना का माध्यम भी है। खडी बोली ही आजकल गद्य और पद्य-रचना की भाषा बनी हुई है। शौरसेनी अपभ्रंश से इसकी उत्पत्ति मानी जाती है। इसने विभिन्न बोलियो और भाषाओ के शब्दो तथा अन्य सामग्री को अपनाया है। उर्दू को इसी भाषा की एक शाखा माना जाता है। देवनागरी इसकी लिपि है। इस भाषा का साहित्य ससार के समृद्ध साहित्यो मे गिना जाता है। भारतीय सविधान मे इस भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप मे स्वीकृत किया गया है।

७. **पूर्वी हिन्दी**—यह हिन्दी का वह रूप है, जो पश्चिमी हिन्दी के पूर्व मे पडता है। इस भाषा का पश्चिमी हिन्दी तथा बिहारी दोनो से सम्बन्ध है। इसका व्याकरण पश्चिमी हिन्दी से साम्य रखता है, किन्तु कुछ बातों मे यह बिहारी व्याकरणिक प्रवृत्तियाँ भी अपनाए हुए है। अवधी, बघेली और छत्तीसगढी इस भाषा की मुख्य बोलियाँ है। इन बोलियो मे से अवधी का विशेष महत्व है, क्योकि उसमे पर्याप्त साहित्य-रचना हुई है। गोस्वामी तुलसी दास तथा जायसी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थो की इसी बोली मे रचना की थी। बघेली में लोक-साहित्य बहुत लिखा गया है। अर्द्ध-मागधी अपभ्रंश से इस भाषा की उत्पत्ति मानी जाती है। देवनागरी लिपि मे इसका साहित्य लिखा जाता है। यह भाषा बोलचाल से अधिक दूर नही है। बिहार के मुसलमान भी इसी भाषा को बोलते है।

८ **बिहारी**—बँगला भाषा के क्षेत्र के पूर्व मे पूर्वी हिन्दी के क्षेत्र तक बिहारी बोली जाती है। बिहार राज्य के अतिरिक्त यू० पी० के वाराणसी, मिर्जापुर, गाजीपुर, बलिया, जौनपुर की केराकत तहसील, आजमगढ, देवरिया, गोरखपुर तथा बस्ती के कुछ भाग मे भी यह भाषा बोली जाती है। मैथिली, मगही एव भोजपुरी बिहारी भाषा की प्रमुख बोलियाँ है। वास्तव मे बिहारी भाषा इन तीनो बोलियो का ही काल्पनिक नाम है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार राजस्थान की ४–५ बोलियो को मिलाकर राजस्थानी नाम दिया गया है। वैसे यह भाषा भी हिन्दी की ही एक उपभाषा है। मागधी अपभ्रंश से इस भाषा की उत्पत्ति मानी जाती है। मैथिली की बँगला से मिलती-जुलती एक लिपि भी है, जो देवनागरी को विकृत करके बनाई गई है। भोजपुरी तथा मगही बोलियाँ कैथी लिपि मे लिखी जाती है। हिन्दी भाषा मे इन बोलियो का ब्रज, अवधी आदि की तरह साहित्य सम्मिलित है। मैथिली

का पुराना साहित्य प्रसिद्ध है। मैथिल कोकिल विद्यापति का नाम इस सदर्भ मे उल्लेखनीय है। समस्त विहार मे घरेलू भाषा के रूप मे विहारी की पूर्वोक्त बोलियाँ काम मे आती है। किन्तु, साहित्य-रचना, शिक्षा तथा राज-काज मे खडी वोली हिन्दी का ही प्रयोग होता है।

९. **उडिया**--आजकल जिस क्षेत्र को उडीसा कहते है, उसका प्राचीन नाम उत्कल है। उडिया उसी क्षेत्र की भाषा है, इसलिए इसको उत्कली भी कहते हैं। यह भाषा भी मागधी अपभ्रश से निकली है, अत विहारी और बँगला से बहुत मिलती है। यह माना जाता है कि बँगला से पृथक् होकर यह भाषा चौदहवी शताब्दि मे विकास को प्राप्त हुई। तेलुगु तथा मराठी भाषाओ से इसका क्षेत्र मिलता है, इसलिए इन भाषाओ के भी पर्याप्त शब्द इस भाषा मे आ गए है। इसके अतिरिक्त उर्दू तथा अँगरेजी के शब्दो का भी इसमे मिश्रण हुआ है। इस भाषा का व्याकरण बँगला के व्याकरण से बहुत मिलता-जुलता है। इसकी लिपि कुछ अधिक क्लिष्ट है। देवनागरी और बँगला लिपियो से वह साम्य नही रखती। इसमे कृष्ण-सम्बन्धी पर्याप्त साहित्य लिखा गया है। आजकल यह भाषा सभी दृष्टियो से विका-सोन्मुख है।

१०. **बँगला**--यह भाषा भी मागधी से उत्पन्न हुई है तथा असमी, उडिया और विहारी की बहिन मानी जाती है। इस भाषा को सस्कृत की शब्दा-वली अधिक प्रिय है। इसलिए अपने मागधी अपभ्रश रूप को छोडती हुई शब्दकोष की दृष्टि से यह भाषा सस्कृत की क्रोड मे पहुँच गई है। इस भाषा मे कई ध्वनियाँ भी विकसित हुई है। हिन्दी के 'स्' को 'श्' कर देने की विशेष प्रवृत्ति मिलती है। इसकी तीन मुख्य उपशाखाएँ है--पश्चिमी, पूर्वी तथा पूर्वोतरी। इनमे पश्चिमी बँगला ही साहित्य मे प्रतिष्ठित है। पूर्व बँगला का क्षेत्र आजकल पाकिस्तान मे चला गया है। बँगला भाषा और साहित्य को अँगरेजी भाषा और साहित्य ने भी विशेष प्रभावित किया है। नई चेतना को सबसे पहले भारत मे यही भाषा अपनाती रही है। इस भाषा की बँगला नाम की अपनी लिपि है, जो देवनागरी का ही एक रूप है। इस भाषा मे पर्याप्त साहित्य भी लिखा गया है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर इसी भाषा के कवि है, जो नोबिल पुरस्कार से सम्मानित किए गए है। इस भाषा मे सस्कृत शब्दो की अधिकता होने के कारण हिन्दी के निकट पहुँचने की क्षमता अधिक है। व्याकरण की दृष्टि से भी यह एक समृद्ध भाषा है।

११. **असमी**--यह असम प्रदेश की भाषा है। बँगला और उडिया के समान

यह भाषा भी मागधी अपभ्रश से उत्पन्न हुई है। इस भाषा का व्याकरण बँगला से पर्याप्त समानता रखता है। इस भाषा मे साहित्य की कमी है, किन्तु ऐतिहासिक ग्रन्थ अधिक लिखे गए है। असमी और बँगला मे समानता होने के कारण प्रत्येक असमी भाषी मनुष्य बँगला बोल लेता है। यही कारण है कि असमी मे पर्याप्त साहित्य न होने पर लोग बँगला के साहित्य से काम चला लेते है। किन्तु अब इस भाषा मे अच्छा साहित्य लिखा जा रहा है। इस भाषा की लिपि बँगला का ही एक परिवर्तित रूप है।

१२. **मराठी**—महाराष्ट्र प्रदेश की भाषा को मराठी कहते है। इस भाषा का विकास महाराष्ट्री अपभ्रश से माना जाता है। द्रविड परिवार की भाषाओ का पडौस होने के कारण यह भाषा उनसे प्रभावित होती रही है तथा उन्हे भी पर्याप्त प्रभावित करती रही है। इस भाषा की तीन मुख्य बोलियाँ है जिनमे पूना के आस-पास की बोली को साहित्य मे स्थान प्राप्त हुआ है। इस भाषा मे पर्याप्त समृद्ध साहित्य मिलता है। इसकी 'मोडी' नाम की एक लिपि है, जो दैनिक व्यवहार मे काम आती है। साहित्यिक कार्यों मे देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाता है।

१३. **पहाड़ी**—इसके तीन भेद है—

१. **पूर्वी पहाड़ी**—इसे नेपाली भी कहते है। यह हिमालय के दक्षिणी भाग मे नेपाल-क्षेत्र मे बोली जाती है। गोरखाली, खसकुरा तथा पर्वतिया इसके अन्य नाम है। काठमाडू की घाटी मे जो लोग रहते है उनकी भाषा पूर्वी पहाडी का शुद्ध रूप है। यह भाषा देवनागरी लिपि मे लिखी जाती है। इसमे नया साहित्य भी मिलता है।

२. **मध्य पहाड़ी**—इसके दो उपभेद है—कुमाउँनी और गढवाली। यह भाषा उत्तर प्रदेश के पहाडी जिलो मे बोली जाती है। इसमे साहित्य अधिक नही है। देवनागरी इस भाषा की लिपि है।

३. **पश्चिमी पहाड़ी**—इसका क्षेत्र शिमला के आसपास पडता है। इसका कोई निश्चित रूप नही है। कई बोलियो का समूह पश्चिमी पहाडी कहलाती है। इस भाषा मे साहित्य भी नही मिलता। इसकी बोलियो की टक्करी नाम की लिपि है, केवल चबाली नाम की बोली एक भिन्न लिपि में लिखी जाती है। इस बोली का मारवाडी से बहुत सम्बन्ध हैं।

जैसा कि गत अध्याय में बताया जा चुका है, सर जार्ज ग्रियर्सन ने भीली और खानदेशी को भी आधुनिक आर्य भाषाओ मे पृथक् स्थान दिया है। किन्तु वास्तव मे स्वतत्र भाषाएँ नही है, इसलिए उनका परिचय यहाँ

नही दिया जा रहा है। पूर्वोक्त भाषाओ के परिचय से स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा ही उन सब मे अधिक महत्व रखती है। वही मध्यदेश की प्रमुख भाषा है, साथ ही पूर्वी देश मे भी उसका विस्तार है। आजकल समस्त भारत में उसके बोलने वाले पाए जाते हैं। भारत के अधिकाश नगरो मे दैनिक व्यवहार की भाषा हिन्दी बनती जा रही है। इस भाषा की लिपि देवनागरी अधिकाश आर्यभाषाओ द्वारा अल्पाधिक अन्तर से अपना ली गई है, यह तथ्य भी इसकी महत्ता सिद्ध करता है। वस्तुत इन्ही सब बातो के कारण हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा के पद पर न्यायोचित ढग से प्रतिष्ठित हुई है।

--- ---

६ | हिन्दी की परिभाषा

भारतीय भाषा-धारा वैदिक वाङमय के विशाल नगराज से उत्पन्न होकर भारतवासियो की वाणी मे अखण्ड रूप से प्रवाहित होती आ रही है। वैदिक युग मे यहाँ की जन-सख्या वर्तमान् समय की तुलना मे बहुत कम थी, इसलिए इस धारा का प्रवाह भी सकीर्ण था, किन्तु ज्यो-ज्यो जन-सख्या मे वृद्धि होती गई, त्यो-त्यो उसका प्रवाह भी विस्तीर्ण होता गया एव उसमे विविध-रूपता आती गई। गत अध्यायो मे हम देख चुके है कि किस प्रकार एक प्राचीन आर्यभाषा, वैदिक, सस्कृत, पाली, प्राकृत तथा अपभ्रश के विभिन्न रूप धारण करती हुई आधुनिक आर्यभाषाओ के रूप मे आई। इन रूपो मे हिन्दी का स्थान ठीक वैसा ही है, जैसा किसी धारा के विभिन्न शाखाओ मे बँट जाने पर मध्यवर्ती मूल शाखा का होता है। हिन्दी न केवल मध्यदेश की भाषा है, वरन् वैदिक भाषा से अपभ्रश भाषाओ तक की मध्यवर्ती प्रवृत्तियो को भी उसने अपनाया है। यह भाषा एक ओर सस्कृत की तत्सम-परम्परा से जुडी हुई है और दूसरी ओर अपभ्रश तक के भाषा-विकास की जन-प्रवृत्तियो से भी प्रभावित है। आधुनिक आर्य-भाषाओ की यह एक ऐसी बहिन है, जिसे सब के सत्कार का गौरव प्राप्त है। भारत-राष्ट्र की राष्ट्रभाषा का पद इस भाषा को प्राप्त हुआ है, जिससे यह भाषा भारत की आत्मा के सबसे अधिक निकट सिद्ध होती है। इस भाषा के, बोलियो और विभाषाओ के रूप में फैले हुए व्यक्तित्व की भिन्नता मे समाई हुई एकता को समझने के लिए यहाँ इसकी परिभाषा समझ लेना आवश्यक है।

'हिन्दी' शब्द का इतिहास

'हिन्दी' की परिभाषा समझने के लिए सबसे पहले 'हिन्दी' शब्द का इतिहास जान लेना आवश्यक है। पाठको को यह जानकर आश्चर्य होगा कि जिस भारतीय भाषा को यह नाम दिया गया है, उस भाषा का यह शब्द नही

है। साथ ही यह नाम रखने वाले भी वे लोग है, जो इस देश मे नही रहते थे। फारस के मुसलमानो ने यह शब्द हमे दिया और हमारी भाषा को उसे स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नहीं हुई। यह केवल हमारी उदारता का ही प्रतीक नही है, वल्कि हमारी भाषा की भी उदारता को सूचित करता है।

हमारे देश के प्राचीन नाम 'भरतखण्ड' और 'जम्बू द्वीप' है। आज भी "भरत खण्डे जम्बू द्वीपे" कहकर विवाहो मे सकल्प-पाठ किया जाता है। प्राचीन साहित्य मे ये नाम तो मिलते ही है, आर्यावर्त, उत्तरापथ और दक्षिणापथ नाम भी मिलते है। इन सब नामो से पुकारे जाने वाले देश की उस भाषा को जो उत्तर से दक्षिण तक तथा पूर्व से पश्चिम तक मूर्ख और पण्डित सब की श्रद्धा का भाजन थी तथा जिसमे समस्त सास्कृतिक कार्य सम्पन्न होते थे, सस्कृत कहा जाता था। वह प्राचीन भारत की राष्ट्रभाषा भी थी। वौद्ध काल मे उसी की जन-भाषा 'पाली' ने राष्ट्रभाषा का गौरव प्राप्त किया। आधुनिक काल मे उसका आधुनिक मध्यदेशीय रूप राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित है। कुछ शताब्दी पूर्व तक हम उसे केवल भाषा कहते आए थे। किन्तु जव विना नाम के उसका अस्तित्व खतरे मे पडा तो उसको नाम देने के अनेक प्रस्ताव हुए। किसी ने उसके लिए 'भारती' नाम प्रस्तावित किया, किसी ने नागरी नाम उचित वतलाया, किन्तु हम लोग अपनी ही वाणी का अपना दिया हुआ नाम स्वीकृत न कर सके। बाहरी पण्डितो को उसकी जन्म-पत्री दिखानी पडी और अन्त मे वही नाम स्वीकृत हुआ, जो वे अपनी ओर से कुछ समय पहले दे चुके थे --'हिन्दी'।

'हिन्दी' शब्द का इतिहास इस देश की 'हिन्दी' सज्ञा के रहस्य पर भी वहुत अधिक निर्भर है। पश्चिमी मुसलमानो का जब सिन्धु नदी से परिचय हुआ, तो वे उसे 'हिन्दु' नदी, उसके आस-पास के क्षेत्र को हिन्द तथा वहाँ के निवासियो को हिन्दू पुकारने लगे। इसका कारण यह था कि फारसी भाषा मे भारतीय आर्यभाषा सस्कृत का 'स' 'ह' बन जाता है। मुसलमानो से पूर्व ग्रीकवासियो ने भी इसी प्रकार अपनी भाषा के अनुसार 'सिन्धु' नदी को 'इन्दोस' नदी कहा था तथा उसके किनारे के निवासियो को 'इन्दोई' कहा था। वे सिन्धु नदी के निकटवर्ती क्षेत्र को 'इन्दिका' अथवा 'इन्दिके' कहते थे। धीरे-धीरे हिन्द इन्दिका आदि नाम उस समस्त देश के वाचक बन गए, जिसमे सिन्धु नदी बहती है। लैटिन भाषा मे उसी देश को इण्डिया कहा गया। इस 'हिन्द', इन्दिका या इडिया देश की जो केन्द्रवर्ती भाषा थी,

उसे एक नाम देने का प्रश्न भी हल होना था। 'हिन्द' शब्द को हिन्दी बनाकर उस हल को प्रस्तुत किया गया।

'हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा' गाने वाले इकबाल ने हिन्दी शब्द का प्रयोग यहाँ रहने वालो के लिए किया है। उससे बहुत पहले खुसरो इस शब्द का प्रयोग भारतीय मुसलमानो के लिए कर चुके थे।[1] इस प्रकार यह शब्द इतना व्यापक बन गया था, जिसमे जाति और धर्म के आधार पर कोई भेद-भाव व्याप्त नही था। इसलिए इस देश के धर्म और जाति को हिन्दू या हिन्दी कहकर जब पुकारा गया तो भाषा का नाम-करण करते समय 'हिन्दी' शब्द ही अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ। इस प्रकार आरभ मे यहाँ रहने वाले भारतीय मुसलमान हिन्दी कहलाए, बाद मे यहाँ रहने वाले हिन्दू व मुसलमान सब को हिन्दी कहा गया और उनकी मध्य-देशीय निवास-भूमि की भाषा हिन्दी बन गई।

धार्मिक भेद-भाव से प्रभावित हिन्दू-पण्डितो ने आर्य-वाणी के लिए यह नाम उपयुक्त नही समझा, इसलिए उन्होने उसके लिए भारती और नागरी जैसे सस्कृत नाम दुहराए। अन्य लोगो ने हिन्दुई, हिन्दवी, दक्खिनी, हिन्दुस्तानी नाम दिए। हिन्दुस्तानी को तत्समता-प्रेमी लोगो ने एक बार फिर शुद्ध करना चाहा और 'हिन्दुस्थानी' नाम दिया। पर यह नाम भी स्वीकृत न हुआ। धीरे-धीरे सभी नामो की आवाजे मद पड गई, केवल 'हिन्दी' नाम शेष बचा।

नाम की सार्थकता

वस्तुत यह नाम अपना अस्तित्व सुरक्षित रख सका, इसका एक आधार है। हमारी भाषा को यह नाम उसके अनुकूल ही मिला है। सिन्धु से हिन्दु और उससे हिन्दी नाम विकास का सूचक है। वह तत्सम से तद्भव की प्रवृत्ति प्रकट करता है। जन-भाषा होने का रहस्य भी यह नाम अपने अन्दर छिपाए हुए है। आर्यों ने उत्तरी भारत के मध्य क्षेत्र मे बसकर वहाँ अपनी सस्कृति और भाषा का प्रसार किया था। इसी क्षेत्र को मध्यदेश कहते थे। शौरसेनी अपभ्रश वैदिक जन-भाषा की परम्परा मे इसी मध्य देश में विकसित हुई थी। इस शौरसेनी अपभ्रश से जो भाषा ग्यारहवी शताब्दि से अब तक

१ देखिए, डा० उदयनारायण तिवारी कृत "हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास" पृष्ठ १८३।

निरन्तर विकास करती आ रही है, उसी का नाम हिन्दी है। स्वामी दयानद सरस्वती ने इसी भाषा को आर्यभाषा कहा है।

हिन्दी की सीमा

मध्य देश, जिसके निवासियो की भाषा को हिन्दी कहा गया है, सीमाओ की दृष्टि से उत्तर मे अम्बाला और शिमला से लेकर दक्षिण मे रायपुर और खण्डवा तक फैला हुआ है तथा पूर्व मे भागलपुर से लेकर जैसलमेर तक उसका विस्तार है। इस क्षेत्र मे साहित्य, शिक्षा और शिष्ट समाज मे जिस भाषा का प्रयोग होता है, उसे हिन्दी कहते हैं। साधारण जनता के व्यवहार मे जो भाषा प्रयुक्त होती है, वह इसी हिन्दी का ग्रामीण रूप है, अत उसमे सर्वत्र एकरूपता नही है। जन-भाषाके वे विभिन्न रूप हिन्दी की बोलियाँ और विभाषाएँ मानी जाती हैं। इन बोलियो मे से जो बोली साहित्य, शिक्षा और शिष्ट-व्यवहार की भाषा बन जाती है, वही हिन्दी कहलाने लगती है। मध्यकाल मे ब्रज-क्षेत्र की बोली हिन्दी के पद पर प्रतिष्ठित थी, बाद मे उसके साथ अवधी को भी वह स्थान प्राप्त हुआ। आजकल दिल्ली के आसपास की बोली खडीबोली-उस पद पर आसीन है और हिन्दी कहलाती है। अत आजकल विशेष रूप से हिन्दी भाषा का आशय खडी बोली के साहित्यिक रूप से ही है। किन्तु व्यापक अर्थ मे हिन्दी भाषा उन सब बोलियो और विभाषाओ का सम्मिलित नाम है, जो मध्यदेश की पूर्वोक्त सीमाओ मे बोली जाती हैं। भाषाविज्ञान मे इस क्षेत्र की दो विभाषाओ को हिन्दी से अलग करके अध्ययन किया जाता है। वे विभाषाएँ हैं—राजस्थानी और बिहारी। पहाडी क्षेत्र की बोलियो को पहाडी भाषा के नाम से अलग कर दिया जाता है। यही तक नही हिन्दी को भी पूर्वी हिन्दी तथा पश्चिमी हिन्दी नामक दो भेदो मे बाँट दिया जाता है। अत भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण से हिन्दी शब्द का अर्थ पर्याप्त सकुचित हो जाता है। भाषा-विज्ञान मे जब हम 'हिन्दी-भाषा' शब्द का प्रयोग करते हैं, तो इसी सकुचित अर्थ को अपनाते हैं। परन्तु यह अर्थ केवल अध्ययन की सुविधा के लिए ही ग्रहण किया जाता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार साहित्य मे 'हिंदी-भाषा' का अर्थ आजकल केवल 'खडी बोली' से लिया जाता है।

हिन्दी और उर्दू

'हिन्दी भाषा' की इस व्यापक परिभाषा का लाभ उठाकर ही अनेक लोगों

ने उसे उर्दू शब्दावली से भरने की भी कोशिश की है और इस प्रकार हिन्दी उर्दू का अन्तर मिटाना चाहा है। किन्तु उर्दू वास्तव मे हिन्दी नही है। उर्दू भाषा हिन्दी का ऋण लेकर अवश्य पली है, किन्तु शब्द, ध्वनि, वाक्य-रचना, लिपि सभी दृष्टियो से वह हिन्दी-भाषा से भिन्न है। उसमे उस अरबी भाषा के शब्दो का भी पर्याप्त मिश्रण है, जो आर्य-परिवार की भाषा नही है। अत हिन्दी भाषा की परिभाषा मे उर्दू भाषा सम्मिलित नही है। खडी बोली का सम्बन्ध उर्दू भाषा से भी है, क्योकि उसी की शक्ति लेकर अरबी-फारसी के माध्यम से उर्दू भाषा बनी थी। इसी सम्बन्ध के कारण लोग उर्दू और हिन्दी की एकता सिद्ध करने लग जाते है। पर वास्तव मे हिन्दी भाषा की प्रवृत्तियाँ उर्दू से बहुत भिन्न है।

कुछ पुरातन-प्रेमी लोगो तथा सस्कृतज्ञो को हिन्दी का सस्कृतीकरण अच्छा लगता है। वे तत्सम सस्कृत-शब्दावली से परिपूर्ण भाषा को 'हिन्दी भाषा' कहते है साथ ही सस्कृत-शब्दावली के अर्थों से अपरिचित लोग भी कभी-कभी क्लिष्ट हिन्दी को ही 'हिन्दी भाषा' कहने लगते है। यह प्रवृत्ति भी दोष-पूर्ण है। वास्तव म 'हिन्दी भाषा' सस्कृत की परम्परा मे विकसित होने पर भी अपनी प्रवृत्तियो की दृष्टि से स्वतत्र है। अत सस्कृत के लिंग, वचन, कारक, क्रिया आदि एव तत्सम शब्दावली से हिन्दी को लादने लगना भी "हिन्दी भाषा" के अर्थ को न समझना ही कहा जाएगा।

हिन्दी और हिन्दुस्तानी

अँगरेजी शासन काल मे एक तीसरा रूप हिन्दी को दिया गया था। बोलचाल की ऐसी भाषा जिसे अँगरेजी पढे-लिखे आदमी व्यवहार मे लाते थे, 'हिन्दुस्तानी' कहलाने लगी थी। यह हिन्दुस्तानी उस अर्थ से भिन्न थी जिस अर्थ मे बाबर के आत्म-चरित (Memories of Babar, Lucas) म हिन्दुस्तानी शब्द का निम्नाकित प्रकार से प्रयोग किया गया है—

> "I have made him sit down before me and desired a man who understood the 'Hindustani' Language to explain to him what I said sentence by sentence in order to re-assure him."[१]

अँगरेजो ने यह नाम अपनी सुविधा के लिए उस भाषा के लिए गढा था, जिसमे हिन्दी, उर्दू और अँगरेजी का मिश्रण रहता था। ग्रियर्सन ने

---

१ "हिन्दी ही क्यो ?" कमला देवी गर्ग, पृष्ठ २१० का उद्धरण।

भी इस भाषा को 'हिन्दी' से भिन्न माना है, जैसा कि उनके निम्नांकित कथन से स्पष्ट है—

> "The word 'Hindustani' was coined under European influence and means the language of Hindustan".[1]

गान्धी जी पहले हिन्दी के समर्थक थे, किन्तु बाद मे साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के मुसलमानो की आलोचना से प्रभावित होकर उन्होने अपने राजनैतिक उद्देश्य से 'हिन्दुस्तानी' नाम का प्रचार प्रारभ किया। आरभ मे वे भी इस नाम से 'हिन्दी' का अर्थ लगाना चाहते थे, किन्तु मुसलमानो को भी सन्तुष्ट करना चाहते थे। अत हिन्दुस्तानी पुन 'हिन्दी' का अर्थ लेकर न चल सकी। उसमे अरबी-फारसी के शब्दो की सख्या बढने लगी। यो अल्पकाल मे ही पुन हिन्दी और हिन्दुस्तानी का भेद स्पष्ट हो गया। हिन्दुस्तानी वह भाषा कहलाई जिसमे महर्षि वाल्मीकि के लिए मौलवी वाल्मीकि तथा रानी सीता के लिए बेगम सीता जैसे शब्दो का प्रयोग किया जाता था।

आज भी हिन्दुस्तानी शब्द कभी-कभी सुनाई देता है। उसमे अरबी, फारसी तथा अँगरेजी के शब्दो का ही नही, क्रिया-पद आदि का भी मिश्रित प्रयोग रहता है। किन्तु वह भाषा हिन्दी नही है। इसी प्रकार हिन्दी को भी कभी-कभी हिन्दुस्तानी के नाम से भ्रमात्मक बनाया जाता है। लोगो का दोष भी क्या है ? अब भी उत्तर प्रदेश की प्रसिद्ध हिन्दी-सेवी सस्था का नाम "हिन्दुस्तानी एकेडेमी" है। नाम मे एक भी शब्द हिन्दी का नही और काम सब हिन्दी का। परन्तु इन सब भ्रमो के होते हुए भी यह समझ लेना कठिन नही है कि हिन्दी भाषा एक स्वतत्र भाषा है, जिसकी अपनी शब्दावली, ध्वनि-समूह, वाक्य-रचना की पद्धति तथा अन्यान्य प्रवृत्तियाँ है। उसको मध्यदेश जैसा विशाल क्षेत्र प्राप्त है तथा उसकी अनेक बोलियाँ और विभाषाएँ है। हिन्दी का अपना विशाल साहित्य है, जो गत १००० वर्षो से विकसित होता आ रहा है तथा उसके पीछे आर्य जाति की एक विशेष सस्कृति है।

---

१ हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, डा० उदयनारायण तिवारी पृष्ठ १९१ से उद्धृत।

७ | हिन्दी की प्रधान उपभाषाएँ

'भाषा' शब्द का प्रयोग सामान्य अर्थ मे होता है। इस शब्द के अर्थ की सीमा ग्रामीण अशिक्षित मनुष्य की बोली से लेकर शिष्ट और शिक्षित मनुष्य की बोली तथा साहित्यिक व्यवहार की भाषा तक विस्तृत है। अत भाषा को निम्नाकित तीन भेदो मे विभाजित किया गया है–

१–भाषा (साहित्यिक)

२–विभाषा या उपभाषा

३–बोली

हिन्दी को भाषा कहा जाता है। सामान्यतः 'हिन्दी भाषा' शब्द का प्रयोग ऐसे विस्तृत और व्यापक अर्थ मे होता है, जिसमे उसका विभाषा रूप और बोली रूप—दोनो सम्मिलित है। अपने क्षेत्र के अन्तर्गत हिन्दी के भिन्न-भिन्न ग्रामीण रूप बोले जाते है, उन्हे ग्रामीण हिन्दी कहा जाता है। ग्रामीण हिन्दी के प्रत्येक रूप को बोली माना जाता है। क्षेत्र के अनुसार हर एक बोली को अलग-अलग नाम दिए गए है। अत हिन्दी की कई बोलियाँ है, जिनका परिचय आगे के अध्याय मे दिया जाएगा।

सामान्य विशेषताओ के आधार पर बोलियो के अलग-अलग वर्ग बन जाते है। वे वर्ग भाषा के ही खण्ड होते है। एक वर्ग की बोलियो मे दूसरे वर्ग की बोलियो से कतिपय विशेषताएँ दूर से झलकने लगती है। उन्ही विशेषताओ के आधार पर बोलियो के उन वर्गों को उपभाषा या विभाषा कहा जाता है। उनमे से जिस उपभाषा मे साहित्य लिखा जाने लगता है, वह साहित्यिक भाषा बन जाती है। कभी-कभी कोई बोली उपभाषा का रूप प्राप्त किए बिना भी साहित्यिक भाषा बन जाती है। उदाहरण के लिए 'खडीबोली' दिल्ली-मेरठ के आसपास की बोली थी, किन्तु आजकल वह साहित्यिक भाषा बन गई है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोई उपभाषा या विभाषा

साहित्यिक भाषा बनने का प्रयत्न करती-करती अपनी व्याकरणिक प्रवित्तियो की भिन्नताएँ निर्धारित करके अपने वर्ग के बाहर निकल कर स्वतत्र भाषा भी बन जाती है।

हिन्दी की अवधी तथा ब्रज नामक बोलियो ने विभाषा का रूप धारण किए बिना साहित्यिक भाषा का आसन प्राप्त कर लिया था और अब खडी बोली उनके स्थान पर विराजमान है। वीरगाथा काल मे राजस्थानी भी डिगल के नाम से हिन्दी के साहित्यिक आसन पर प्रतिष्ठित हुई थी, किन्तु आजकल उस आसन पर खडी बोली का सर्वाधिकार है। डिगल (राज स्थानी), पिंगल (ब्रज) और अवधी——ये तीनो ही बोलियाँ अब उस आसन पर प्रतिष्ठित होने का गौरव नही पा सकती, क्योकि खडी बोली ने अत्यधिक विकास कर लिया है। इन बोलियो मे वह क्षमता नही है। ब्रज और अवधी को अपनी नई सीमाओ मे सन्तोष है। वे हिन्दी की बोली बन कर जीवित रहने मे ही अपना गौरव समझती हैं। किन्तु, डिगल को अपनी सीमाओ मे सन्तोष नही रहा, इसके दो कारण हैं——

१–डिगल को समान प्रवृत्ति वाली अन्य छोटी बोलियो का सहयोग पाकर अपना एक स्वतत्र वर्ग बनाने का अवसर मिलता रहा।

२–इस बोली के वर्ग मे जो बोलियाँ सम्मिलित हुईं, उनको अपने विकास के लिए राजनैतिक क्षेत्र भी प्राप्त होता रहा और आजकल उस क्षेत्र मे उनको स्वतत्र विकास का पूर्ण अवसर प्राप्त है।

प्रारभ मे डिगल को अन्य सम-प्रवृत्तियो वाली बोलियाँ अपने साथ लेकर विभाषा बनने का गौरव प्राप्त हुआ और अब वह राजनैतिक सुविधा से लाभ उठाकर तथा खडी बोली के स्थान को प्राप्त करने की असभावना को भलीभाँति समझ कर एक स्वतत्र भाषा भी बनना चाहती है। किन्तु इस समय वह एक विभाषा या उपभाषा के स्तर तक ही विकास कर सकी है। अत यहाँ एक विभाषा के रूप मे उसका विस्तृत परिचय दिया जाएगा।

बिहारी ने साहित्यिक भाषा बनने का गौरव तो कभी नही पाया, किन्तु बिहार-क्षेत्र की कतिपय बोलियो से अपना वर्ग बनाकर उसने अपने स्वतत्र अस्तित्व की घोषणा की है। इस विभाषा को भी राजस्थानी विभाषा की तरह भाषावैज्ञानिक दृष्टि से पर्याप्त सम्मान प्राप्त है। जिस प्रकार साहित्यिक भाषा बनने की इसने कभी चेष्टा नही की, उसी प्रकार हिन्दी के क्षेत्र

से बाहर जाने की भी कोई सभावना इसने व्यक्त नही की। अत यह हिन्दी की दूसरी प्रधान उपभाषा या विभाषा है।

उर्दू और हिन्दुस्तानी का भी हिन्दी की विभाषाओ के रूप मे विकास हुआ था, किन्तु बाद मे अरबी-फारसी के परिवार मे मिलकर उर्दू स्वतत्र भाषा वन गई एव हिन्दुस्तानी एक वोली मात्र रह गई। अतः इस अध्याय मे हिन्दी की प्रधान उपभाषाओ के रूप मे राजस्थानी एव विहारी का भाषा-वैज्ञानिक परिचय ही अभीष्ट है।

राजस्थानी

डा० उदयनारायण तिवारी ने भारतीय आर्यभाषाओ का विकास दिखाते हुए जो विवरण प्रस्तुत किया है, उसके अनुसार राजस्थानी भाषा के उद्‌गम को निम्नाकित रूप से दिखाया जा सकता है —

भारत-ईरानी भाषा-परिवार

|

भारतीय आर्य भाषा
(प्राचीन वैदिक)

|

प्राचीन आर्य भाषा की प्रतीच्य शाखा

|

शौरसेनी
(प्राकृत)

|

नागर अपभ्रश

|

राजस्थानी

डा० मोतीलाल मेनारिया के मतानुसार शौरसेनी प्राकृत से गुर्जरी और शौरसेनी अपभ्रशो का विकास हुआ तथा गुर्जरी अपभ्रश से राजस्थानी भाषा उत्पन्न हुई ।[१] उन्होने इसी अपभ्रश से गुजराती भाषा की भी उत्पत्ति मानी है तथा शौरसेनी अपभ्रश से हिन्दी को उत्पन्न बतलाया है । डा० सुनीति-

१ देखिए, राजस्थानी भाषा और साहित्य (पृष्ठ २–५) डा० मोतीलाल मेनारिया।

कुमार चटर्जी भी मानते हैं कि गुजराती और राजस्थानी भाषाओं के उद्गम का स्रोत एक ही रहा होगा तथा सोलहवीं शताब्दि के लगभग वे दोनो पृथक हुई होगी।[१]

आधुनिक काल के पूर्व राजस्थानी और हिन्दी नामो की ओर किसी का ध्यान नही गया था। स्वय 'राजस्थान' शब्द भी प्रथम वार राजपूताने के लिए कर्नल टाड ने सन् १८३० ई० के लगभग प्रयुक्त किया था। उससे पूर्व इस क्षेत्र को 'राजपूताना' नाम सन् १८०० ई० मे जार्ज टामस ने दिया था। अत. 'राजस्थानी' भाषा को पृथक् भाषा मानने की आवश्यकता उस समय तक नही पडी थी। हिन्दी की अन्य बोलियाँ भी 'ब्रजभाषा' 'अवधी भाषा' आदि नामो से पुकारी जाती थी। अत 'राजस्थानी भाषा' कह देने तथा उसे गुजराती से सम्बद्ध बता देने का यह अर्थ नही कि हिन्दी से उसका कोई सम्बन्ध ही नही। यह सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है कि राजस्थानी भाषा ही पहले 'डिंगल' कहलाती थी, जो स्पष्टत हिन्दी की ही एक शैली है। राजस्थानी भाषा-विषयक नवीनतम शोध-प्रबन्ध "राजस्थानी भाषा और साहित्य" मे डा० हीरालाल माहेश्वरी ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा है कि, "राजस्थानी भाषा, मरुभाषा और डिंगल भाषा की एकता से एक महत्वपूर्ण बात यह भी सिद्ध होती है कि प्रारभ मे डिंगल बोलचाल की भाषा थी। बाद मे बोलचाल और साहित्य की भाषा मे अन्तर होता गया और डिंगल का प्रयोग साहित्य की भाषा के लिए होने लगा। डिंगल वस्तुतः अपभ्रंश शैली का ही विकसित रूप है। उसका राजस्थानी की काव्य-गत शैली विशेष के रूप मे प्रयोग होता है। डिंगल का प्रयोग कभी-कभी समस्त राजस्थानी के लिए और कभी-कभी चारण-शैली के लिए किया जाता है।"[२]

अत. गुर्जरी अपभ्रंश से उत्पन्न मानकर राजस्थानी को हिन्दी से भिन्न स्रोतोत्पन्न नहो समझना चाहिए। गुजराती, राजस्थानी और हिन्दी—तीनो का उदय शौरसेनी प्राकृत की अपभ्रंशो से हुआ है। गुजराती और हिन्दी स्वतत्र भाषाएँ बन गई हैं तथा राजस्थानी मध्य मे होने के कारण हिन्दी की विभाषा के रूप मे ही विकसित हो सकी है।

---

१ देखिए Origin and Development of the Bengali Language, Vol. I, Page 9.

२ राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृष्ठ-९

राजस्थानी की बोलियाँ

राजस्थानी भाषा मे निम्नाकित पाँच बोलियाँ सम्मिलित है--

१. **मेवाती : अहीरवाटी**—दिल्ली के दक्षिण मे रोहतक एव गुडगाँव जिलो के कुछ भागो से इसका क्षेत्र प्रारभ हो जाता है। अलवर का पुराना राज्य-क्षेत्र इस बोली का केन्द्र है। भरतपुर की सीमा मे इस बोली का कुछ भाग पडता है। इस बोली पर खडी बोली एव ब्रजभाषा का बहुत प्रभाव है। इस बोली मे महाप्राण ध्वनियाँ प्राय अल्पप्राण हो जाती हे। सम्बन्ध-कारक के लिए 'का', 'की' एव 'को' का प्रयोग किया जाता है।

२. **जयपुरी-हाड़ोती**—यह बोली जयपुर, किशनगढ, अजमेर, मेरवाड़ा के उत्तरी-पूर्वी भाग, टोक, कोटा तथा बूंदी मे बोली जाती है। इस बोली पर मारवाडी तथा ब्रजभाषा नामक बोलियो का प्रभाव पाया जाता है। इस बोली मे ब्रजभाषा के समान 'व' का 'ब' हो जाता है। सम्बन्ध कारक के लिए इसमे 'का', 'की' तथा 'को' का प्रयोग होता है। वर्तमान् भविष्य तथा भूत-काल के लिए क्रमश 'छै', 'ला' तथा 'छो' के प्रयोग की प्रवृत्ति पाई जाती है। 'इ' और 'उ' को प्राय 'अ' बनाने की ओर झुकाव मिलता है।

३. **मारवाड़ी-मेवाड़ी**—यह बोली मारवाड, बीकानेर, जैसलमेर, उदयपुर सिरोही तथा जोधपुर के क्षेत्रो मे बोली जाती है। इसमे स्थानीय भेद भी स्पष्टत दिखाई देता है। जोधपुर के आसपास के क्षेत्र मे इस बोली का शुद्ध रूप मिलता है। मेवाड़ी मारवाड़ी की एक उपबोली है। राजस्थानी भाषा की अधिकाश प्रवृत्तियाँ इस बोली मे ही मिलती है। 'इ' और 'उ' के स्थान पर 'अ' का प्रयोग इस बोली मे अधिक किया जाता है। 'व' के प्रयोग की भी अधिकता मिलती है। इसमे सम्बन्ध कारक के लिए 'रा', 'री', 'रो' का प्रयोग होता है तथा भूतकाल के लिए 'हा', 'छो' एव वर्तमान् काल के लिए 'है', 'छै' प्रयुक्त होते है। इस बोली मे ओजपूर्ण पर्याप्त साहित्य भी मिलता है।

४ **मालवी**—यह बोली मालवा के क्षेत्र मे बोली जाती है। मारवाड़ी तथा जयपुरी-हाड़ोती की कुछ विशेषताओ को इस बोली ने अपनाया है, अत. राजस्थानी भाषा की एक बोली मान ली गई है। इस बोली की अपनी कई विशेष प्रवृत्तियाँ भी है। इसमे भूतकाल् के लिए थो, था, थी एव गो, गा, गी का प्रयोग होता है, जो हिन्दी की खड़ी बोली के समान है।

सम्बन्ध कारक के लिए इसमे 'का', 'की', 'को' का प्रयोग किया जाता है। उच्चारण मे 'स' के स्थान पर 'ह' हो जाता है।

५ भीली—अरावली और उसके आगे के पहाडो मे यह बोली पाई जाती है। मेरवाडा के पहाडी क्षेत्र से लेकर मेवाड, डूँगरपुर, बाँसवाडा, प्रतापगढ, रतलाम आदि के पहाडो क्षेत्रो तक इस बोली का विस्तार है। इस बोली मे अन्य राजस्थानी बोलियो की उपबोलियाँ सम्मिलित है और उन्ही के समूह को भीली नाम दिया गया है। इस बोली मे 'च' और 'छ' के स्थान पर 'ह' का प्रयोग प्राय किया जाता है। सम्बन्ध कारक के चिह्न 'ना' 'नी' 'नो' चलते है।

राजस्थानी भाषा की विशेषताएँ

१—इस भाषा के शब्दो का आगमन सस्कृत और अपभ्रश के दो स्रोतो से हुआ है। अत कुछ शब्दो मे ध्वनि और रूप का परिवर्तन सामान्य कोटि का है, किन्तु कुछ शब्दो मे वह परिवर्तन बहुत अधिक पाया जाता है। कुछ उदाहरण देखिए —

सस्कृत	अपभ्रश	राजस्थानी
कर्म	कम्म	काम
कार्य	कज्ज	काज
कार्य	—	कारज
मदोन्मत्त	—	मैमन्त

२—इस भाषा मे स्वकीय शब्दो की सख्या भी पर्याप्त है। यथा—

पर्वत के लिए =भाखर
डूँगर
कुत्ता ,, ,, =गडक
अच्छा ,, ,, =रूडो
शेर ,, ,, =नाहर
पथरीली भूमि ,, ,, =मगरो।
अगारे ,, ,, =भोमर

३—इस भाषा मे 'ली' और 'डी' लगाकर शब्द माधुर्य को ध्वनित करते है। यथा—

डी लगाकर =पणिहारडी
=सीगडी

=सहेलडी

ली लगाकर =धीवडली

४--'वत' और 'ओत' प्रत्यय लगाकर प्राय वशोत्पन्न और पुत्र होने की सूचना दी जाती है। यथा--

वत =शक्तावत, चूण्डावत, बीदावत

ओत =काधल से काधलोत

५--ध्वनि और शब्द के विपर्यय की प्रवृत्ति भी इस भाषा मे बहुत पाई जाती है तथा कही-कही 'र' और 'ह' का भी योग कर दिया जाता है। यथा--

छवि का छिब

तीन सौ का सौ तीन

समर का समहर

सजल का सरजल

६--इस भाषा मे उच्चारण-भेद से भी अर्थ-भेद करने की प्रवृत्ति मिलती हे। यथा, अनुदात्त स्वर के स्थान पर उदात्त स्वर करते ही अर्थ भिन्न हो जाता है, जैसा कि निम्नाकित उदाहरणो मे हुआ है--

अनुदात्त	उदात्त
पीर =पीडा	पीर =पीहर
मैल =नीच	मैल =भवन
नार =नारी	नार =नाहर
कान =कर्ण	कान =कृष्ण
नाथ =स्वामी	नाथ =एक आभूषण

७--ध्वनि-परिवर्तन मे स्वरो का आदि-लोप अधिक मिलता है। यथा--

अहकार =हकार

आदित्यवार =दीतवार

उदधि =दध

एकादशी =ग्यारस

८--व्यजनो के परिवर्तन मे ग का क, ख का ह, घ का ग, च का छ, ज का झ, ट का ठ, ड का ड त्स का छ, स्थ का ठ, द का न, ध का द, प का फ तथा म का व आदि हो जाते हे। कुछ उदाहरण देखिए :--

हिन्दी या सस्कृत		राजस्थानी
उपकार	=	उपगार

रेखा	=	रेह
महार्घ	=	महुँगा
तिरश्च	=	तिरछो
उत्साह	=	उछाह
सदेश	=	सँनेसो
कदली	=	कजली
परशु	=	फरसो
सीमा	=	सीव

९–इस भाषा मे हिन्दी की अन्य बोलियो के समान ही दो लिंग होते है। अधिकतर नकारान्त और ईकारान्त शब्दो को स्त्रीलिंग माना जाता है।

१०–इस भाषा मे हिन्दी की अन्य बोलियो की तरह वचन भी केवल दो होते है—एक वचन और बहुवचन। प्राय 'आँ' 'याँ' तथा 'वाँ' लगाकर बहुवचन बन जाते है। यथा—

एक वचन		बहु वचन
आँख	=	आँखाँ
घोडी	=	घोड्याँ
बहू	=	बहुवाँ

११–इस भाषा मे उत्तमपुरुष सर्वनाम 'मैं' के लिए 'हूँ' के विभिन्न रूप चलते है तथा मध्यमपुरुष के लिए 'तै' के रूप।

१२–क्रियापदो का रूप प्राय. अनिश्चित है तथा उस पर अपभ्रश, गुजराती एव कई हिन्दी बोलियो के सम्मिलित प्रभाव पाए जाते है।

राजस्थानी भाषा की ये विशेषताएँ देखने से पता चलता है कि वह हिन्दी भाषा की ही एक विभाषा या उपभाषा है।

बिहारी

पश्चिमी मागधी बोलियो को बिहारी भाषा कहा गया है। डा० उदयनारायण तिवारी के द्वारा प्रस्तुत किए गए भारतीय आर्य भाषाओ के विवरण-पट के अनुसार[1] इस भाषा के उद्गम के लिए निम्नाकित अनुक्रम की ओर ध्यान देना होगा—

---

[1] देखिए, हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृष्ठ ३९८
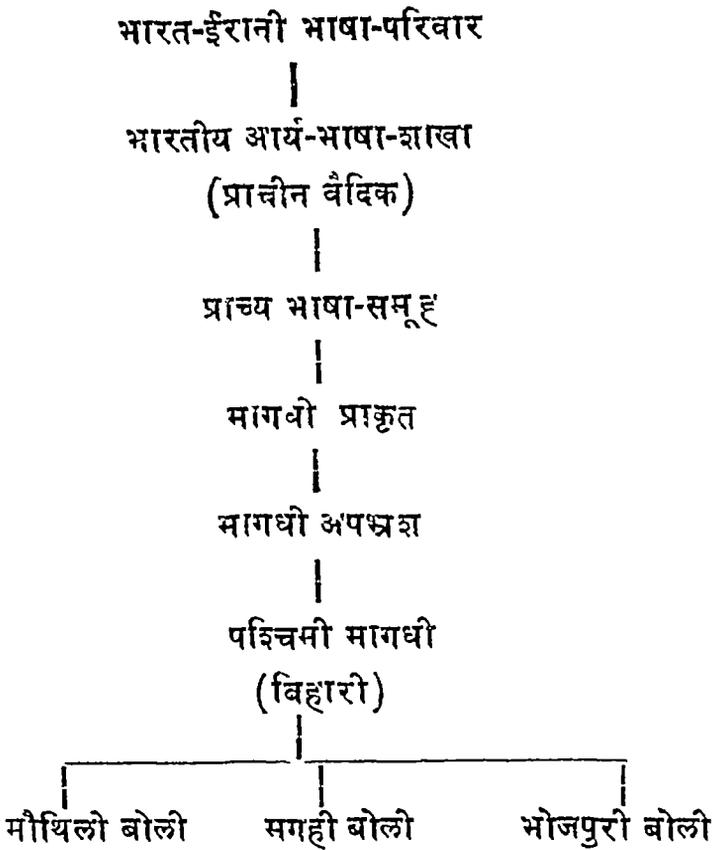
ग्रियर्सन ने भी मैथिली, मगही तथा भोजपुरी बोलियो को ही बिहारी भाषा माना है। यह भाषा पश्चिम मे उत्तर-प्रदेश की गोरखपुर एव वाराणसी कमिश्नरियो से पूर्व मे बिहार की अन्तिम सीमा तक तथा दक्षिण मे छोटा नागपुर एव मानभूमि से लेकर उत्तर मे हिमालय की तराई तक बोली जाती है। इस भाषा के उत्तर मे तिब्बती-बर्मी भाषाएँ है और दक्षिण मे उडिया, पश्चिम मे छत्तीसगढी, बघेली एव अवधी तथा पूर्व मे बँगला के क्षेत्र पडते है।

इस भाषा को बिहारी नाम इसलिए दिया गया है, क्योकि इसकी तीनो बोलियो का बिहार से सम्बन्ध है। हिन्दी की पूर्वी बोलियो से ये बोलियाँ कुछ भिन्न विशेषताएँ रखती है, परन्तु परस्पर तीनो मे अधिक समानता है। इस समानता के आधार पर ही इन तीनो बोलियो को सम्मिलित रूप से एक विभाषा या उपभाषा के रूप मे स्वीकार किया गया है। बिहारी नामकरण का एक कारण यह भी है कि बौद्ध-बिहारो के आधार पर जिस क्षेत्र का नाम बिहार पडा, उस क्षेत्र की यही बौद्ध भाषा थी।

इस भाषा को हिन्दी की उपभाषा मानने के अनेक कारण है। यथा—

१—इस भाषा को बोलने वाले उत्तर-प्रदेश से आकर बिहार मे बसे

थे। वे अपने साथ मध्यदेश की भाषा लाए थे और वही मगही, मैथिली तथा भोजपुरी बोलियो के रूप मे पल्लवित हुई। अत मध्यदेशीय भाषा जो बाद मे हिन्दी बनी, वही बिहारी बोलियो के रूप मे परिवर्तित हो गई।

२—बिहारी भाषा का अधिकाश क्षेत्र उत्तर प्रदेश मे पडता है, जहाँ की भाषा हिन्दी है। अत उस क्षेत्र की देहाती बोलियो को उसी भाषा के अन्तर्गत किसी एक उपभाषा-वर्ग मे मानना चाहिए।

३—बिहारी भाषा की ध्वनि, रूप, अर्थ एव वाक्य सम्बन्धी विशेषताएँ हिन्दी की पूर्वी बोलियो के अधिक निकट है। बिहार और पूर्वी उत्तर-प्रदेश मे परस्पर जो सास्कृतिक सबध है, उनसे भी हिन्दी के साथ इसकी पुरानी निकटता सिद्ध है।

४—बिहार की जनता साहित्यिक भाषा के रूप म हिन्दी को ही स्वीकार करती है। हिन्दी की जो बोली साहित्यिक भाषा रही है, उसी को बिहार की जनता ने अपनी भाषा मानकर सत्कार दिया है। खडी बोली से पहले बिहार मे ब्रजभाषा का पूर्ण आदर होता था। हिन्दी ही आजकल बिहार मे शिक्षा का माध्यम भी है।

५—सामाजिक जीवन मे बिहारी जनता-विशेषत भोजपुरी क्षेत्र की जनता अब भी 'रामचरितमानस' का पाठ बडी रुचि के साथ करती है तथा हिन्दी-महाकवि तुलसीदास द्वारा प्रचलित समन्वित भक्ति-मार्ग पर चलती है। इस क्षेत्र मे विष्णु, शिव, शक्ति और हनुमान की बिना किसी भेद-भाव के पूजा की जाती है।

६—हिन्दी मे साहित्य-रचना करने वाले बिहारी साहित्यकार बिहारी भाषा की बोलियो की शब्दावली का हिन्दी मे प्रयोग करते है और हिन्दी की अन्य बोलियाँ बोलने वाले उन्हे अच्छी तरह समझ लेते है। भाषा-विज्ञान-वेत्ताओ ने भी आधुनिक आर्य-भाषाओ का वर्गीकरण करते समय बिहारी को हिन्दी की पूर्वी बोलियो के साथ ही रखा था। वास्तव मे उनका वही वर्गीकरण शुद्ध था। बाद मे जो वर्गीकरण किया गया, उसमे कतिपय कारणो से बिहारी को बँगला, उडिया और असमिया के साथ जोड दिया गया।

बिहारी और हिन्दी की एकता

हिन्दी की उपभाषा के रूप मे बिहारी को स्वीकार कर लेने के पश्चात् दोनो की आन्तरिक एकता को भी समझ लेना आवश्यक है। परन्तु यह एकता तभी भली प्रकार समझी जा सकती है, जब कि हिन्दी को खड़ी

बोली मात्र न माना जाय। जैसा कि हम पहले कह आए है, हिन्दी राजस्थान से बिहार तक की बोलियों का उसी प्रकार एक व्यापक नाम है, जिस प्रकार भारत या हिन्दुस्तान समस्त देश का नाम है और विभिन्न प्रान्त पृथक्-पृथक् नामो से सबोधित होने पर भी भारत से भिन्न नही है। यहाँ बिहारी और हिन्दी को आन्तरिक एकता को सिद्ध करने वाले कतिपय शब्द उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये जाते है—

हिन्दी (खड़ी बोली)	ब्रजभाषा	बिहारी
फल	फर	फर
गाली	गारी	गारी
इसमे	यामे	एमे
उपमे	वामे	ओमे
बेटी	बिटिया	बेटिया
बुलाते	बुलावत	बोलावत्
बठे	बइठे	बइसे
और	औरु	अउर
घोडा	घोडौ	घोड
भला	भलौ	भल्
मेरा	मेरौ	मोर
रहा	रह्यौ	रहल्

बिहारी भाषा की विशेषताएँ

पूर्वोक्त विवेचन के अनुसार बिहारी को हिन्दी की उपभाषा मान लेने के पश्चात् हमें उसकी उन विशेषताओ की ओर ध्यान देना चाहिए, जिनके आधार पर वह हिन्दी की अन्य बोलियो से अलग अपना अस्तित्व रखती है। वे विशेषताएँ इस प्रकार है .—

१—बिहारी भाषा मे ड, ढ़ ध्वनियाँ क्रमश. 'ऱ्' तथा 'ऱ्ह' हो जाती है। यथा—पडना का परब।

२—उसमे एँ ए ॅ ओ तथा औॅ ध्वनियो का प्रयोग होता है, जो क्रमशः ए, ऐ, ओ एव औ की स्थानापन्न है। यथा—'बेटी' का 'बेॅटिया'

३—एक और ऐ के स्थान पर बिहारी मे अइ तथा ओ और 'औ' के स्थान पर 'अउ' का प्रयोग भी होता है। यथा—

'और' का 'अउर'।

४–बिहारी मे व्यक्तिवाचक सर्वनाम, सम्बन्ध कारक एक वचन मे मध्य मे 'ओ' का प्रयोग होता है। यथा––

'मेरा'–मोर'

५––कर्ताकारक मे सज्ञा शब्दों के साथ 'ने' का प्रयोग नही मिलता।

६––सम्बन्ध कारक मे सम्बन्ध के अनुसर्ग दो प्रकार के मिलते हैं––एक तो वे जो कभी परिवर्तित नही होते और दूसरे वे जो परिवर्तित होते हैं।

७––प्राय क्रिया-पदो मे 'अल्' या 'ला' जोड दिया जाता है। जैसे––

'देखता हूँ' = 'देखला'

८––मगही आदि बोलियो मे क्रिया-विशेष्य पदो के साथ सहायक क्रिया जोड कर वर्तमान् काल बनाया जाता है। यथा––

देखता हूँ = देखिहि

९––भविष्यत् काल बनाने के लिए 'अव्' प्रत्यय क्रिया मे जोडा जाता है। यथा––

करूँगा = करव

१०––वर्तमान् के कृदन्ती रूप 'एत्' तथा 'अत्' के योग से बनते हैं। यथा––

देखता = देखत् या देखैत्

११––प्रेरणार्थक क्रियाओ मे आव् प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। यथा––

कर = करावल

१२––नकारात्मक मत के लिए जिन, जनि तथा मति का प्रयोग होता है।

१३––सम्प्रदान के चिह्न 'लिए' के स्थान पर 'खातिर', 'लागि' या 'लेल' का प्रयोग होता है।

१४––वाक्य-रचना मे कर्मणि के लिए कर्तरि प्रयोग चलते हैं। यथा––

मैने घोडा देखा = हम घोडा देखली

बिहारी भाषा की बोलियों में एकता के सूत्र

पीछे हम मैथिली, मगही तथा भोजपुरी बोलियो को डा० ग्रियर्सन के मतानुसार बिहारी भाषा के अन्तर्गत दिखा चुके हैं। इन तीनो बोलियो को एक भाषा के रूप मे स्वीकार करने के कई कारण हैं। इनमे परस्पर आन्तरिक एकता के अनेक तत्व पाए जाते हैं। उदाहरणार्थ––

१—मैथिली और भोजपुरी मे 'अ' का उच्चारण एक-सा पाया जाता है। डा० उदयनारायण तिवारी इसी मत के मानने वाले हैं।

२—मैथिली, मगही तथा भोजपुरी मे शब्दो के रूपो मे अवश्य अन्तर होता है, किन्तु एक ही बोली का कोई शब्द दूसरी बोली मे रूप बदल कर भी अर्थ नही बदलता। पीछे हिन्दी और बिहारी मे भी ऐसी समता अनेक शब्द प्रस्तुत करके दिखाई गई है।

३—विभक्तियो के चिह्नो मे जो अन्तर मिलता है, वह भी रूपगत अधिक है तथा आन्तरिक एकता को सिद्ध करता है।

४—मैथिली और भोजपुरी बोलियो के क्रिया-रूपो म अन्तर अवश्य है, किन्तु उसमे भी अर्थ-गत समानता छिपी हुई है।

बिहारी की बोलियो मे भोजपुरी प्रमुख बोली है। इसको बिहारी भाषा से स्वतत्र करके हिन्दी की एक बोली के रूप मे भी देखा जा सकता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने भी उसे हिन्दी की बोलियो मे ही स्थान दिया है।[1]

---

[1] देखिए, हिन्दी भाषा का इतिहास, पृष्ठ ६७

८ | हिन्दी की प्रधान बोलियाँ

डा० धीरेन्द्र वर्मा के मतानुसार मध्यदेश की जिन मुख्य बोलियो के समुदाय को 'हिन्दी' भाषा के नाम से पुकारा जाता है, उनके नाम इस प्रकार है—।

१—खडी बोली	पश्चिमी हिन्दी
२—बाँगरू	,,
३—ब्रजभाषा	,,
४—कन्नौजी	,,
५—बुन्देली	,,
६—अवधी	पूर्वी हिन्दी
७—बघेली	,,
८—छत्तीस गढी	,,

इन बोलियो को पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी के दो वर्गों मे रखने का एक कारण यह भी है कि पश्चिमी हिन्दी की बोलियाँ शौरसेनी अपभ्रश से उदय हुई है, जब कि पूर्वी हिन्दी की बोलियो का उद्गम अर्ध मागधी से माना जाता है।[1] इन आठ बोलियो के अन्तर्गत कई छोटी-छोटी बोलियाँ है, किन्तु उनका अध्ययन यहाँ अपेक्षित नही है।

१—खड़ी बोली

दिल्ली (शहर), रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर तथा देहरादून के क्षेत्रो मे यह बोली बोली जाती है। पजाब के अम्बाला जिले को भी इसके क्षेत्र मे माना जाता है। खडी बोली का यह क्षेत्र पजाबी भाषा तथा राजस्थानी एव ब्रजभाषा से जुडा हुआ है।

१ देखिए, डा० धीरेन्द्र वर्मा कृत हिन्दी भाषा का इतिहास, पृष्ठ ६४

अत· इन तीनो के विभिन्न प्रभाव इस बोली पर पडे हैं। बाँगरू नाम को बोली भी इसके क्षेत्र के बीच-बीच मे करनाल और दिल्ली के देहात में बोली जाती है। उससे भी इसकी प्रवृत्तियाँ प्रभावित हुई हैं। सक्षेप मे इसकी निजी विशेषताएँ इस प्रकार हैं .—

१—खडी बोली मे क्रिया के रूप हिन्दी की अन्य बोलियो के समान तद्भव होकर ओकारान्त या औकारान्त नही होते। विशेषण तथा सज्ञाएँ भी ओकारान्त या औकारान्त नही होती। प्राय एक वचन मे क्रिया (भूत काल मे), सज्ञा एव विशेषण आदि आकारान्त रहते हैं। यथा—

'घोडो' या घोड़ो के स्थान पर घोडा
भलो या भलौ के ,, भला
मार्‍यो या मारौ के ,, मारा
दौड्यो या दौडौ के ,, दौडा
गयौ या गऔ के ,, गया

२—साहित्यिक हिन्दी मे जहाँ 'ऐ' और 'औ' ध्वनियो का प्रयोग होता है, वहाँ खडी बोली मे ए और ओ हो जाते हैं। यथा—

खैर =खेर
पैर =पेर
है =हे
और =ओर
कौल =कोल

३—खडीबोली (ग्रामीण) मे मूर्धन्य व्यजनो के प्रयोग की अधिकता पाई जाती है। व्यजनो के द्वित्व की प्रवृत्ति भी मिलती है, पर उच्चारण मे ही यह प्रवृत्ति देखी जाती है, लिखने मे उच्चारण के अनुसार ध्वनियो का अकन नही करते। यथा—

पाता =पात्ता
बेटा =बेट्टा
रोटी =रोट्टी
छोटा =छोट्टा

४—'ओ', 'ओ' के लिय 'ऊँ' कर देने की प्रवृत्ति भी मिलती है—

मर्दों का =मरदूँ का
राम का =राम कूँ

५—सर्वनामो मे भी साहित्यिक हिन्दी से खड़ी बोली कुछ भिन्न है। यथा—

तूने =तेने
यह =या
किससे =किसकै
में =मे
तुमने =तम ने
हमारा =म्हारा

२—बाँगरू

करनाल रोहतक तथा दिल्ली (जिला) मे यह बोली प्रयोग की जाती है। दक्षिणी-पूर्वी पटियाला, नाभा, झीद तथा पूर्वी-हिसार के क्षेत्र भी इसी बोली की सीमा मे सम्मिलित है। इसी बोली को हरियाना प्रदेश मे हरियानी या देसडी कहते हैं तथा रोहतक के आस-पास जाटू नाम से अभिहित करते हैं। यह लगभग २३ लाख लोगो की भाषा है। खडी बोली, राजस्थानी और पजाबी से यह बोली बहुत प्रभावित है।

विशेषताएँ १—इस बोली मे खडी बोली के समान ही सज्ञा के रूप मिलते हैं, परन्तु बहुवचन मे कुछ रूप बदल जाते हैं। यथा—

घोडे =घोडाँ
दिन =दिनाँ
नाम =नामाँ
खेत =खेताँ

२—खडी बोली के समान उच्चारण की एकरूपता का सयम इसमे अधिक नही है। प्राय प्रथम ह्रस्व स्वर को ओकारान्त या एकारान्त कर देने की प्रवृत्ति पाई जाती है। यथा—

बहुत =बोहत
रहा =रेह्या

३—द्वित्व की प्रवृत्ति भी मिलती है और उसके साथ प्रथम अक्षर को दीर्घ से ह्रस्व बना देने की इसकी अपनी मौलिक विशेषता है यथा—

तीतर =तित्तर
थूका =थुक्का

४—कारक चिह्नो के प्रयोग मे अनिश्चितता पाई जाती है तथा प्राय 'को' के स्थान पर 'ने' का प्रयोग किया जाता है। यथा—घर को—घर ने।

५—क्रिया-पदो मे 'आ' स्वर के स्थान पर 'इय' जोडने की प्रवृत्ति भी मिलती है। यथा—

हारा = हार्‌या
दुलारा = दुलार्‌या

६—सर्वनामो मे भी प्रयोगवैचित्र्य मिलता है। यथा—

तू = थूं, तूं तौ
तुम = थम, तम्हे
तूने = तन्ने, तन्नै
मेरा = म्हरा
तेरा = थारा
यह = यु, योह
वह = ओह

२— ब्रजभाषा

खडी बोली के समान ब्रजभाषा के भी दो रूप मिलते है। साहित्यिक रूप का विस्तार बहुत बडे क्षेत्र मे है, किन्तु ग्रामीण ब्रजभाषा उसकी अपेक्षा सीमित क्षेत्र मे बोली जाती है। देहातो मे इसको ब्रजभाखा कहा जाता है। डा० उदयनारायण तिवारी ने इसको 'अन्तर्वेदी' कहा है।[1] मथुरा जिला इस बोली का केन्द्र है। कहा जाता है कि उसके चारो ओर ८४ कोस के घेरे मे ब्रजमण्डल पडता है, उसी घेरे की यह भाषा है। आगरा, एटा, मैनपुरी, फर्रुखाबाद, भरतपुर का दक्षिणी-पूर्वी अधिकाश भाग, धौलपुर, करौली, ग्वालियर का पश्चिमी भाग, गुडगाँव का पूर्वी भाग, बुलंदशहर, बदायूं, अलीगढ, बरेली तथा नैनीताल की तराई—ये क्षेत्र ब्रजभाषा की सीमा मे आते है। इस बोली के बोलने वालो की सख्या ८० लाख से अधिक है।

इस बोली के क्षेत्रो के अनुसार कई रूप हो गए है, पर उन रूपो में अधिक अन्तर नही है। डा० ग्रियर्सन के मतानुसार यह बोली निम्नाकित ८ रूपो मे विभाजित हो गई है—

१ मथुरा–अलीगढ–पश्चिमी आगरा की ब्रजभाषा
२ बुलदशहर की ब्रजभाषा
३ आदर्श ब्रजभाषा
४ कन्नौजी–प्रभावित ब्रजभाषा

१ देखिए, हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास, पृष्ठ ३१८

५ भदौरी या भदावरी ब्रजभाषा
६ जयपुरी–प्रभावित ब्रजभाषा
७ मेवाती–प्रभावित ब्रजभाषा
८ पहाडी–प्रभावित ब्रजभाषा

यही कारण है कि इस बोली मे क्रिया के ग्रामीण प्रयोग ही नही, सज्ञा सर्वनाम, विशेषण, उपसर्ग, प्रत्यय आदि भी एकरूपता रक्षित नही रख सके। क्रिया के रूप की भिन्नता का एक उदाहरण लीजिए––

प्रथम रूप = गयौ
द्वितीय ,, = गयो
तृतीय ,, = गऔ
चतुर्थ ,, = गओ
पञ्चम ,, = गौ
षष्ठ ,, = ग्यौ
सप्तम ,, = गयो
अष्टम ,, = अनिश्चित रहता है।

कतिपय विशेषताएँ १––इस बोली मे क्रियान्त में दीर्घ स्वरो के लिए प्राय ह्रस्व स्वरो का प्रयोग होता है। यथा––

जाओ = जाउ
खाओ = खाउ
गाओ = गाउ

क्रिया के अन्त मे ओकारान्त को उकारान्त करने मे वचन का कोई क्रम नही चलता। उपर्युक्त उदाहरणो मे प्रथम दो क्रियाएँ बहुवचन मे है जब कि तीसरी क्रिया का प्रयोग एकवचन मे ही होता है। यथा––

(१) तुम लोग जाउ। (बहुवचन)
(२) तुम लोग खाउ। (,,)
(३) राम! तू गाउ। (एकवचन)

यदि 'तुम लोग' के साथ गाने की क्रिया लगानी हो तो 'गाऔ' लगाना होगा।

२––सज्ञाओ मे कही साहित्यिक हिन्दी का रूप ही रहता है और कही 'औ' या 'यौ' भी लगाते है। यथा––

(१) घोडा लै आऔ।
(२) घोडा ल्याऔ।
(३) घोड़ौ लाऔ।

३--कर्म कारक के लिए 'को' के स्थान पर 'कौं' चिह्न का प्रयोग करते हैं तथा संज्ञा के रूप को प्राय अपरिवर्तित रखते हैं। यथा—

घोड़ा कौं (घोड़े को)
लडका कौं (लड़के को)

४--क्रियाओ मे 'ता है' के लिए 'त है' या 'तु है' का प्रयोग करते हैं। यथा—

(१) 'रामु मारत है (राम मारता है)
(२) श्यामु जातु है (श्याम जाता है।)

५--भविष्य काल के लिए क्रियाओ मे 'ओगो' 'उँगो' 'एगो' 'औगे' आदि का प्रयोग करते हैं। यथा—

(१) राम को मारूँगा=राम कौं मारौगो।
(२) मैं जाऊँगा=मैं जाउँगो।
(३) तुम आओगे=तुम आउगे।

कही-कही 'ग' के स्थान पर 'इहै' के रूप भी चलते हैं। यथा—

(१) वह जाएगा=बु जइहै।
(२) वह खाएगा=बु खइहै।

६--प्राय कारक चिह्नो में अनुस्वार का प्रयोग मिलता है तथा चिह्न का रूप भी विकृत हो जाता है। यथा--

कर्ता=ने ने, नैं

कर्म =को
सम्प्रदान=को, के लिए } कुँ, कूं, कौं, कें, के

करण =से
अपादान=से } सों, सूं, तें, ते

सम्बन्ध—का =कौ
अधिकरण—मे, पर=मे, मैं, पे, लौं

७--सर्वनामो मे भी पर्याप्त परिवर्तन हो जाता है। यथा—

मैं, मुझे, आदि—हौं, मोको, मोहि, मोय
मेरा=मेरौ या मेर्‌यौ,
तू =तै
तुझे=तोय, तोको
तेरा=तेरौ, तेर्‌यौ

उसे=वाहि, वाको, वाय
तुमको=तोको, तोय
इसको=या को, याहि

४—कन्नौजी

फर्रुखाबाद जिले के कन्नौज नगर के नाम पर कन्नौजी बोली प्रसिद्ध हुई है। प्राचीन काल मे यह नगर कान्यकुब्ज के नाम से विख्यात था। इस जनपद की अपनी एक विशेष सस्कृति थी। अत यहाँ की बोली ने अपना एक क्षेत्र बना लिया था। अब उस क्षेत्र का विस्तार इटावा, फर्रुखाबाद, शाहजहाँपुर तथा कानपुर एव हरदोई जिलो के कुछ भागो तक है। इस बोली के पश्चिम मे ब्रजभाषा, पूर्व मे अवधी तथा दक्षिण मे बुन्देली के क्षेत्र पड़ते है। अत इन तीनो बोलियो से यह बोली बहुत प्रभावित हुई है।

कन्नौजी बोली के विभिन्न रूप मिलते है। इसकी सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार है —

१—ब्रजभाषा का 'औ' प्रत्यय कन्नौजी में 'ओ' हो जाता है।

२—कन्नौजी मे हिन्दी व्यजनान्त पदो के अन्त मे 'उ' प्रत्यय का प्रयोग होता है।

३—हिन्दी के आकारान्त पुल्लिग विशेषण शब्दो को कन्नौजी मे ओकारान्त कर दिया जाता है। कुछ उदाहरण देखिए—

खोटा=खोटो
मोटा=मोटो
छोटा=छोटो

४—कन्नौजी मे दो स्वरो के बीच आने वाले 'ह' व्यजन का लोप हो जाता है। यथा—

कहिहौं=कैह्यौं
रहिहौं=रैह्यौं
जहिहो=जैह्यौ

५—कन्नौजी मे 'वह' तथा 'यह' सर्वनाम प्राय. बह, बौ, एव यह्व, जौ के रूप मे प्रयुक्त होते है।

६—कन्नौजी में कर्त्ता और क्रिया का प्रयोग भी एक विशेष रूप मे होता है। यथा—

घोडा गया=घोडा ने चलो गओ।

६—क्रियाओ के लिग भी कही-कही लुप्त कर्म के आधार पर चलते है। यथा—

खडी० =राम ने बात कही।

कन्नौजी=राम ने कही।

खडी० =मोहन ने बात पूछी।

कन्नौजी=मोहन ने पूछी।

खडी० =तुमने रोटी खाई।

कन्नौजी=तुमने खाई।

७—कन्नौजी मे क्रिया के व्यजन के स्थान पर भूतकाल मे 'ओ' हो जाता है तथा प्रथम वर्ण दीर्घ से ह्रस्व कर दिया जाता है। यथा—

देना का दओ

जाना का गओ

होना का भओ

इस प्रकार कही-कही प्रथम वर्ण मे परिवर्तन भी हो जाता है।

८—कन्नौजी मे कर्ण कारक मे 'को' के स्थान पर 'काँ' का भी प्रयोग होता है। करण एव अपादान कारक मे 'सेती', 'सन्', 'ते', 'करि' आदि चिह्न प्रयुक्त किये जाते है। अधिकरण कारक मे 'माँ', मो तथा लो के प्रयोग की भी प्रथा है।

९—कन्नौजी में सर्वनामो मे भी कुछ परिवर्तन मिलता है। यथा—

'मै' से =मो, मोहि, मेरौ

'तू' से =तो, तोहि, तेरौ

'हम' से=हमे, हमारो

'तुम' से=तुम्है, तुम्हारो

'उन' से=उन्है, उन्हो

'वे' से =वै, बे

—आदि रूप बन जाते है।

वास्तव मे कन्नौजी बोली ब्रजभाषा का ही एक रूप है। इसकी अधिकाश विशेषताएँ ब्रजभाषा की ही स्थानीयता प्रकट करती है। इसीलिए कई विद्वानो ने कन्नौजी को अलग बोली स्वीकार करने मे सकोच प्रकट किया है। डा० उदयनारायण तिवारी उनमे प्रमुख है।[1]

---

१ देखिए, हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृष्ठ २४९

५—बुन्देली

बुन्देल खण्ड क्षेत्र की बोली को बुँदेली या बुन्देलखण्डी कहा जाता है। इसका क्षेत्र उत्तर मे आगरा, मैनपुरी एव इटावा के दक्षिणी भागो तक फैला हुआ हे। दक्षिण मे यह बोली सागर, दमोह, भूपाल का पूर्वी भाग, होशगाबाद, सिवनी आदि स्थानो तक बोली जाती है। झाँसी, जालौन तथा हमीरपुर जिले भी बुदेली के क्षेत्र में पड़ते है। इस बोली की पूर्वी सोमा बघेली से, उत्तरी एव उत्तरी-पश्चिमी सीमा कन्नौज एव ब्रज-भाषा से, दक्षिणी सीमा मराठी से एव पश्चिमी सीमा राजस्थानी बोलियो से मिली हुई है। अत इस बोली पर इन सबका सम्मिलित प्रभाव पाया जाता है। फिर भी इस बोली की अपनी कतिपय विशेषताएँ है, जिनका यहाँ उल्लेख किया जाता है—

१—बुन्देली का शब्दकोष अनेक मौलिक शब्दो से सम्पन्न है। यथा, निम्नाकित शब्द उसकी अपनी सम्पत्ति है—

भानेज =भगिनी-पुत्र
खँगोरिया =गले का एक आभूषण
खदरा =चरागाह
जड्ड =टक्कर
झकूटा =छोटी झाडी
दौची =धक्के
बिलिया =कटोरी
भटारि =गुफा
लेजु =रस्सी
कोपरी =परात
लुगाई =पत्नी

२—ए एव ओ स्वर प्राय. ह्रस्व इ, उ, मे परिवर्तित हो जाते है तथा शब्द आकारान्त बना दिया जाता है। यथा—

बेटी =बिटिया
घोड़ी =घुड़िया
लोटा =लुटिया

३—ऐ और औ को क्रमश. ए तथा ओ कर दिया जाता है। यथा—

ऐसा =एसो

और =ओर

४—ड़ के स्थान पर सर्वत्र 'र' का प्रयोग किया जाता है। यथा—

खड़ा =खरो

दौड़ा =दौरो

पड़ा =परो

लड़का =लरका

घोड़ा =घोरा

५—'आ' के पश्चात् आने वाला 'ह' लुप्त होकर आगे के 'अ' को 'उ' बना देता है। यथा—

चाहत =चाउत

अवगाहत =अवगाउत

६—आकारान्त शब्द प्राय बुन्देली मे ओकारान्त हो जाते हैं। यथा—

घोड़ा =घोरो

छोरा =छोरो

घड़ा =घरो

७—'इन' प्रत्यय के लिए बुदेली मे 'नी' हो जाता है। यथा—

धोबिन =धोबिनी

पनिहारिन =पनिहारिनी

८—बुन्देली कारको मे चिह्न भी कुछ बदल जाते हैं। यथा—

कर्त्ता =नें

कर्म-सम्प्रदान =को, खो

अपादान =सें, सो

अधिकरण =में

९—विशेषणो मे रो, रे, री लगाने की भी प्रवृत्ति मिलती है। यथा—

सब =सबरो

सबरे

सबरी

१०—सर्वनामो मे ब्रज से अधिक अन्तर नही है। कुछ उदाहरण देखिए—

मै से =मेरो, मोरो, मोय

तू से =तेरो, तोरो, तोय

वह से =उसको, बाको

११—क्रिया पदो का रूप बुदेली मे ब्रजभाषा की तरह ही बदल जाता है। सहायक क्रियाओ के लिए प्रयुक्त रूपो के उदाहरण देखिए—

था=हतो
थी=हती
थे=हते
हूँ=हूँ
है=हे
हैं=हे
गा=गो

बुदेली बोली की इन विशेषताओ को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि उसका ब्रजभाषा से बहुत साम्य है। यही कारण है कि मध्यकाल मे बुन्देलखण्ड मे जो साहित्य लिखा गया, उसके लिए कवियो ने ब्रजभाषा को ही माध्यम बनाया था।

६—अवधी

यह अवध क्षेत्र की बोली है। लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, खीरी, फैजाबाद, बहराइच, गोडा, प्रतापगढ, सुल्तानपुर एव बारा बकी जिलो मे यह भाषा बोली जाती है। इलाहाबाद, कानपुर, फहतपुर, जौनपुर तथा मिर्जापुर जिलो के कुछ भाग भी इस बोली के क्षेत्र मे पडते है। बिहार मे रहने वाले मुसलमानो की भी यही बोली है। इस बोली मे पर्याप्त साहित्य लिखा गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' लिख कर इस बोली को भाषा के पद तक पहुँचा दिया था। जायसी का 'पद्मावत', गौरीनाथ शर्मा का 'शिवपुराण' तथा द्वारिका प्रसाद मिश्र के 'कृष्णायन' इस भाषा के प्रसिद्ध तथा उच्चकोटि के महाकाव्य है। इस बोली की कतिपय विशेषताएँ इस प्रकार है —

१—कर्ता कारक एक वचन की व्यजनान्त सज्ञाओ में अवधी मे 'उ' का योग हो जाता है। यथा—

घर=घरु
तन=तनु
वन=बनु
मन=मनु

२—अवधी में सर्वनामो के अन्त का 'आ' ह्रस्व रूप धारण कर लेता है तथा प्रथम वर्ण मे 'ओ' का योग हो जाता है। यथा—

मेरा=मोर
तेरा=तोर

३—अवधी मे सज्ञाओ के ह्रस्व, दीर्घ तथा दीर्घतर—तीन रूप मिलते है। यथा—

ह्रस्व =घोड
दीर्घ =घोडवा
दीर्घतर=घोडौना

४—अवधी के कारको मे निम्नाकित रूप बनते है—

कर्ता—वे, वने या वन् लगता है
(घोडवे), (घोडवने), (घोडवन्)
करण—'अन्' का प्रयोग होता है।
कर्म-सम्प्रदान—काँ, का, आदि चिह्न लगते है।
करण, अपादान—सेनी, सेन, से, लगते है।
सम्बन्ध—कर, के, केर का प्रयोग होता है।
अधिकरण—इसके चिह्न मे, म, पर है।

५—अवधी सर्वनाम इस प्रकार चलते है—

मै=मो, मोर
तू=तौ, तो, तोर, तुमरे, तोहार
हम=हमरे, हम, हमार
वह=वै, ओहि, ओकर, ओनकर, उनकर

६—अवधी मे सहायक क्रियाओ के रूप भी भिन्न प्रकार के मिलते है। यथा—

था, थी, थे } रहेउँ, रहेस्, रहे
है=स-है
हूँ=हौ
है=अही, न्-हे

७—अवधी मे क्रिया का वर्तमान् कृदन्त रूप प्राय लघु अन्त होता है। यथा—

जाता =जात
रहता =रहत

सहता=सहत
मरता=मरत

८—अवधी मे वहुवचन का कारक-चिह्न ग्रहण करने वाला रूप नही मिलता है। यथा—

(१) धोवन को
(२) छोडन को
(३) छोरन को

९—अवधी मे 'इकार' की प्रधानता रहती है। प्राय भविष्य-काल की क्रिया का तिडन्त रूप ही वनता है। यथा—

रहिहइ, जइहइ, मरिहइ।

१०—अवधी के पदो मे 'ऐ' का 'अइ' तथा 'औ' का 'अउ' हो जाता है। यथा— ऐसा =अइसा
कौवा=कउवा

११—अवधी मे लिग-सम्वन्धी एक विशेपता भी पाई जाती है। हिन्दी मे क्रिया का लिंग अन्तिम सज्ञा के अनुसार वदलता है, किन्तु अवधी मे प्रथम सज्ञा के अनुसार वदलता है। यथा—

'मरम वचन सीता जव वोला।'

अवधी एक वहुत वडे क्षेत्र की भाषा हे। इसके तीन रूप पाए जाते है—

१ पूर्वी अवधी
२ पश्चिमी अवधी
३ वैसवाडी अवधी

ो तीनो रूप परस्पर वहुत सूक्ष्म विशेषताओ के आधार पर भिन्न हैं।

७—बघेली

यह वोली वघेलखण्ड क्षेत्र मे वोली जाती है। यह क्षेत्र अवध के दक्षिण में पडता है। रीवाँ इसका केन्द्र है। मध्य प्रदेश के जवलपुर, दमोह, माँडला, वालाघाट आदि जिले इस क्षेत्र मे सम्मिलित हैं। फतहपुर, वाँदा, हमीरपुर, मिर्जापुर, तथा छोटा नागपुर के कुछ क्षेत्र भी इस वोली की सीमा मे पडते हैं। अवधी, भोजपुरी, वुन्देली, तथा मराठी इस वोली की सीमाओ पर वोली जाती हैं। इन सव वोलियो के शव्दो का वघेली मे मिश्रण हो गया है। अवधी का वघेली पर वहुत प्रभाव पड़ा है। इसलिए कुछ विद्वान् तो उसे अवधी का ही एक रूप मानते हैं। डा० श्यामसुन्दर दास ने लिखा है—

"अवधी के अन्तर्गत तीन मुख्य वोलियाँ हैं—अवधी, वघेली और छत्तीसगढी।

अवधी और बघेली मे कोई अन्तर नही है। बघेलखण्ड में बोले जाने के कारण वहाँ अवधी का नाम बघेली पड गया।"[१]

बघेली बोली मे साहित्य का अभाव है। उसके क्षेत्र में अवधी ही साहित्यिक भाषा रही। लोक-साहित्य अवश्य उसकी रूप-रक्षा मे सहायक हुआ है। इस बोली की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है --

१---खड़ी बोली हिन्दी के शब्द बघेली मे पहुँचकर पर्याप्त रूप में बदल जाते है। सज्ञाओ मे प्राय. दो व्यजनो के मध्य 'ओ' का 'वा' तथा दीर्घ स्वरान्त शब्द कर्त्ता कारक मे ह्रस्वान्त हो जाते है। यथा---

घोडा=घ्वाड

२---बघेली के सर्वनाम इस प्रकार होते है --

मैं=मँय्

तू=तँय्

हम=हम्ह

तुम=तुम्ह

वह=वहि

वे=ओ

कौन=कउन्

३---बघेली में सहायक क्रियाओ के रूप में भी कुछ अन्तर मिलता है। यथा---

हूँ=आँ,

हे=आ,

ऊँगा=ऊँ

था=रहेन्

४---क्रियाओ में भविष्यकाल सूचक 'गा' प्राय. हट जाता है तथा 'एउँ' से काम लिया जाता है। यथा---

देखूंगा=देख्येउँ

५---क्रिया मे भूतकाल मे 'आ' के स्थान पर 'एह' आ जाता है। यथा---

देखा=देखेह

पढ़ा = पढ़ेह

विशेषण, लिंग, वचन आदि सम्बन्धी कोई मौलिक विशेषता बघेली में नही मिलती।

---

१ अवधी और उसका साहित्य, डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित पृष्ठ ११ से उद्धृत।

८—छत्तीसगढी

समस्त रायपुर, विलासपुर तथा सम्भलपुर का पश्चिमी भाग इस बोली के मूल केन्द्र हैं। काँकेर, नदगाँव, खैरागढ, चुइखदान, कवर्धा एव चाँदा जिले के उत्तर-पूर्व में तथा वालाघाट के पूर्व मे इसी बोली का क्षेत्र है। रायगढ, सारगगढ, सरगुजा, उदयपुर तथा जशपुर के कुछ क्षेत्र भी इसी मे सम्मिलित हैं। इस वोली मे भी साहित्य नही मिलता। जगली जातियो की वोलियो का भी इस पर पर्याप्त प्रभाव पडा है। इस वोली की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार है :—

१—सज्ञाओ में वहुवचन वनाने के लिए 'मन' अश जोडा जाता है। यथा—

मनुष्यो = मनुखमन

पुत्रो = पुतोमन

२—सज्ञाओ को अकारान्त कर देने की प्रवृत्ति भी मिलती है। यथा—

वैल = वइला

छैल = छइला

३—वहुवचन वनाने के लिए 'अन' जोड देते हैं। यथा—

वैल = वइलन

४—कारको मे निम्नाकित चिह्नो का प्रयोग किया जाता है—

कर्म-सम्प्रदान = वर, ला, का
करण-अपादान = से, ले
अधिकरण = माँ

५—'अन' प्रत्यय भी करण कारक को व्यक्त करते हैं। यथा—

भूख से = भूखन

६—आकारान्त विशेषण के रूप स्त्रीलिंग मे ईकारान्त हो जाते हैं। यथा—

छोटका = छोटकी

७—निश्चय के अर्थ मे सज्ञा के साथ 'हर' जोड दिया जाता है। यथा—

गर, गर = हर

छत्तीसगढी का रूप भी समस्त क्षेत्र मे एक-सा नही है। विभिन्न जातियो की बोलियो के रूप मे इसका विकास हुआ है तथा आर्य और अनार्य दोनो प्रकार की पड़ौसी भाषाओ ने इसे प्रभावित किया है।

निष्कर्ष—हिन्दी की ये सभी बोलियाँ शब्दावली की दृष्टि से मूल हिन्दी-शब्द-कोष पर ही आधारित हैं। इनका अपना देशज शब्द-कोष भी है, पर वह अधिक बडा नही है। अधिकाश शब्द मूल स्रोत से ही आए हैं। स्थानीय सामान्य भिन्नताओ के आधार पर ये बोलियाँ पृथक् मानी जाती हैं।

६ | हिन्दी का ध्वनि-समूह

'ध्वनि' शब्द सामान्य अर्थ मे बहुत व्यापक है। जड और चेतन—सभी प्रकार की वस्तुओ से उत्पन्न होने वाली हर प्रकार की आवाज को 'ध्वनि' कहा जा सकता है। पत्तो के गिरने से लेकर बादलो के गर्जने तक मे जो आवाज होती है, उसमे ध्वनि का कोई न कोई रूप मिलता है। भाषा मे 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग इतने व्यापक अर्थ मे नही किया जाता।

भाषा-ध्वनि

भाषा मे 'ध्वनि' शब्द एक विशेष अर्थ का सूचक है। इसलिए सामान्य अर्थ से उसकी भिन्नता को समझने के लिए हम उसे 'भाषा-ध्वनि' या 'भाषण-ध्वनि' कह सकते है। यह ध्वनि चेतन प्राणियों के मानव-वर्ग की वाणी से निकलने वाली आवाज का नाम है। इसलिए भाषा मे जितने भी ध्वनि-रूप प्रयुक्त होते है, वे सभी भाषा-ध्वनि की सीमा मे आते है। जिस प्रकार 'ध्वनि' जड-चेतन सभी पदार्थों की प्रत्येक प्रकार की आवाज का सामान्य अभिधान है, उसी प्रकार 'भाषा-ध्वनि' मानव की वाणी से नि सृत प्रत्येक प्रकार की आवाज का सामान्य अभिधान है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने भाषा-ध्वनि की परिभाषा इस प्रकार की है—

> A Speech sound is "a sound of definite acoustic quality produced by the organs of speech A given speech sound is incapable of variations"[1]

अत भाषा मे जहाँ 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग किया जाता है, वहाँ उसका तात्पर्य 'भाषा-ध्वनि' से ही होता है। इस 'ध्वनि' (भाषा-ध्वनि) को हम इस प्रकार दो भेदो मे विभाजित कर सकते है—

---

1 Introduction to the Bengali Phonetic Reader—S.K. Chatterji
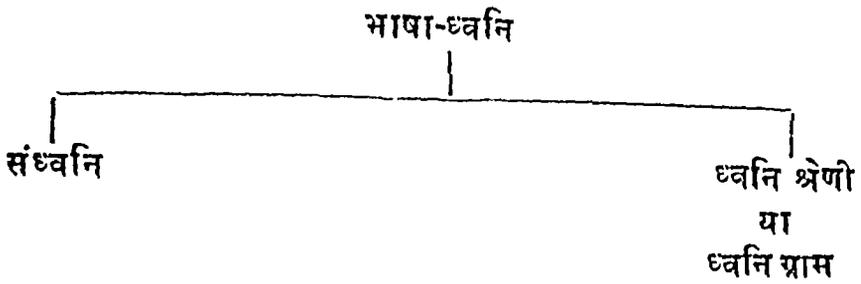
१. सध्वनि--मनुष्य अपने मुख-विवर से जिन ध्वनियो का उच्चारण करता है, वे हर बार एक रूप मे नही निकलती। उदाहरण के लिए 'क्' ध्वनि का जितने बार उच्चारण किया जाएगा, उतने ही उसके रूप हो जाएँगे। जब एक ही व्यक्ति के उच्चारण मे पर्याप्त सूक्ष्म भेद हो जाता है तब विभिन्न लोगो के उच्चारण मे तो सूक्ष्म भेद रहना स्वाभाविक है ही। इस प्रकार एक ही ध्वनि के जितने भी उच्चारण-रूप होते है, उनमे से प्रत्येक को 'सध्वनि' कहते है। उदाहरणार्थ, निम्नाकित वाक्य मे प्रयुक्त प्रत्येक 'क' ध्वनि को लीजिए--

'कलम' के कारीगर नकल को कभी अच्छा नही समझते।'

इस वाक्य मे 'क्' का प्रयोग ६ बार किया गया है। प्रत्येक बार उसके उच्चारण मे जो सूक्ष्म अन्तर है, उसी अन्तर के आधार पर ये ६ 'क्' ६ सध्वनियाँ है।

२--ध्वनि-श्रेणी या ध्वनि-ग्राम--ऊपर हमने सध्वनि का जो रूप समझाया है, उसके साथ यह बात भी स्पष्ट है कि 'क्' के ६ रूप होने पर भी लिखने मे उनके लिए केवल एक ही वर्ण 'क्' का प्रयोग किया जाता है। उच्चारण मे भी सूक्ष्मता के कारण उस भेद को ग्रहण नही किया जा सकता। अत जब हम 'क्' का प्रयोग करते है, तब उसके अन्दर उसके सभी सध्वनि-रूपो का अन्तर्भाव हो जाता है। इस प्रकार जो सध्वनि-समूह बनता है, उसी को ध्वनि-ग्राम या ध्वनि-श्रेणी कहते है। यो 'सध्वनि' यदि एक इकाई है, तो ध्वनि-ग्राम या ध्वनि-श्रेणी उसके विभिन्न रूपो का परिवार है। अँगरेजी मे ध्वनि-ग्राम को Phoname कहते है। डैनियल जोन्स ने Phoname की परिभाषा इस प्रकार की है--

"A Phoname is a family of sounds in a given language, which are related in character and are used in such a way that no one

member ever occurs in a word in the same phonetic context as any other member."

ध्वनि-ग्राम का महत्व--इस प्रकार प्रत्येक भाषा मे ध्वनि-ग्राम की सध्वनियाँ परस्पर परिपूरक वितरण मे होती है। भाषा मे सध्वनि का अधिक महत्व है, क्योकि उच्चारण मे इसी का प्रयोग होता है, किन्तु भाषा के लिखित रूप मे 'ध्वनि-ग्राम' या 'ध्वनि- श्रेणी' ही स्थान पाती है, क्योकि प्रत्येक सध्वनि को न तो ग्रहण कर सकना सभव है और न उसके लिए भिन्न-भिन्न वर्णों या चिह्नो का निर्माण ही किया जा सकता है। अत किसी भी भाषा के ध्वनि-समूह पर विचार करते समय 'ध्वनि-ग्राम, को ही लक्ष्य बनाया जाता है। 'ध्वनि-ग्राम' के अन्तर्गत् मान्य ध्वनियो के केवल उन्ही भिन्न सध्वनि रूपो को विचारार्थ सम्मिलित किया जाता है, जो धीरे-धीरे अपनी भिन्न उच्चारण-सत्ता बना लेते है।

हिन्दी ध्वनि-समूह की परम्परा

यहाँ हिन्दी के ध्वनि-समूह के अन्तर्गत केवल ध्वनि-ग्रामो एव उन सध्वनियो का विवेचन किया जाएगा जो अपना भिन्न अस्तित्व बनाकर ध्वनि-ग्राम के स्तर तक पहुँचती जा रही है।

हिन्दी का ध्वनि-समूह ससार की समस्त भाषाओ मे अपने स्वरूप की वैज्ञानिकता के लिए प्रसिद्ध है। उसमे अधिक से अधिक सध्वनियो को भिन्न-भिन्न ध्वनि-ग्रामो का रूप दिया गया है तथा प्रत्येक के लिये भिन्न-भिन्न वर्णों या चिह्नो का प्रयोग होता है।

हिन्दी भाषा एक बहुत बडे क्षेत्र की भाषा है, अत उसके अन्तर्गत सम्मिलित विभिन्न बोलियो मे ध्वनि-ग्राम की एक-रूपता सुरक्षित नही रह सकी है। सामान्यत पश्चिमी उत्तर प्रदेश के शिक्षित लोगो की भाषा को प्रामाणिक माना जाता है।

हिन्दी की ध्वनियो का उद्भव वैदिक ध्वनियो की परम्परा मे हुआ है। अत सर्वप्रथम यहाँ वैदिक ध्वनियो का इतिहास प्रस्तुत किया जाता है।

वैदिक ध्वनि-समूह

वैदिक भाषा मे ५२ ध्वनियाँ थी। इनमे १३ स्वर थे तथा ३९ व्यंजन थे। देवनागरी लिपि मे उन ध्वनियो को पूर्ण शुद्ध रूप मे अकित नही किया जा सकता, किन्तु हिन्दी की आधुनिक ध्वनियाँ उन्ही का एक रूप है। अत. हम उन्हे निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते है--

१. **मूल स्वर**—ये सख्या मे ९ थे —

अ, आ
इ, ई
उ, ऊ
ऋ, ॠ
ऌ

२. **संयुक्त स्वर**—ये निम्नाकित चार थे .—

ए—इसका उच्चारण अ+इ के सयुक्त रूप के समान था।
ओ—इसका उच्चारण अ+उ के सयुक्त रूप के समान था।
ऐ—इसका उच्चारण आ+इ के सयुक्त रूप के समान था।
औ—इसका उच्चारण आ+उ के समान था।

३. **स्पर्श व्यजन**—ये सख्या मे २७ थे। उच्चारण-स्थान के अनुसार इनके निम्नाकित ५ वर्ग माने गए है—

(१) कण्ठ्य वर्ग—क, ख्, ग्, घ्, ङ
(२) तालव्य वर्ग—च्, छ्, ज् झ, ञ
(३) मूर्द्धन्य वर्ग—ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्
(४) दन्त्य वर्ग—त् थ्, द्, ध्, न्
(५) ओष्ठ्य वर्ग—प्, फ्, ब्, भ्, म

४. **अन्तस्थ ध्वनियाँ**—स्वर और व्यजन के मध्य के उच्चारण वाली निम्नाकित ध्वनियाँ अन्तस्थ कहलाती है। ये वैदिक ध्वनियाँ हिन्दी मे आकर पर्याप्त बदल गई है—

इँ—इसका उच्चारण 'य्' के समान था
|
र्, ल्, ल, ल्ह्, उँ (व्)

५. **अघोष ऊष्म ध्वनियाँ**—ये भी सख्या मे ६ थी। इनके तीन रूप श्, ष् तथा स् है। चतुर्थ रूप विसर्ग ( ) है। पाँचवे तथा छठे रूप अब शेष नही है।

६. **सघोष ऊष्म**—यह एक ध्वनि थी, जो 'ह' के रूप मे शेष है।

७. **शुद्ध अनुस्वार**—यह '०' के रूप मे अकित किया जाता हे, यद्यपि अब उसका उच्चारण पूर्व रूप से भिन्न हो गया है।

इन समस्त वैदिक ध्वनियो का वर्गीकरण डा० धीरेन्द्र वर्मा ने निम्नाकित प्रकार से किया है :—

स्वर

	अग्र		पश्च
संवृत अर्द्ध संवृत विवृत	इ, ई ए		उ ऊ ओ अ, आ
संयुक्त स्वर विशेष स्वर शुद्ध अनुस्वार		अइ, अउ ऋ, ॠ, ऌ ं	

व्यंजन

	द्वयोष्ठ्य	वर्त्स्य	मूर्द्धन्य	तालव्य	कंठ्य	स्वरयंत्र मुखी
स्पर्श अल्पप्राण	प्, ब्	त्, द्	ट् ड्	च्, ज्	क् ग्	
स्पर्श महाप्राण	फ्, भ्	थ् ध्	ठ् ढ्	छ् झ्	ख घ	
अनुनासिक	म्	न्	ण	ञ्	ङ	
पार्श्विक अल्पप्राण		ल्	ल्			
पार्श्विक महाप्राण			ल्ह्			
उत्क्षिप्त		र				
सघर्षी	⌣(उप०)	स	ष्	श्	⌣(जि०)	:ह
अर्द्धस्वर	उँ (व्)			इँ (य्)		

हिन्दी-ध्वनियों का उद्भव

ऊपर हम वैदिक भाषा की जिन ध्वनियो का उल्लेख कर आए है, वे सस्कृत, पाली और प्राकृत के माध्यम से हिन्दी भाषा तक आई। अतः हिन्दी-ध्वनि-समूह का उद्भव इन्हीं स्रोतों से माना जा सकता है।

वैदिक भाषा मे 'ऋ' का उच्चारण शुद्ध रूप मे होता था तथा उसका

दीर्घ रूप ॠ था। परन्तु सस्कृत मे ही ऋ, ॠ तथा ऌ का शुद्ध उच्चारण सदिग्ध हो गया था।

सस्कृत मे ए तथा ओ के उच्चारण तो दीर्घ स्वरो के समान हो गए थे, किन्तु व्याकरण की दृष्टि से उनको दीर्घ स्वर नहीं माना जाता था।

सस्कृत मे 'अइ' तथा 'अउ' के समान उच्चरित ध्वनियाँ भी थी, किन्तु बाद मे वे ऐ और औ के समान उच्चरित होने लगी।

अनुस्वार वैदिक भाषा मे शुद्ध नासिका-ध्वनि थी, किन्तु सस्कृत मे धीरे-धीरे वह अनुस्वार बनने लगी थी।

पाली मे आकर निम्नाकित १० स्वर हो गए थे —

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ।

इस प्रकार पाली तक आते-आते ऋ, ॠ, ऌ, ऐ तथा औ का अन्त हो गया था।

पाली मे ऋ ध्वनि अ, इ, उ, मे से किसी एक या ऐसे ही अन्य स्वर के रूप मे आ गई थी। ॠ तथा ऌ तो सस्कृत मे ही ह्रास को प्राप्त हो चुके थे। पाली मे आकर वे उच्चारण के क्षेत्र से बिलकुल हट गए।

ऊपर पाली के जिन १० स्वरो को गिनाया है, उनमे ए (ह्रस्व) तथा ओ (ह्रस्व) दो नए स्वर पैदा हो गए थे।

पाली मे श् ष् का भी अन्त हो गया था। मागधी प्राकृत को छोड शेष सभी प्राकृतो मे ये दोनो स्वर लुप्त ही रहे।

वैदिक भाषा की वे सभी ध्वनियाँ जो प्राकृतो तक सुरक्षित रह सकी थी, हिन्दी भाषा मे भी आ गई। चूँकि हिन्दी भाषा ने अपनी शब्दावली का चयन सस्कृत के तत्सम कोष से भी किया, इसलिए सस्कृत की वे ध्वनियाँ भी हिन्दी मे आईं जो प्राकृत तक आते-आते समाप्त हो गई थी। किन्तु वे ध्वनियाँ लिखित रूप तक ही सीमित रही, उनका शुद्ध उच्चारण सामान्यत सभव न हो सका। कुछ ध्वनियाँ तो सस्कृत मे भी लिखित रूप तक ही सीमित रह गई थी, अत उनका हिन्दी तक शुद्ध आना सभव ही नही था। 'ॠ' एक इसी प्रकार की ध्वनि है। 'ञ' का भी हिन्दी मे शुद्ध उच्चारण नही होता। हिन्दी का जिस समय उद्भव हुआ, उस समय भारतवर्ष मे मुसलमानो का आगमन प्रारभ हो गया था, अत अरबी-फारसी ध्वनियो का भी हिन्दी मे प्रवेश हुआ।

हिन्दी के यौवन-काल मे अँगरेजी भाषा सात समुद्र पार कर उसके सिर पर आ विराजी। अत, उससे भी कुछ न कुछ हिन्दी ध्वनि-समूह को ग्रहण

करना पड़ा। यों हिन्दी का वर्तमान् ध्वनि-समूह उद्भव की दृष्टि से निम्नांकित चार भागो मे विभाजित किया जा सकता है:—

१. वे ध्वनियाँ, जो प्राचीन परम्परा से हिन्दी को प्राप्त हुई हैं। ऐसी ध्वनियाँ निम्नांकित हैं.—

(क) स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ

व्यंजन—क् ख् ग् घ् ङ

च् छ् ज् झ्

ट् ठ् ड् ढ् ण्

त् थ् द् ध् न्

प् फ ब् भ् म्

य् र् ल् व्

श् स् ह्

२—वे ध्वनियाँ जो हिन्दी के विकास-काल मे उत्पन्न हो गई हैं। ये ध्वनियाँ निम्नांकित हैं—

अ॒ (॰ चिह्न से 'अ' की ह्रस्वता और 'ए' के योग का एक रूप प्रकट किया गया है।)

अओ (औ)

ड़् ढ़्, व्, न्ह, म्ह्

ये ध्वनियाँ प्राय हिन्दी की बोलियो से विकसित हुई हैं।

३—वे ध्वनियाँ जो अरबी-फारसी से उसके शब्दो की तत्समता को सुरक्षित रखने की चेष्टा के फलस्वरूप हिन्दी मे आई.—

क़्, ख़्, ग़्, ज़्, फ़्

४—वे ध्वनियाँ जो अँगरेजी शब्दो की तत्समता की सुरक्षा के प्रयत्न मे हिन्दी ने स्वीकार की। ऐसी एक निम्नांकित ध्वनि विशेष प्रचलित है —

ऑ

हिन्दी मे ऋ, विसर्ग, ञ, ष्, एव श ध्वनियाँ केवल लिखी जाती हैं, इनका उच्चारण शुद्ध रूप मे नही होता। इन ध्वनियो का उच्चारण निम्नांकित रूप मे होता है—

ऋ रि्

विसर्ग (:) ह्

ञा ड० या अनुस्वार के रूप म
ष् श्
ज्ञ ग्यँ या ज्यँ

हिन्दी की ध्वनियो का वर्गीकरण

विभिन्न स्रोतो से हिन्दी मे आई हुई पूर्वोक्त ध्वनियो का निम्नाकित चार प्रकार से वर्गीकरण किया गया है —

१ प्रयत्न के अनुसार
२ स्थान के अनुसार
३. मात्रा के अनुसार

१. प्रयत्न के अनुसार हिन्दी-ध्वनियो का वर्गीकरण—प्रत्येक ध्वनि मुख-विवर से निकलती है। मुख-विवर के अन्तर्गत विभिन्न हिन्दी-ध्वनियो को बाहर निकलने के लिए जो प्रयत्न करना पड़ता है उसके अनुसार उनके निम्नाकित ९ वर्ग बनाए गए हैं —

(१) मूल स्वर— अ, आ, ऑ (ऑ), ओउ ऊ, ई, उ, ए, एं, ए (ह्रस्व), ए (श्र जैसा उच्चारण) तथा इन सबके सयुक्त एव अनुनासिक रूप।

(२) स्पर्श— क्, क़्, ख्, ग्, घ्
ट्, ठ्, ड्, ढ्
त्, थ्, द्, ध्
प्, फ्, ब्, भ्

(३) स्पर्श सघर्षी—च्, छ्, ज्, झ्

(४) अनुनासिक— ङ् (ञ्), ण्, न्, न्ह्, म्, म्ह्

(५) पार्श्विक— ल्, ल्ह्

(६) लुंठित— र्, र्ह

(७) उत्क्षिप्त— ड़् ढ़्

(८) अर्द्धस्वर— य्, व्

(९) सघर्षी— ख़्, ग़्, ज़्, ड़् फ़्, स्, श्, ह्, व्

२. स्थान के अनुसार हिन्दी-ध्वनियो का वर्गीकरण—मुख-विवर के विभिन्न भागो मे प्रयत्न के अनुसार जब कोई ध्वनि उत्पन्न होकर बाहर निकलना चाहती है, तब वह किन स्थानो की सहायता से बाहर जाती है, इस दृष्टि से हिन्दी-ध्वनियो का निम्नाकित वर्गों मे विभाजन किया गया है। इस विभाजन

मे स्वर और व्यजन के स्थान पृथक्-पृथक् हैं। स्वर जिह्वा के जिन स्थानों से उत्पन्न होते हैं, उनके अनुसार उनके तीन वर्ग हैं तथा व्यजन जिह्वा के अतिरिक्त मुख-विवर के अन्य स्थानो मे से जिस स्थान का विशेष सहयोग प्राप्त करते हैं, उसके अनुसार उनके ७ वर्ग हैं। इन वर्गों को पृथक्-पृथक् इस प्रकार अकित किया जा सकता है --

स्वर--(१) अग्र स्वर--इ, इ, ई, ए, ऐ, एँ
(२) मध्य स्वर--अ
(३) पश्च स्वर--आ, अँ, ऑ, उ, ऊ, ओ, औ

व्यजन--(१) ओष्ठ्य--प्, फ्, ब्, भ्
(२) द्वयोष्ठ्य--म्, म्ह, व्
(३) दन्त्य--त्, थ्, द्, ध्
(४) वर्त्स्य--न्, न्ह्, ल्, ल्ह, र्, र्ह्, स्
(५) मूर्द्धन्य--ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, ड, ढ
(६) तालव्य--च्, छ्, ज्, झ्, ञ्, श्, य
(७) कण्ठ्य--क्, ख्, ग्, घ्, ङ
(८) स्वर-यत्र-मुखी--ह्, (विसर्ग)

३. मात्रा के अनुसार हिन्दी-ध्वनियः का वर्गीकरण--विभिन्न ध्वनियो के उच्चारण मे जो समय लगता है, उसे मात्रा कहते हैं। उसके अनुसार भी हिन्दी की ध्वनियो का वर्गीकरण किया जा सकता है। कुछ ध्वनियाँ उच्चारण मे बहुत कम समय लेती हैं, कुछ अधिक। स्वरो का समय या मात्रा मुख के खुलने की दशा पर निर्भर है तथा व्यजनो की मात्रा प्राणत्व और घोषत्व के अनुसार जानी जा सकती है। अत. इस दृष्टि से हम हिन्दी की स्वर तथा व्यजन ध्वनियो को निम्नाकित वर्गों मे विभाजित कर सकते हैं--

स्वर

(१) **सवृत स्वर**--जिनके उच्चारण मे मुख को अधिक खोलने की आवश्यकता नही पडती। ऐसे स्वर निम्नाकित हैं--

इ, ई, उ, ऊ

(२) **अर्द्ध सवृत**--जिनके उच्चारण में मुख को आधा बद रखना पड़ता है। निम्नाकित ध्वनियाँ इसमे सम्मिलित हैं--

ए, ओ

(३) अर्द्ध विवृत स्वर---जिनके उच्चारण के लिए मुख को आधा खोलना पडता है--

अ, ए, औ, अ, ऑ

(४) विवृत स्वर---जिनके उच्चारण के लिए मुख को पूर्ण खोलना पडता है --

आ

व्यंजन

(१) अल्पप्राण अघोष

क्, च्, ट्, त्, प् स्, श्

(२) अल्पप्राण सघोष

ग्, ज्, ड्, द्, व्, ड्, न्, म्, ल्, र्, ड्

(३) महाप्राण अघोष

ख्, छ्, ठ्, थ्, फ्, ह्

(४) महाप्राण सघोष

घ्, झ्, ढ्, ध्, भ्, न्ह्

म्ह, ल्ह्, र्ह, ढ

हिन्दी ध्वनियों का परिचय

अ---जिह्वा का मध्य भाग कुछ ऊपर उठाने तथा ओठो के खुलने पर इस ध्वनि का उच्चारण होता है। यह अर्द्धविवृत मध्य स्वर है। इसकी गणना प्रथम मूल स्वर के रूप मे की जाती है।

आ---इसका उच्चारण जीभ का पिछला भाग कुछ ऊपर उठाकर तथा मुख अधिक खोलकर किया जाता है। यह विवृत पश्च स्वर है।

ऑ---यह ध्वनि अँगरेजी से हिन्दी मे आई है। इसका उच्चारण ओठो को गोलाकार करके किया जाता है। यह एक अर्द्धविवृत पश्च स्वर है।

इ---यह एक सवृत अग्रस्वर है। इसके उच्चारण मे जीभ का अग्र भाग ऊपर उठाकर कठोर तालु के निकट ले जाना पडता है।

ई---इसके उच्चारण मे जिह्वा के अग्र भाग को ऊपर उठाकर कठोर तालु के निकट ले जाते है। यह सवृत अग्रस्वर है।

इ---यह 'इ' का फुसफुसाहट वाला रूप है। दोनो कण्ठ-पिटको को समीप लाकर इसका उच्चारण किया जाता है। इस ध्वनि के निर्गमन मे सगीतात्मकता पाई जाती है।

उ—ओठो को बन्द करते हुए गोलाकार रूप देकर इस ध्वनि का उच्चारण किया जाता है। इसके उच्चारण मे जीभ के पिछले भाग को पर्याप्त ऊपर ले जाना पडता है। यह सवृत पश्च स्वर है।

ऊ—इसके उच्चारण मे जीभ का पिछला भाग उठकर कोमल तालु के बहुत निकट पहुँच जाता है। ओठ कुछ अधिक बन्द गोल हो जाते है। यह सवृत दीर्घ पश्च स्वर है।

ए—इसके उच्चारण मे ओठ कुछ अधिक खुलते है। यह अर्द्ध सवृत अग्र स्वर है।

ए—यह 'ए' का फुसफुसाहट-युक्त रूप है। अवधी मे यह ध्वनि पाई जाती है।

ऍ—यह स्वर ब्रजभाषा मे पाया जाता है। 'अ' और ए के मेल से उत्पन्न ध्वनि के समान इसका उच्चारण है। यह अर्द्धविवृत अग्रस्वर है।

ऐ—यह अर्द्धविवृत दीर्घ अग्रस्वर है। 'ऍ' से इसका स्थान ऊँचा है। साहित्यिक हिन्दी मे इसका उच्चारण मूल स्वर के रूप मे होता है।

ओ—इसका उच्चारण ओठो को गोल करके किया जाता है। यह अर्द्ध सवृत पश्च स्वर है।

औ—यह अर्द्ध विवृत दीर्घ पश्च स्वर है। इसके उच्चारण मे ओठ गोलाकार होकर कुछ खुल जाते है।

अनुनासिक स्वर—ऊपर जिन स्वरो का परिचय दिया गया है, उन सब स्वरो के अनुनासिक रूप भी पाए जाते है। इन स्वरो के उच्चारण मे स्थान तो प्रत्येक स्वर का अपना रहता है, किन्तु कोमल तालु तथा कौवे को कुछ नीचे झुकाना पडता है। ऐसा करने से इस ध्वनि का उच्चारण नासिका और मुख दोनो के सम्मिलित योग से होता है।

व्यजन

क़्—यह विदेशी ध्वनि है। अरबी-फारसी से यह ध्वनि हिन्दी मे आई है। इसका प्रयोग अरबी-फारसी के तत्सम शब्दो मे किया जाता है। इस ध्वनि का उच्चारण कौवे के पास कोमल तालु के पिछले भाग से जिह्वा की मूल का स्पर्श करने से होता है। यह अल्पप्राण अघोष स्पर्श व्यजन है।

क्—यह भी अल्पप्राण अघोष स्पर्श व्यजन है। इसका उच्चारण जीभ के पिछले भाग को कोमल तालु के निकट ले जाकर किया जाता है।

ख्—यह महाप्राण अघोष स्पर्श व्यजन है। इसका उच्चारण 'क्' के स्थान से ही किया जाता है।

ख़्—यह जिह्वा-मूलीय अघोष सघर्षी ध्वनि है।

ग्—यह अल्पप्राण सघोष स्पर्श व्यजन है। इसका भी उच्चारण जीभ के पिछले भाग को तालू से छुआ कर किया जाता ह।

ग़्—यह सघोष जिह्वा-मूलीय सघर्षी ध्वनि है।

घ्—यह महाप्राण सघोष स्पर्श व्यजन हं। इसका भी उच्चारण जीभ के पिछले भाग को तालू से छुआकर किया जाता है।

ङ—यह अल्पप्राण घोष अनुनासिक व्यजन हे। इसका उच्चारण जिह्वा-मूल से कठ्य ध्वनि के रूप मे होता है। यह ध्वनि शब्द के आदि और अन्त मे नही आती, केवल मध्य मे ही इसका उच्चारण किया जाता हे।

च्—यह तालव्य स्पर्श सघर्षी व्यजन है। जीभ के आगे के भाग को दाँतो के पीछे के भाग से देर तक स्पर्श कराने से यह ध्वनि उत्पन्न होती है। यह अल्पप्राण अघोष ध्वनि है।

छ्—यह स्पर्श-सघर्षी महाप्राण अघोष व्यजन है इसका उच्चारण च् के समान ही होता है।

ज—यह अल्पप्राण सघोष स्पर्श सघर्षी व्यजन है। इसका उच्चारण जीभ के अगले भाग को ऊपरी मसूढो के निकट कठोर तालु से कुछ सघर्ष के साथ स्पर्श करने से होता है।

ज़्—यह सघोष वर्त्स्य सघर्षी ध्वनि है।

झ्—यह महाप्राण सघोष स्पर्श सघर्षी व्यजन है। इसका उच्चारण ज् के स्थान से ही होता है।

ञ्—यह सघोष अल्पप्राण तालव्य अनुनासिक ध्वनि मानी जाती हैं। उच्चा-रण मे इस ध्वनि का शुद्ध रूप सुरक्षित नही रहा। इसका उच्चारण य् के समान है।

ट्—यह अल्पप्राण अघोष स्पर्श व्यजन है। इसका उच्चारण जीभ की नोक को उलट कर कठोर तालु के बीच के भाग से उसके नीचे के भाग का स्पर्श कराने से होता है।

ठ्—यह ध्वनि ट् के समान ही उच्चरित होती है। यह महाप्राण अघोष मूर्द्धन्य स्पर्श व्यजन है।

ड्—इसका उच्चारण जीभ की नोक को उलटकर कठोर तालु के बीच के भाग से उसके नीचे के भाग का स्पर्श कराने से होता है। यह अल्पप्राण सघोष स्पर्श व्यजन है।

ड़्—यह अल्पप्राण सघोष उत्क्षिप्त ध्वनि है। जीभ की नोक को उलट कर

नीचे के भाग से झटके के साथ कठोर तालु छूने से यह ध्वनि उत्पन्न होती है।

ढ्—इसका उच्चारण स्थान ड् के समान ही है। यह महाप्राण सघोष स्पर्श व्यजन है।

ढ़्—यह महाप्राण सघोष उत्क्षिप्त ध्वनि है। ड़् के समान ही इसका उच्चारण होता है।

ण्—यह अल्पप्राण सघोष मूर्धन्य अनुनासिक व्यजन है। इसका उच्चारण कठोर तालु पर पोछे की ओर उलटी जीभ की नोक का स्पर्श करान से होता है।

त्—यह अल्पप्राण अघोष स्पर्श व्यजन है। इसका उच्चारण दाँतो की ऊपर की पक्ति को जीभ की नोक से छूने से होता है।

थ्—इसका उच्चारण त् के स्थान से ही होता है। यह महाप्राण अघोष स्पर्श व्यजन है।

द्—त् के स्थान से ही इसका उच्चारण होता है। यह अल्पप्राण, सघोष स्पर्श व्यजन है।

ध्—उच्चारण-स्थान की दृष्टि से यह द् के समान है। इसे महाप्राण सघोष स्पर्श व्यजन माना जाता है।

न्—यह अल्पप्राण सघोष वर्त्स्य अनुनासिक व्यजन है। इसका उच्चारण जीभ की नोक को ऊपर के मसूढो का स्पर्श कराने से होता है।

न्ह्—यह महाप्राण सघोष वर्त्स्य अनुनासिक व्यजन है।

प्—दोनो ओठो के स्पर्श से इसका उच्चारण होता है। जीभ को इसके उच्चारण मे कोई सहयोग नही देना पडता। यह एक अल्पप्राण अघोष स्पर्श व्यजन है।

फ्—यह महाप्राण अघोष स्पर्श व्यजन है। इसका उच्चारण प् के समान ही होता है।

फ़्—यह दत्योष्ठ्य सघर्षी अघोष ध्वनि है।

ब्—यह अल्पप्राण सघोष स्पर्श व्यजन है। इसका उच्चारण प् और फ् के समान ही दोनो ओठो के स्पर्श से होता है।

भ्—यह महाप्राण सघोष स्पर्श व्यजन है। इसका उच्चारण ब् के समान ही होता है।

म्—इसका भी उच्चारण दोनो ओठो के स्पर्श से होता है, किन्तु अनुनासिक होने के कारण इसकी ध्वनि नासिका में गूंज उत्पन्न करती है। यह अल्पप्राण, सघोष अनुनासिक व्यजन है।

म्ह्--यह महाप्राण सघोष अनुनासिक व्यजन है। इसका उच्चारण भी नासिका मे श्वास को गूंज उत्पन्न करके ओठो से किया जाता है।

य्--इसका उच्चारण जीभ के अगले भाग को कठोर तालु की ओर पहुँचाने से होता है। यह स्वर और व्यजन के बीच की ध्वनि है। यह तालव्य सघोष अर्द्ध स्वर है।

र्--यह अल्पप्राण सघोष वर्त्स्य लुठित ध्वनि है। जीभ की नोक से दो-तीन वार ऊपर के मसूढे का स्पर्श करने से इसका उच्चारण होता है।

र्ह्--यह ध्वनि हिन्दी की बोलियो मे मिलती है। शब्द के मध्य मे इसका प्रयोग होता हे। यह 'र्' का महाप्राण रूप है।

ल्--यह अल्पप्राण, सघोष, वर्त्स्य पार्श्विक ध्वनि है। इसका उच्चारण 'र्' के स्थान से ही होता हे। इसके उच्चारण मे जीभ की नोक को ऊपर के मसूढो का अच्छी तरह स्पर्श करना पडता है।

ल्ह्--यह ध्वनि 'ल्' का ही महाप्राण हे। यह ध्वनि भी बोलियो मे मिलती है।

व्--यह दन्त्योष्ठ्य सघर्षी सघोष ध्वनि है। इसका उच्चारण नीचे के ओठ को ऊपर के दाँतो से लगा कर किया जाता है।

व्₀--यह ध्वनि 'ओअ' के समान उच्चरित होती है। हिन्दी की बोलियो मे इसका प्रयोग होता है। यह कठोष्ठ्य सघोष अर्द्धस्वर है।

स्--यह वर्त्स्य अघोष सघर्षी ध्वनि है। जीभ की नोक से ऊपर के मसूडे को रगड कर स्पर्श करने से इस ध्वनि का उच्चारण होता है।

श्--यह अघोष सघर्षी तालव्य ध्वनि है। इसका उच्चारण जीभ की नोक से कठोर तालु को रगड के साथ स्पर्श करने से होता है।

ह्--यह सघोष स्वर-यत्रमुखी सघर्षी ध्वनि है। इसका उच्चारण जीभ, कठोर तालु और ओठो की सहायता के बिना किया जाता है। वायु को भीतर से तेजी के साथ फेकने और मुख-द्वार खुला रख कर स्वर-यत्र के मुख पर रगड पैदा करने से यह ध्वनि उत्पन्न होती है।

ह् या ( ) विसर्ग--यह स्वरयत्रमुखी अघोषसघर्षी ध्वनिहै। इसका उच्चारण 'ह्' के समान ही होता है। यह ध्वनि केवल सस्कृत तत्सम शब्दो मे कही-कही मिलती है, किन्तु इसकी उच्चारण-शुद्धता सुरक्षित नहीहै।

---

१० | हिन्दी-ध्वनियों का संक्षिप्त इतिहास

हिन्दी की ध्वनियाँ दो स्रोतो से आई है। उनका प्रथम स्रोत प्राकृत-अपभ्रंश भषाओ का है और दूसरा स्रोत सीधा सस्कृत भाषा का है। सस्कृत से प्राकृत और अपभ्रंश मे होकर जो ध्वनियाँ आई है, उनके रूप मे प्रर्याप्त विकार हुआ है। सीधी सस्कृत से आने वाली ध्वनियो का इतिहास ज्ञात करना अधिक कठिन नही है, किन्तु प्राकृत-अपभ्रंश से होती हुई आने वाली ध्वनियो के सभी परिवर्तनो का पूर्ण पता लगाना बहुत कठिन हो गया है, क्योकि इन भाषाओ के सभी शब्द-रूप आज उपलब्ध नही है।

सस्कृत से प्राकृत और अपभ्रंश होकर आने वाली ध्वनियो मे से कई ध्वनियाँ घिस गई है और कई ध्वनियाँ बढ गई है। घिसते-घिसते वर्तमान् अवस्था तक जो ध्वनियाँ समाप्त् हो गईं, उनमे निम्नाकित प्रमुख है —

ऋ, लृ, विसर्ग (ः), ञ्, ष्

जो ध्वनियाँ बढ गई है, उनमे निम्नलिखित ध्वनियो की गणना की जाती है—

ऍ, ॺ्, ड, ढ, न्ह्, म्ह

स्वर ध्वनियो के ह्रास या वृद्धि मे स्वराघात का विशेष योग रहा है। यह दो प्रकार का होता है—

१—सगीतात्मक स्वराघात

२—बलात्मक स्वराघात

सगीतात्मक स्वराघात मे शब्द का उच्चारण करते समय ध्वनियो मे सगीतात्मक ढग से आरोह-अवरोह पाया जाता है। **बलात्मक स्वराघात** मे शब्दोच्चारण के समय किसी ध्वनि को दुर्बल करके निकटवर्ती अन्य ध्वनि पर अधिक बल दिया जाता है।

प्राचीन आर्य भाषा मे **सगीतात्मक स्वराघात** की प्रधानता थी। यह प्रवृति सस्कृत भाषा तक बनी रही। अत ध्वनियो का ह्रास नही हुआ। ध्वनियो

के ह्रास मे तो बलात्मक स्वराघात कारण होता ही है, वृद्धि मे भी सहायक होता है।

मध्यकालीन आर्य भाषाओ मे सगीतात्मक स्वराघात का स्थान बलात्मक स्वराघात ने ले लिया था। अत इस काल मे आकर वैदिक ध्वनियाँ घट-बढ गई। जिन ध्वनियो पर बलाघात था, वे ध्वनियाँ तो सुरक्षित रही किन्तु बलाघात-युक्त स्वरो के दूरवर्ती स्वर सकोच, लोप या अन्य प्रकार के परिवर्तन को प्राप्त हुए। उदाहरणार्थ—

उदक =दक

अरहट्ट =रहट्ट

इन उदाहरणों मे शिखर ध्वनियो, क्रमश द और र—पर बलात्मक स्वराघात होने से पूर्ववर्ती ध्वनियाँ लोप को प्राप्त हो गई।

बलात्मक स्वराघात की यह प्रवृत्ति मध्य कालीन भारतीय आर्यभाषाओ मे धीरे-धीरे बढती गई। फलत हिन्दी तक आते-आते स्वर-ध्वनियो मे पर्याप्त परिवर्तन हो गया। यो हिन्दी-स्वर-ध्वनियो के इतिहास का निर्माण करने मे बलाघात का महत्वपूर्ण योग पाया जाता है।

सस्कृत मे शब्द के अन्तिम स्वर मध्यकालीन आर्यभाषाओ के अन्त तक चलते रहे। धीरे-धीरे वे ह्रासोन्मुखी हो गए। मध्यकालीन आर्य भाषाओ के अन्तिम समय मे दीर्घ स्वर 'आ', 'ई', 'ऊ' क्रमश 'अ', 'इ', 'उ' मे बदलने लगे। इसी प्रकार 'ए' तथा 'ओ' भी 'इ' और 'उ' हो गए।

आधुनिक आर्य भाषाओ तक आते-आते जो 'अ', 'इ', 'उ' शेष रह गए थे, वे भी धीरे-धीरे लुप्त हो गए। फल यह हुआ कि आधुनिक हिन्दी के तद्भव शब्द अधिकाशत व्यजनान्त हो गए हैं। यह प्रवृत्ति उच्चारण मे स्पष्टत पाई जाती है। लिखने मे शुद्धता का ध्यान रखा जाता है, अत उसका पता नही चल पाता।

शब्द के पूर्व मे आने वाली स्वर-ध्वनियो मे इसके विपरीत परिवर्तन हुआ है। वहाँ ह्रस्व से दीर्घ की ओर ध्वनि विकसित हुई है। प्राय 'उ' का 'ओ' हो गया है तथा इ का ए। कहीं-कहो 'औ' का ओ तथा ऐ का ए होने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। कुछ उदाहरण देखिए —

उ से ओ कुष्ट=कोढ

कुक्षि =कोख

इ से ए बिल्व =बेल

शिम्बा=सेम

ऐ से ए--कैवर्त =केवट
गैरिक =गेरू
औ से ओ--गौर =गोरा

'ऋ' ध्वनि सस्कृत मे ही शुद्धता खोती जा रही थी। प्राकृत मे आकर वह समाप्त् हो गई ओर उसके स्थान पर 'अ', 'इ', 'उ' मे से कोई स्वर हो गया। हिन्दी तक आते-आते तत्सम शब्दो मे ऋ' का लिखित रूप तो चला आया, किन्तु उच्चारण मे वह 'रि' के रूप मे शेष रही। तद्भव हिन्दी-शब्दो मे 'ऋ' के स्थान पर किसी अन्य स्वर का आगम हो गया। यथा--

अमृत =अम्रित
=अमिअ
घृत =घ्रित
=घिअ

यहाँ हिन्दी की वर्तमान् स्वर-ध्वनियो का सक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया जाता है--

स्वरो का इतिहास

अ

यह ध्वनि अधिकाशत प्राचीन आर्य भाषाओ से आधुनिक आर्यभाषाओ तक सुरक्षित चली आ रही है। इस ध्वनि मे जो परिवर्तन हुआ है, वह अधिक महत्वपूर्ण नहा है। सुरक्षित रूप मे यह ध्वनि निम्नाकित उदाहरणो मे पाई जाती है --

कटाह =कढाई
कर्पूर =कपूर
कथानक =कहानी
कटुक =कडुआ
चक्रवाक =चकवा
गर्दभ =गदहा

इन उदाहरणो मे रेखाकित अक्षरो मे 'अ' ध्वनि सुरक्षित रूप मे चली आई है।

'अ' ध्वनि मे परिवर्तन के उदाहरण भी मिलते है, पर वे बहुत कम है। जहाँ इस ध्वनि मे परिवर्तन हुआ है, वहाँ वह कोई अन्य स्वर बन गई है। यथा--

क्षण = छिन

अम्लिका = इमली

गण = गिन

इन उदाहरणों में रेखांकित अक्षरों में 'अ' का 'इ' हो गया है। 'अ' से 'आ' होने के उदाहरण भी मिलते हैं। यथा—

कर्म = काम

वर्कर = वकरा

इसी प्रकार 'अ' ध्वनि जिन अन्य स्वरों में परिवर्तित हुई है, उनके उदाहरण भी देखिए—

अ से उ

अगुली = उँगली

पलाल = पुआल

अ से ऊ

श्मश्रु = मूछ

अ से ई

वाहाग = वहँगी

अ से ए

सधि = सेंध

आ

यह ध्वनि भी अधिकांशत प्राचीन आर्य भाषा काल से आधुनिक आर्य-भाषा काल तक बहुत कम परिवर्तनों से गुजरी है। शब्द के प्रारंभिक व्यंजनों के साथ इसका रूप प्राय सुरक्षित मिलता है। जो परिवर्तन हुए भी हैं, वे प्राय शब्द के मध्य या अन्तिम अंशों तक ही सीमित हैं और ऐसे स्थानों पर भी 'आ' का विकार अधिक महत्व नहीं रखता। परिवर्तन की प्रवृत्ति प्राय 'अ' की ओर रही है। अर्थात् जहाँ 'आ' में विकार आया है, वहाँ वह अपने ह्रस्व रूप में आ गया है। 'आ' के सुरक्षित रूप में चले आने के तथ्य को पहले स्पष्ट किया जाता है—

वालुका = बालू

नाश = नास्

नारी = नारि

भ्राता = भाई

इन उदाहरणो मे रेखाकित अक्षरो मे 'आ' ध्वनि शुद्ध रूप मे सुरक्षित दिखाई देती है। कुछ अन्य उदाहरण लीजिए—

आम्र = आम

स्थान = थान

आशा = आस

विकार की दशा मे 'आ' से 'अ' होने के कतिपय उदाहरण इस प्रकार है—

मार्जन = मजन

आश्चर्य = अचरज

व्याख्यान = वखान

आभीर = अहीर

'आ' का 'ई' होने का भी एक उदाहरण लीजिए .—

भ्राता = भाई

यह परिवर्तन अन्तिम स्वर मे हुआ है, किन्तु प्रारभिक व्यजन के साथ उसका मूल रूप सुरक्षित है।

इ

यह ध्वनि भी अधिकाशत अविकृत रूप से सुरक्षित रही। कुछ उदाहरण देखिए —

गिरि = गिरि

तिल = तिल्

परिवर्तन की अवस्था मे यह ध्वनि प्राय 'अ', 'ऊ', ई, ए हो गई है। यथा—

इ से अ	विभूति = भबूत
इ से ऊ	इक्षु = ऊख
	विन्दु = बूंद
इ से ई	जिह्वा = जीभ
	चित्रक = चीता
इ से ए	विल्व = बेल

ई

यह ध्वनि भी अधिकांशतः विकार-हीन रही। अविकृत रूप में पाए जाने के इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

जीरक = जीरा
क्षीर = खीर
हीरक = हीरा
कीट = कीडा

जहाँ इसमें विकार हुआ है, वहाँ 'अ' या 'इ' हो गई है। यथा—

ई से अ

गर्भिणी = गाभिन
गभीर = गहरा

ई से इ

दीपक = दिआ
शीर्ष = सिर
नारी = नारि

उ

यह ध्वनि भी अधिकांशतः विकार-हीन अवस्था में रही यथा—

क्षुर = खुर
उज्ज्वल = उजला
शुक = सुआ
पशु = पसु

जहाँ परिवर्तन भी हुआ, वहाँ यह ध्वनि 'अ', 'ओ', 'ऊ', 'ई' तथा 'ए' हो गई। यथा—

उ से अ कर्बुर = कबरा
चञ्चु = चोंच

उ से ओ

पुष्कर = पोखर
कुष्ठ = कोढ़

उ से ई

बालुका=बालू

मुषल=मूसल

उ से ए

विन्दुका=विन्दी

फुप्फुस=फेफडा

ऊ

यह ध्वनि भी अधिकाशत. अविकृत रही, यथा—

मूल=मूल

कर्पूर=कपूर

परिवर्तन की अवस्था मे यह स्वर 'उ' 'ए' या 'ओ' हो गया है। यथा—

ऊ से उ

मधूक=महुआ

धूम=धुआँ

सूचिका=सुई

ऊ से ए

नूपुर=नेउर

ऊ से ओ

मूल्य=मोल

भूर्जपत्र=भोजपत्र

ए

यह ध्वनि भी अविकृत रूप में रही। निम्नाकित उदाहरणो मे अविकृत रूप मे पाई जाती है--

मेघ=मेह

देश=देस

केला=केरा

क्षेत्र=खेत

ज्येष्ठ=जेठ

आखेटक=अहेरी

इसके विकृत रूप वहुत कम मिलते हैं।

ऐ

यह ध्वनि अविकृत रूप मे सुरक्षित नही रह सकी। कही इसका स्थान 'अइ' ने ले लिया और कही 'ए' हो गया। ऐ से ए के रूप मे परिवर्तित होने के कतिपय उदाहरण देखिए

गैरिक=गेरू

तैल=तेल

ओ यह ध्वनि विकार-हीन अवस्था मे सुरक्षित रही। यथा—

घोटक=घोडा

लोहित=लोहू

विक्षोभ=विछोह

इस ध्वनि मे विकार के वहुत कम उदाहरण मिलते है। कही-कही 'ए' के रूप मे इसका परिवर्तन हो गया है। यथा—

गोधूम=गेहूँ

औ यह ध्वनि मध्यकालीन आर्यभाषाओ से 'ओ' के रूप मे परिवर्तित होने लगी थी। हिन्दी मे भी 'औ' शुद्ध रूप मे न आ सका। उसका उच्चरित रूप या तो 'आउ' हो गया, या 'ओ' रह गया। 'औ' से 'ओ' होने के उदाहरण :—

गौर=गोरा

मौक्तिक=मोती

चौर=चोर

यौवन=जोवन

कही-कही 'औ' का 'उ' भी हो गया है। यथा—

सौभाग्य=सुहाग

ऋ

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, 'ऋ' ध्वनि मध्यकालीन आर्यभाषाओ मे अ, इ या उ हो गई थी। आधुनिक आर्य भाषाओ मे ऋ के ये अवशिष्ट रूप 'अ इ, उ' कही दीर्घ हो गए और कही अविकृत रहे। अविकृत के उदाहरण :—

हृदय = हिअअ = हिआ या हिया

शृणोति = सुणइ = सुने

विकृत रूप के उदाहरण —

घृत = घिअ = घी

अमृत = अमि = अमी

कृष्ण = कण्ह = कान्ह

इन उदाहरणो मे क्रमश —

(१) ऋ का इ और फिर ई हुआ है।

(२) ऋ का इ और फिर ई हुआ है।

(३) ऋ का अ और फिर आ हुआ है।

इसी प्रकार के कतिपय अन्य उदाहरण लीजिए —

शृग = सिंग = सोग

गृस्ट = घुट्ट = घूंट

वृद्ध = बुड्ढ = बूढ

वृत्तिक = वुट्टिअ = बूटी

मृष्ट = मिट्ठ = मीठा

अनुस्वार का इतिहास

प्राचीन आर्यभाषाओ मे अनुस्वार स्वतत्र नासिक्य ध्वनि थी। इसका प्रयोग स्वरो मे अनुनासिकता लाने के लिए किया जाता था। किन्तु मध्य-कालीन आर्य भाषाओं मे यह ध्वनि शुद्ध अनुनासिक ध्वनि मे परिवर्तित होकर 'ङ', म् तथा 'न्' बन गई। नासिक्य ध्वनि के रूप में अनुस्वार प्राचीन आर्यभाषाओ मे स्वरो के साथ जुडा हुआ था, किन्तु अनुनासिक ध्वनि बन जाने पर वह स्वर से अलग हो गई।

प्राचीन आर्य-भाषाओ मे स्पर्श व्यजनो के पूर्व यह ध्वनि सम्बन्धित व्यजन का पञ्चम वर्ण हो जाती थी। यथा—

क्, ख्, ग्, घ् के पूर्व आने पर = ङ

ट्, ठ्, ड्, ढ्, के पूर्व आने पर = ण्

त्, थ्, द्, ध्, के पूर्व आने पर = न्

प्, फ्, ब्, भ् के पूर्व आने पर = म्

केवल य्, र्, ल्, व्, श्, ष्, स् तथा ह् के पूर्व आने पर अनुस्वार का शुद्ध रूप मे प्रयोग होता था।

मध्यकालीन आर्यभाषाओं में अनुस्वार की नासिक्यता कहीं किसी स्वर में बदल गई और कहीं अनुनासिक व्यंजन बन गई। यथा—

विंशति=वीस

संध्या=सञ्झा

हिन्दी तक आते-आते कहीं अननुनासिक ध्वनियों में अनुनासिकता आ गई और कहीं अनुनासिक ध्वनियों से अनुनासिकता का लोप हो गया। यथा—

पक्षिन्=पक्खी=पंखी या पंछी

ब्राह्मण=बम्हण =बामन

कक्ष=कक्ख =काँख

वेत्र= वेत्त =बेंत

अक्षि=अक्खि =आँख

श्यामल=सावँलअ=साँवला

आमलक=आवँलअ=आँवला

कुमार= कुवँर =कुँवर

चर्म= चम्म =चाम

आम्र= अम्ब् =आम्

व्यञ्जनों का इतिहास

क्

शब्द के आदि में यह व्यंजन अपरिवर्तित अवस्था में आया है, किन्तु मध्य या अन्त में इसका रूप बदल गया है। मध्य में आने पर इस व्यंजन का कहीं-कहीं लोप भी हो गया है। परिवर्तन की दशा में प्राय क्व्, क्य्, क्क्, ङ्क् तथा स्क् आदि संयुक्त ध्वनियाँ क् बन गई हैं। यथा—

पक्व=पका

माणिक्य=मानिक

चिक्कण =चिकना

अङ्क = आँक

स्कन्ध = कन्ध

आदि में क् का अपरिवर्तित रूप निम्नांकित उदाहरणों में देखा जा सकता है—

संस्कृत—	कर्कर	कर्पूर	कर्म
म० आ० भा०—	कक्कर	कप्पूर	कम्म
हिन्दी—	ककड	कपूर	काम

ख्

ख् भी आदि मे अपरिवर्तित पाया जाता है। यथा—

प्रा० आ० भा०—	खट्वा	खर्जूर
म० आ० भा०—	खट्टा	खज्जूर
हिन्दी—	खाट	खजूर

परिवर्तन मे प्राय क्ष्, स्क्, क्, ष्, ष्क, तथा ख्य से ख् हुआ है। यथा—

	प्रा० आ० भा०	म० आ० भा०	हिन्दी
क्ष्	क्षीर	खीर	खीर
	क्षेत्र	खेत्त	खेत
स्क्	स्कम्भ	खम्भ	खभा
क्	कर्पर	खप्पर	खपडा
ष्	वर्षा	वर्खा	बरखा
ष्क	पुष्कर	पोक्खर	पोखर
ख्य	व्याख्यान	वक्खाण	बखान्

ग्

यह व्यजन भी शब्द के आदि मे अपरिवर्तित रहा। अन्यत्र सामान्यत ग्र्, ग्न्, क्, ल्ग् तथा ज्ञ् से ग् हो गया है। यथा—

	प्रा० आ० भा०	म० आ० भा०	हिन्दी
ग्र्	ग्रन्थ	गण्ठ	गाँठ
ग्न	अग्नि	अग्गि	आग
क्	शकुन	सगुन	सगुन्
ज्ञ्	ज्ञान	ग्यान	ग्यान्
ल्ग्	वल्गा	वग्गा	बाग

घ्

घ् कही अपरिवर्तित रहा है और कही घ्र आदि से बन गया है। यथा—

घर्म =घम्म =घाम

व्याघ्र =वग्घ =बाघ

विग्रह =विग्गह =बीघा

ङ

इस व्यंजन का प्रयोग प्रायः तत्सम शब्दों के साथ होता है। तद्भव शब्दों में यह व्यंजन पूर्ववर्ती स्वर में आनुनासिकता के रूप में मिल गया है। यथा—

अंगुल से उँगली

च्

आदि में च् ध्वनि अपरिवर्तित पाई जाती है, किन्तु अन्यत्र च्च्, ञ्च, त्य्, र्च् से च हो गया है। यथा—

च्च्=उच्च =उच्च =ऊँचा
ञ्च्=पञ्च =पञ्च =पाँच
त्य्=सत्य =सत्य =सच
र्च् =कूर्चिका=कुच्चिआ=कूची

छ्

आदि में छ् ध्वनि अपरिवर्तित मिलती है। पर, आदि, मध्य और अन्त में इस ध्वनि का विकास ष्, क्ष्, श्, च्छ्, श्च् तथा त्स् से हुआ है। यथा—

ष् = षट् = छह = छै
क्ष् = क्षार = छार = छार्
श् = शकट = छक्कड = छकडा
च्छ् = कच्छप = कच्छभ = कछुआ
श्च् = वृश्चिक = विच्छुअ = बीछू
त्स् = वत्स = वच्छउअ = बछड़ा

ज्

शब्द के आदि में भी इसका परिवर्तन कम मिलता है। आदि, मध्य और अन्त में प्राय. ज्य्, द्य्, य्, ज्ज् तथा ञ्ज् से र्य् विकसित हुआ है। यथा—

ज्य् = ज्येष्ठ = जेट्ठ = जेठ
द्य् = द्यूतम् = जूअ = जुआ
य् = यौवन = जोव्वण = जोबन
ज्ज् = उज्ज्वल = उज्जल = उजला
ञ्ज् = पञ्जर = पञ्जर = पिंजरा
र्य् = कार्य = कज्ज = काज

झ्

यह ध्वनि प्रा० आ० भा० में अधिक प्रयोग में नहीं आती थी।

म० अं० भा० मे इसका प्रयोग बढ गया था। हिन्दी मे इस ध्वनि का आगमन म० आ० भा० से ही हुआ। अत इस ध्वनि का प्रयोग जिन शब्दो मे हुआ है, उनके प्राचीन रूप खोजना व्यर्थ है। प्राकृत मे यह ध्वनि 'ध्य्' ध्वनि के स्थान पर आई है। यथा—

उपाध्याय = उवज्झाअ = ओझा, झा
वन्ध्या = वञ्झ = वाँझ
सध्या = सञ्झ = साँझ

ञ्

इस ध्वनि का हिन्दी लिपि मे स्थान है, परन्तु उच्चारण में यह ध्वनि लुप्त हो चुकी है। प्राय इसके स्थान पर 'न्' का उच्चारण होता है। यथा—

चञ्चल = चन्चल
अञ्चल = अन्चल

ट्

'ट्' ध्वनि प्राचीन आर्यभाषाओ के 'त्' से म० आ० भा० मे आई और फिर हिन्दी मे उसका प्रयोग होने लगा। सस्कृत मे भी प्राकृत के प्रभाव से 'ट्' ध्वनि स्थान पा गई थी। अत उसमे भी इसके उदाहरण मिल जाते है। कतिपय उदाहरण देखिए —

'त्' से ट् = तर = टल = टल
त्र् से ट् = त्रुट् = टुट्ट = टूट
र्त् से ट् = कैवर्त = केवट्ट = केवट
र्त्म् से ट् = वर्त्म = वट्ट = बाट् (मार्ग)

ठ्

यह ध्वनि प्राचीन आर्यभाषाओ के 'स्त्', स्थ्, न्थ्, ष्ठ् एव ष्ट् से आई है। यथा—

स्त् से = स्थग = ठग = ठग
न्थ् से = ग्रन्थि = गण्ठि = गाँठ
ष्ठ् से = काष्ठ = कट्ठ = काठ

ड् तथा ड़्

इन ध्वनियो का प्रयोग भी प्रा० आ० भा० मे अधिक नही मिलता। देशी शब्दो मे यह ध्वनि म० आ० भा० से आई है। सस्कृत के ट् तथा न्द् से भी यह ध्वनि उत्पन्न हो गई है। उदाहरण—

ट् से घोटक —— घोडअ —— घोडा

कटाह —— कडाह —— कडाही

न्द् से सदाशिका —— सण्डसिया —— सँडसी

ढ् तथा ढ़्

ये ध्वनियाँ प्रा० आ० भाषाओं के 'धृ' र्ध्, ठ् तथा ऋद्ध् मे आई है। यथा——

धृ से = धृष्ट = ढिट्ठ = ढीठ

र्ध् से = द्विअर्द्ध = दियड्ढ = डेढ

ठ् से = पठति = पढइ = पढ(ना)

ऋद्ध् से = वृद्ध = वुड्ढ = वूढा

ण

यह ध्वनि प्राचीन आर्य भाषाओ मे थी, वहाँ से म० आ० भा० में भी आई, किन्तु हिन्दी तक आते-आते उसके उच्चारण की रक्षा न हो सकी। आ० आ० भा० मे यह ध्वनि लिखी तो जाती है, किन्तु इसका उच्चारण प्राय 'न्' 'ड़ँ' के समान होता है। यथा——

लिखित रूप उच्चरित रूप

पण्डित = पन्डित

परिमाण = परिमाड़ँ

प्रमाण = प्रमाड़ँ या प्रमान

गौण = गौड़ँ

त्

यह ध्वनि पद के आदि मे अविकृत रूप मे भी पाई जाती है, किन्तु अन्य स्थानों पर इसने कई परिवर्तनो से वर्तमान् रूप धारण किया है। त्र्, र्त्, क्त्, त्त्, प्त तथा क्त्र् से इसका आगमन हुआ है। उदाहरण——

त्र् से = त्रिंश = तीसइ = तीस

र्त् से = वर्तिका = वत्तिआ = वाती

क्त् से = मौक्तिक = मोत्तिअ = मोती

प्त् से = सप्त = सत्त = सात

थ्

यह ध्वनि प्रा० आ० भा० से स्त्, स्थ् तथा त्थ् से आई है। यथा——

स्त् से = स्तन = थण = थन

स्थ् से = स्थान = थाण = थान

त्थ् से = कपित्थ = कइत्थ = कैथ

द्

यह ध्वनि प्राचीन आ० भा० से द्र, द्व्, न्द्र से आई है। यथा—

द्र् से हरिद्रा = हलिद्दा = हलदी

द्व् से द्विगुण = दुउणो = दूना

न्द्र से चन्द्र = चद = चाँद

ध्

यह ध्वनि प्रा० आ० भा० के ग्ध्, ध्र्, र्ध् तथा द् या र्द् के साथ महाप्राण व्यंजन का योग होने से आई है। यथा—

ग्ध् से दुग्ध = दुद्ध = दूध

ध्र् से गृध्र = गिद्ध = गीध

द् से गर्दभ = गद्दह = गधा

न्

यह ध्वनि प्रा० भा० आ० भाषाओ से कही-कही अपरिवर्तित रूप मे आई है और कही-कही मध्य कालीन भाषाओ मे परिवर्तन भी हुआ है। ज्ञ्, ग्य्, र्ण, न्न्, से भी इसका आगमन हुआ है। उदाहरण—

मध्य का० आ० भा० मे परिवर्तन के साथ—

नापित = णाविद = नाई

ज्ञ् से ज्ञाति = णाइ = नाता

स्न् से स्नेह = णेह = नेह

र्ण् से कर्ण = कण्ण = कान

न्न् से अन्नाद्य = अणञ्ज = अनाज

प्

यह ध्वनि प्रा० भा० आ० भा० से सुरक्षित रूप मे भी आई है और परिवर्तन के साथ भी। प्र्, त्प्, प्प, तथा र्प् से इसका आगम हुआ है। यथा—

अपरिवर्तित पुत्र = पुत्त = पूत

प्र् से प्रहर = पहर = पहर

त्प् से उत्पादन = उप्पज्जण = उपज

प्प् से पिप्पल = पिप्पल = पीपल

र्प् से सर्प = सप्प = साँप

फ्

यह ध्वनि अपरिवर्तित तथा परिवर्तित दोनो ही रूपो मे हिन्दी मे आई है। स्फ्, स्प्, से इसका आगमन हुआ है। उदाहरण—

अपरिवर्तित फाल्गुन = फग्गुण = फागुन
स्फ् से स्फोटक = फोडअ = फोडा
स्प् से स्पन्दन = फड्डअण = फडकना

व्

यह ध्वनि प्रा० आ० भा० से अपरिवर्तित तथा परिवर्तित दोनों रूपों में आई है। ब्र्, द्व्, व्य्, भ्, र्व् तथा म्र् से इसका वर्तमान रूप बना है। यथा—

ब्र् से ब्राह्मण = बम्हण = बामन
द्व् से द्वादश = बारस = बारह
व्य् से व्याघ्र = वग्घ = बाघ
भ् से भगिनी = बहिणि = बहिन
म्र से ताम्र = तम्ब् = ताँबा

भ्

यह ध्वनि अपरिवर्तित रूप में तत्सम शब्दों में आई है। पद के मध्य तथा अन्त में इसका आगमन भ्य्, भ्र ह्व् से हुआ है। यथा—

भ्य् से अभ्यन्तर = भित्तर = भीतर
भ्र से भ्रमर = भवँर = भौंरा
ह्व से जिह्वा = जिब्भ = जीभ

म्

यह ध्वनि प्रा० आ० भा० से तत्सम शब्दों में शुद्ध रूप में आई है। परिवर्तन की दशा में म्र्, श्म् म्व् तथा र्म् से इसको वर्तमान् दशा प्राप्त हुई है। उदाहरण—

म्र् से म्रक्षण = मखण = मक्खन
श्म् से श्मशान = मसाण = मसान
म्ब् से निम्ब = निम्म = नीम
र्म् से चर्म = चम्म = चाम

म्ह

यह ध्वनि म्भ् तथा स्म से परिवर्तित हुई है। उदाहरण—

म्भ् से कुम्भकार = कुम्हार
स्म् से युस्मे = तुम्हे

न्ह

यह ध्वनि ष्ण् और स्न् से परिवर्तित हुई है। यथा—

ष्ण् से कृष्ण = काण्ह = कान्ह
स्न् से स्नान = न्हान

य्

यह ध्वनि प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं मे 'इ' के रूप में थी। मध्य-कालीन आर्य भाषाओं मे यह य् के समान उच्चरित होने लगी थी। हिन्दी मे तत्सम शब्दों मे यह ध्वनि य् के रूप मे आई तथा तद्भव शब्दो मे 'ज्' बन गई, किन्तु शब्द के मध्य मे इसका शुद्ध रूप विकसित हुआ। उदाहरण—

एकादश=एआरह=ग्यारह
प्रयाण=पयान

र्

यह ध्वनि पद के आदि मे अपरिवर्तित दशा में मिलती है। जहाँ परिवर्तित होकर आई है, वहाँ इसके पूर्व रूप ऋ, द् मिलते हैं। यथा—

अपरिवर्तित राज्ञी=राणी=रानी
रिक्त=रित्तअ=रीता
ऋ से गृह =घर =घर
द् से द्वादश=बारस=बारह

ल्

यह ध्वनि पदादि मे अपरिवर्तित रही तथा पद के मध्य एव अन्त मे ड्, द्र, र्ण, र्य से इसका आगमन हुआ। यथा—

ड् से षोडश=सोडह=सोलह
द्र् से भद्र =भल्ला=भला
र्ण से घूर्ण =घोल्ल =घोल
र्य से पर्यक =पल्लग=पलग

व्

यह ध्वनि तत्सम शब्दो मे सीधी सस्कृत से आई है। तद्भव शब्दों में यह ध्वनि 'ब्' बन गई है। यथा—

वेला=वेला
बेला
वाहन=वाहन
बाहन
वीर्य=वीर्य
बीज
वीरता=वीरता
बीरता

परन्तु यह ध्वनि कही-कही तद्भव शब्दो मे 'म्' से विकसित भी हुई है यथा—

कुमार=कुँवर
चमर=चँवर
भ्रमर=भँवर
नौका=नाव

स्

यह ध्वनि प्रा० आ० भा० से अपरिवर्तित तथा परिवर्तित दोनो रूपो मे आई है। यथा—

अपरिवर्तित—सूत्र =सुत्त =सूत
सौभाग्य=सोहाग्ग=सुहाग

जहाँ परिवर्तित रूप मे आई है, वहाँ ष् और श् के स्थान पर इसका प्रयोग हुआ है। यथा—

शख=सख
शिरीष=सिरस

श्

यह ध्वनि सस्कृत के तत्सम शब्दो मे सुरक्षित रही और उसी के प्रभाव से कही-कही हिन्दी तद्भव शब्दो मे भी इसका 'स्' या 'ष्' के स्थान पर प्रयोग होने लगा है। यथा—

तत्सम पशु =पशु
ष् से कषाय=कशाय
स् से सध्या=शाम

ष्

यह ध्वनि प्रा० आ० भा० मे थी, किन्तु धीरे-धीरे 'श्' के रूप मे परिवर्तित हो गई। हिन्दी मे इसका प्रयोग केवल तत्सम शब्दो के लिखित रूप मे मिलता है, किन्तु उच्चारण से यह ध्वनि धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। इसके स्थान पर श् या स् आ गये है। यथा—

भाषा=भासा
कोष =कोश

ह

यह ध्वनि प्राचीन आर्य-भाषा में सघोष ऊष्म ध्वनि के रूप में थी। बाद में विसर्ग का भी इसी ध्वनि ने स्थान ले लिया। ख्, स् और श्, थ् तथा ध् से भी यह ध्वनि विकसित हुई। यथा--

श् से षोडश=सोडस=सोलह
ख से मुख =मुँह
आखेट=अहेर
थ् से कथन=कहना
ध् से दधि =दही

------

११ | देवनागरी लिपि का इतिहास

पीछे के अध्याय मे हमने हिन्दी-ध्वनियो के इतिहास पर विचार किया है। भारतीय आर्यभाषाओं मे जितनी अधिक ध्वनियाँ सुरक्षित है, उतनी अधिक ध्वनियाँ ससार की किसी अन्य भाषा मे नही है। भारतीय प्राचीन आर्य भाषा 'वैदिक' के ध्वनि-समूह मे ५२ ध्वनियाँ पाई जाती है, जिनमे १३ स्वर तथा ३९ व्यजन थे। पाणिनि ने सस्कृत के ध्वनि-समूह को १४ सूत्रो मे विभक्त किया। सस्कृत मे वैदिक ध्वनियाँ कुछ परिवर्तित हुई। सख्या मे भी कमी आई। वे ५२ के स्थान पर ५१ रह गई। यहाँ दोनो ध्वनियाँ प्रस्तुत की जाती है —

वैदिक ध्वनियाँ

१३ स्वर

९ समानाक्षर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ

४ सध्यक्षर—ए, ऐ, ओ, औ

३९ व्यंजन

५—कण्ठ्य—क, ख्, ग्, घ्, ङ

५—तालव्य—च्, छ्, ज्, झ्, ञ्

७—मूर्धन्य—ट्, ठ्, ड्, ढ्, ळ, या ळ ळ्ह, ण

५—दन्त्य—त्, थ्, द्, ध्, न्

५—ओष्ठ्य—प्, फ्, ब्, भ्, म्

४—अन्तस्थ—य्, र, ल्, व्

३—ऊष्म—श्, ष्, स्

१—प्राण-ध्वनि—ह्

१—अनुनासिक— ं

३—अघोष सोष्म वर्ण—विसर्जनीय, जिह्वामूलीय तथा उपध्मनीय

संस्कृत-ध्वनियाँ

१३ स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ

१० स्वरो के समान धर्म व्यजन—ह्, य्, र्, व्, ल्, ञ्, ङ, ण्, न्, म्

२० स्पर्श व्यजन—क्, ख्, ग्, घ्, च्, छ्, ज्, झ्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, त
थ्, द्, ध्, प्, फ्, ब्, भ्

४ घर्ष व्यजन—श्, ष्, स्, ह्

३ विसर्जनीय, जिह्वामूलीय, उपध्मनीय

१ अनुस्वार

पाली मे आकर ये ध्वनियाँ केवल ४२ रह गई—

१० स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ

२५ व्यजन—क, ख, ग, घ, ङ
च, छ, ज, झ, ञ
ट, ठ, ड, ढ, ण
त, थ, द, ध, न
प, फ, ब, भ, म

४ अन्तस्थ—य, र, ल, व

२ ऊष्म—स, ह

१ अनुस्वार— ं

प्राकृत में ये ध्वनियाँ चलती रही। अपभ्रश मे इनकी संख्या मे फिर वृद्धि हुई और वे ४७ हो गई—

१० स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ

२९ व्यजन—क, ख, ग, घ, ङ
च, छ, ज, झ, ञ
ट, ठ, ड, ढ, ण, ड, ढ
त, थ, द, ध, न, न्ह
प, फ, ब, भ, म, म्ह

६ अन्तस्थ—य, र, ल, व, व, व

२ ऊष्म—स, ह

हिन्दी तक आते-आते इन ध्वनियो मे फिर विकास हुआ और वे ५४ हो गई—

१० स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ

३६ व्यजन—

स्पर्श—क, ख, ग, घ, ङ

च, छ, ज, झ

ट, ठ, ड, ढ, ण, ड़, ढ़

त, थ, द, ध, न, न्ह

प, फ, ब, भ, म, म्ह　　२८

अन्तस्थ—य, र, ल, व, व़　　५

ऊष्म— श, स, ह　　३

२ नव विकसित ध्वनियाँ—अए, अओ

५ विदेशी ध्वनियाँ—क़, ख़, ग़, ज़, फ़

१ अँगरेजी से आगत ध्वनि—ऑ

भारतीय लिपि की यह विशेषता है कि वह हिन्दी तक होने वाले भारतीय ध्वनियो के समस्त परिवर्तनो को अकित कर देने मे समर्थ है। उसका विकास ध्वनियो के अनुसार हुआ है। अत वैदिक ध्वनियों से हिन्दी-ध्वनियो तक के समस्त रूपो के अनुसार भारतीय लिपि माला मे लिपि-चिह्न विकसित होते रहे हैं। ससार की कोई भी लिपि इतनी वैज्ञानिक नही, जितनी वैज्ञानिक वर्तमान् देवनागरी लिपि है। इसका कारण यह है कि वह भारतीय आर्य-भाषा के ध्वनि-समूह के पूर्वोक्त सभी रूपो को स्वतत्र रूप से व्यक्त कर सकती है। अन्य देशो की लिपियो मे प्रत्येक ध्वनि के लिए एक स्वतत्र चिह्न नही है, इसलिए उनमे कई ध्वनियो को एक ही प्रकार के चिह्नो से व्यक्त किया जाता है। हिन्दी-ध्वनियो को व्यक्त करने वाली वर्तमान् लिपि को देवनागरी लिपि कहा जाता है। यह लिपि प्राचीन आर्य लिपि का ही विकसित रूप है। यहाँ उसका सक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया जाता है।

प्राचीन भारतीय लिपियाँ

भारत का प्राचीन साहित्य बहुत समय तक श्रुति-स्मृति के आधार पर जीवित रहा। अत भारत मे प्राचीन काल मे जो लिपि व्यवहृत होती थी, उसका कोई प्रमाण आज शेष नही है। भारतीय लिपि का प्राचीनतम लेख शिलाओ पर ५०० ई० पू० का उपलब्ध हुआ है, जिसकी लिपि को ब्राह्मी कहा जाता है। ३०० ई० पू० की एक दूसरी लिपि का भी प्रमाण मिला है, जिसे खरोष्ठी कहा जाता है। मोहन-जो-दड़ो तथा हडप्पा की खुदाई मे सिन्धु-घाटी की

जिस सभ्यता के चिह्न मिले हैं, उसके साथ भी एक लिपि का पता चला है। यहाँ इन तीनो प्राचीन लिपियो का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जाता है। चूँकि सिन्धु घाटी की लिपि सबसे प्राचीन है, अत पहले उसी का उल्लेख करते हैं।

१—**सिन्धु-घाटी की लिपि**—इस लिपि का परिचय हमे खुदाई मे उपलब्ध मुद्राओ से मिलता है। उन मुद्राओं पर महिष, वृषभ, बारहसिहा आदि पशुओं के चित्र हैं और उनके साथ कोई लिपि भी है। ये चित्र भी प्रतीक रूप मे उस लिपि के ही अग हैं। अन्य अनेक प्रतीक भी प्राप्त हुए हैं। हण्टर तथा ग्लैडन नाम के विद्वानो ने उन चिह्नो की सख्या २८८ मानी है। इन प्रतीको को अभी तक समझा नही जा सका। अत सिन्धु घाटी की लिपि अब भी एक रहस्य बनी हुई है। यह लिपि भावात्मक ध्वन्यात्मक लिपि का सम्मिश्रण कही जा सकती है, क्योकि यह वर्णात्मक प्रतीत नही होती। इस लिपि को विद्वानो ने आर्यभाषाओ के लिए प्रयुक्त लिपियो की जननी मानने मे असहमति प्रकट की है। उनके अनुसार इस लिपि का सम्बन्ध द्रविड लिपियो से है।

२—**खरोष्ठी लिपि**—यह लिपि ब्राह्मी से अधिक प्राचीन नही है, परन्तु आर्य-भाषाओ की लिपियो से इसका भी सम्बन्ध नही है। अत. इस का ब्राह्मी लिपि से पूर्व उल्लेख कर देना उचित होगा।

यह लिपि भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश मे ३०० ई० पू० से ३०० ई० तक प्रचलित रही। इसके प्राचीनतम लेख शहबाजगढी और मनसेरा मे मिले हैं। कई विदेशी राजाओ के सिक्को पर भी इसका प्रमाण मिला है। 'खरोष्ठी' नाम पडने के कई कारण बताए गए हैं। कहा जाता है कि यह लिपि जिस सीमावर्ती प्रदेश मे प्रचलित थी, उसका नाम 'खरोष्ठ' था, अत इसका नाम खरोष्ठी पडा। 'फा-वान-शु-लिन' नामक चीनी विश्वकोष मे यह बताया गया है कि खरोष्ठ नाम के किसी व्यक्ति ने इसका प्रचलन किया था, अत यह खरोष्ठी कहलाई। कुछ लोग यह मानते हैं कि यह लिपि खर (गधा) की खाल पर लिखी जाती थी, अत' ईरानी में 'खरपोश्त' कहलाती थी और उसी से बिगडकर 'खरोष्ठी' शब्द बना। कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि इस लिपि के अधिकाश अक्षर खर (गधा) के ओष्ठ की तरह थे, अत इसका नाम खरोष्ठी पडा।

इस लिपि को अभारतीय लिपि कहा गया है। विद्वानो का मत है कि

यह लिपि आर्मेइक लिपि से उत्पन्न हुई थी। गौरीशकर हीराचद ओझा का मत है कि—

"जैसे मुसलमानो के राज्य-काल मे ईरान की फारसी लिपि का हिन्दुस्तान मे प्रवेश हुआ तथा उसमे कुछ अक्षर और मिलाने से हिन्दी भाषा के पढे-लिखे लोगो के लिए काम चलाऊ उर्दू लिपि बनी, वैसे ही जब ईरानियो

खरोष्ठी - लिपि

अ -	ण -
इ -	त -
उ -	थ -
ए -	द -
ओ -	ध -
अं -	न -
क -	प -
ख -	फ -
ग -	ब -
घ -	भ -
च -	म -
छ -	य -
ज -	र -
झ -	ल -
ञ -	व -
ट -	श -
ठ -	ष -
ड -	स -
ढ -	ह -

का अधिकार पजाब के कुछ अश पर हुआ, तब उनकी राजकीय लिपि 'अरमइक' का वहाँ प्रवेश हुआ, किन्तु उसमे केवल २२ अक्षर, जो आर्य-भाषाओ के केवल १८ उच्चारणो को व्यक्त कर सकते थे, होने तथा स्वरो

मे ह्रस्व-दीर्घ का भेद और स्वरों की मात्राओ के न होने के कारण यहाँ के विद्वानो मे से खरोष्ठी या किसी और ने नए अक्षरो तथा ह्रस्व स्वरों की मात्राओ की योजना कर मामूली पढे हुए लोगो के लिए, जिनको शुद्धाशुद्ध की विशेष आवश्यकता नही रहती थी, कामचलाऊ लिपि बना दी।"[१] डा० राजबली पाण्डेय ने अपनी "इण्डियन पेलोग्राफी" नामक पुस्तक मे इसके विरुद्ध मत दिया है। उन्होने खरोष्ठी को तर्क के आधार पर शुद्ध भारतीय लिपि घोषित किया है। किन्तु अधिकाशत यही माना जाता है कि खरोष्ठी अभारतीय लिपि है।

यह लिपि उर्दू लिपि के समान दाएँ से बाएँ को लिखी जाती थी। ब्राह्मी लिपि के प्रभाव से बाद मे यह भी बाएँ से दाएँ को लिखी जाने लगी थी। यह लिपि केवल काम चलाने के लिए थी। ध्वनियो की वैज्ञानिकता की उसमे रक्षा नही की गई थी। मात्राओं एव सयुक्त व्यजनो का इसमे अभाव था। इसकी वर्णमाला मे केवल ३७ अक्षरो का विकास हो सका था। कई अक्षरो के चिह्न वर्तमान् रोमन लिपि से मिलते हैं, परन्तु वे चिह्न उन्ही ध्वनियो के लिए नही है, जिनके लिए रोमन चिह्न हैं। उदाहरणार्थ 'ढ' के लिए जो चिह्न खरोष्ठी मे बनता था, वह अँगरेजी 'जे' के समान है, ए का 'वाई' की तरह तथा 'घ' का एच की तरह। यह लिपि अवैज्ञानिक होने के कारण ईसा की चौथी शताब्दीमे समाप्त हो गई। इस लिपि की वर्णमाला इस प्रकार है ·

ब्राह्मी

यह प्राचीन भारतीय लिपियो मे सबसे अधिक महत्व पूर्ण लिपि है। गौरीशकर हीराचद ओझा के मतानुसार ५०० ई० पूर्व से ३५० ई० तक यह लिपि व्यवहार मे आती रही। इसके पुराने शिलालेख अजमेर जिला के बर्ली गाँव मे तथा पिपरावा के स्तूप मे मिले हैं।

१. **नाम**—इस लिपि का नाम ब्राह्मी क्यो पडा, इस सम्बन्ध मे विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद है। कुछ विद्वानो का मत है कि इस लिपि को, कोई निर्माता ज्ञात न होने के कारण, लोगो ने ब्रह्मा से उत्पन्न मान लिया और ब्राह्मी नाम चल पडा। कुछ लोग यह मानते है कि यह लिपि ब्राह्मणो के प्रयोग मे आती थी, इसलिए इसका नाम ब्राह्मी पडा। डा० राजबली पाण्डेय यह

१. भा० प्रा० लि०, लेखक—गौ० ही० ओझा, पृष्ठ १७

मानते है कि ब्रह्म या वेद की रक्षा के लिए यह लिपि आविष्कृत हुई, इसलिए इसका नाम ब्राह्मी पड़ा। कुछ विद्वानो ने ब्रह्मा नाम के एक आचार्य को इसका उत्पन्नकर्ता मानकर इसको ब्राह्मी नाम दिया है। जो भी हो, इसके नाम पड़ने का कारण शुद्धत आज ज्ञात नही है, केवल अनुमानो के आधार पर ही विद्वानो ने अपने मत निर्धारित किए है।

२. उत्पत्ति—अभी तक यह भी निर्णय नही हो सका है कि ब्राह्मी की उत्पत्ति किस प्रकार तथा किस लिपि से हुई ? कुछ विद्वानो का यह मत है कि खरोष्ठी की तरह यह लिपि भी अभारतीय है। फ्रेञ्च विद्वान् कुपेरी कहता है कि ब्राह्मी लिपि चीनी लिपि से निकली है। परन्तु दोनो लिपियो के चिह्नो का अन्तर देख कर यह मानने को कोई तैयार नही हो सकता कि दोनो मे कभी कोई सम्बन्ध रहा होगा। डा० अल्फ्रेड, सेनार्ट आदि ने यह माना है कि ब्राह्मी की उत्पत्ति यूनानी लिपि से हुई। सिकन्दर के आक्रमण को इस आदान का आधार माना गया है। परन्तु यह मत भी निराधार है, क्योकि सिकन्दर के आक्रमण से पर्याप्त समय पूर्व ब्राह्मी लिपि भारत मे वर्तमान् थी। हलवे इसको एक मिश्रित लिपि बताकर आर्मेइक, खरोष्ठी, यूनानी आदि लिपियो से उत्पन्न मानता है। परन्तु यह मत भी निराधार है क्योकि इन सबसे भारत का सम्बन्ध होने से पूर्व ब्राह्मी लिपि शिलालेखो पर वर्तमान् थी।

सामी से उत्पत्ति : एक भ्रम—एक दूसरा वर्ग उन विद्वानों का है जो ब्राह्मी की उत्पत्ति सामी लिपि से मानते है। जेनसन, वेवर, वेनफे आदि विद्वान् कहते है कि ब्राह्मी की उत्पत्ति सामी लिपि की फेनीशियन शाखा से हुई। परन्तु भारत और फेनेशिया के प्राचीन सम्बन्धों का ऐतिहासिक प्रमाण न मिलने के कारण केवल कुछ चिह्नो की समता के आधार पर यह मत स्वीकार्य नही हो सकता। चिह्न-साम्य भी नगण्य है। ओझा जी तो यह मानते है कि दोनो मे केवल एक अक्षर का ही साम्य है। अत इस नगण्य साम्य को देखकर दोनो को सम्बद्ध करना उचित नही। टेलर ने ब्राह्मी को दक्षिणी सामी से उत्पन्न वतलाया है। परन्तु उससे भी इसकी कोई समानता नही है। अत यह मत भी भ्रमात्मक ही है। इसी प्रकार अरवी से जिन्होंने ब्राह्मी की उत्पत्ति मानी है, उन्होने भी भ्रम ही पैदा किया है।

कुछ विद्वानो की यह धारणा है कि उत्तरी सामी से ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति हुई। बूलर इस मत के समर्थको मे प्रमुख है। उन्होने यह स्वीकार

किया है कि उत्तरी सामी का केवल अनुकरण किया गया, किन्तु इसकी उत्पत्ति जिस रूप मे हुई वह रूप इसका अपना मौलिक था। ब्राह्मी के कई चिह्न ऐसी ध्वनियो के सूचक हैं, जिन चिह्नो से अनुकरण की समानता रखने वाले उत्तरी सामी के चिह्न भिन्न ध्वनियों के प्रतीक हैं। साथ ही, बूलर ने जिस अनुकरण की बात कही है, वह अनुकरण वास्तविक नही है, बूलर की कल्पना और अनुमान से उत्पन्न है। यथा 'अलेफ' से रेखा को घटा-बढ़ा कर 'अ' की उत्पत्ति बताना अनुमान-जन्य ही है। किसी भी लिपि के किसी भी चिह्न के विषय मे ऐसा अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। डा० डेविड ने बूलर के मत का समर्थन करते हुए ब्राह्मी को उत्तरी सामी से ही उत्पन्न माना। परन्तु विद्वानो ने पर्याप्त उदाहरण देकर इस बात को सिद्ध किया है कि उत्तरी सामी से ब्राह्मी की उत्पत्ति नही हुई। उत्तरी सामी से ब्राह्मी की उत्पत्ति मानने के चार कारण मिलते हैं

१ भारत में ब्राह्मी से पूर्व किसी लिपि के अस्तित्व का अभाव,

२ सामी लिपि से ब्राह्मी की समानता,

३ सिन्धु घाटी की लिपि मे अक्षरो का अभाव, अत ब्राह्मी के अक्षरो का स्रोत उससे भिन्न मानने की विवशता,

४ प्राचीन ब्राह्मी और उत्तरी सामी मे दाएँ से बाएँ लिखने की समानता। परन्तु आधुनिकतम भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन से यह सिद्ध है कि ब्राह्मी शुद्ध भारतीय लिपि है। उसका विकास किसी विदेशी लिपि से नहीं हुआ है।

शैवतन्त्रो का प्रमाण—शैवतन्त्रो मे प्राचीन लिपि की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे जो प्रमाण मिलते है, उसके अनुसार वर्तमान् देवनागरी की पूर्वज लिपि ब्राह्मी शिव और शक्ति का प्रतीक-प्रसार थी। अत वह ब्राह्मी कहलाती थी। यो शिव-शक्ति की दार्शनिक कल्पना मे भी ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति के बीज निहित माने गए है। शैव दर्शन के अनुसार शून्य शिव की लयावस्था का प्रतीक है और सर्ग उसी शून्यवत् शिव का शक्ति विस्तार है। अत. भारतीय लिपि और अक्षर इन्ही शिव-शक्ति के प्रतीक शून्य और सर्ग से विकसित हुए। आगमो के अनुसार भारतीय लिपि का प्रत्येक चिह्न सार्थक है, जब कि अभारतीय समस्त लिपियो के चिह्न निरर्थक है। इस सम्बन्ध मे देवनागरी के प्रसग मे आगे प्रकाश डाला जायगा।

अत साराश रूप मे यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मी की उत्पत्ति किसी विदेशी लिपि से नही हुई है। उसके विकास की कोई भारतीय परम्परा ही रही होगी। परन्तु यह निश्चय नही कि वह परम्परा पूर्णत आर्य-परम्परा

थी, या अनार्य परम्परा। कई पाश्चात्य विद्वान् इस मत के समर्थक हैं कि ब्राह्मी आर्यों की ही लिपि थी। डाउसन, कनिंघम, लसन, थामस तथा डासन के

ब्राह्मी-लिपि

अ	त
आ	थ
इ	द
उ	ध
ए	न
ओ	प
अं	फ
क	ब
ख	भ
ग	म
घ	य
च	र
छ	ल
ज	व
झ	श
ञ	ष
ट	स
ठ	ह
ड	
ढ	
ण	

नाम ऐसे विद्वानो मे उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानो का मत है कि आर्यों की किसी चित्रलिपि से ब्राह्मी लिपि उत्पन्न हुई है। सिन्धु घाटी की अनार्य लिपि का भी इससे सम्बन्ध जोडा गया है तथा कहा गया है कि वह लिपि चित्र-लिपि थी, अत उसी की परम्परा मे ब्राह्मी का विकास हुआ। डा० तारा-पुरवाला तथा डा० बाबूराम सक्सेना ने आर्य-अनार्य का सघर्ष नही उठाया। उन्होंने केवल यह मत व्यक्त किया है कि ब्राह्मी भारतीय लिपि थी। डा० सक्सेना लिखते हैं:

"असल बात तो यह है कि ब्राह्मी लिपि भारतवर्ष के आर्यों की अपनी खोज से उत्पन्न किया हुआ मौलिक आविष्कार है। इसकी प्राचीनता और सर्वांग सुन्दरता से चाहे इसका कर्ता ब्रह्मा देवता माना जाकर इसका नाम ब्राह्मी पडा, चाहे साक्षर ब्राह्मणों की लिपि होने से ब्राह्मी कहलाई हो और

चाहे ब्रह्म (ज्ञान) की रक्षा का सर्वोत्तम साधन होने से इसको यह नाम दिया गया हो।"[१] नागरी लिपि के साथ इस लिपि को यहाँ प्रस्तुत किया जाता है

ब्राह्मी लिपि की दो शाखाएँ

विद्वानो का मत है कि ५०० ई० पू० से ३५० ई० तक ब्राह्मी लिपि विकसित हुई और उसी से आगे चलकर अन्य भारतीय लिपियो का विकास हुआ। उन्होने बतलाया है कि ३५० ई० के पश्चात् ब्राह्मी लिपि दो शाखाओ मे विभक्त हो गई—

१—उत्तरी शाखा
२—दक्षिणी शाखा

उत्तरी शाखा की लिपि का उत्तरी भारत मे प्रचार रहा तथा दक्षिणी शाखा की ब्राह्मी दक्षिणी भारत मे प्रचलित हुई। इन दोनो शाखाओ से निम्नाकित लिपियो का जन्म हुआ

१. **उत्तरी शाखा की लिपियाँ गुप्त लिपि**—ब्राह्मी लिपि ने ३५० ई० के पश्चात् उत्तरी भारत मे गुप्त लिपि का रूप धारण किया। यह लिपि गुप्त वशीय राजाओ के नाम पर गुप्त लिपि कहलाई, इस लिपि मे गुप्त वशीय राजाओ के लेख प्राप्त होते है।

२. **कुटिल लिपि**—ईसा की छठी शताब्दि से नवी शताब्दि तक गुप्त लिपि का जो विकास हुआ उसका नाम कुटिल लिपि पडा। इसके वर्ण तथा मात्राँ टेढी होती थी, अत इसको 'कुटिल लिपि' कहा गया। इसी लिपि से नागरी तथा शारदा लिपियो का विकास हुआ।

३ **शारदा लिपि**—ईसा की दसवी शताब्दी मे कुटिल लिपि का जो रूप पश्चिमोत्तर भारत मे प्रचलित हुआ, उसी को शारदा लिपि कहते है। उत्तरी-पश्चिमी भारत की कश्मीरी, टाकरी, लँडा, डोगरी, गुरमुखी आदि लिपियाँ इसी लिपि से विकसित हुई।

४. **प्राचीन नागरी लिपि**—उत्तर भारत मे ईसा की नवी शताब्दि से ही इस लिपि का कुटिल लिपि से विकास प्रारभ हो गया था। दक्षिणी भारत

---

१ सामान्य भाषा-विज्ञान—डा० बाबूराम सक्सेना पृष्ठ १८१.

में भी यह लिपि इसी समय कहीं-कहीं प्रचलित थी। वहाँ इसको नंदि नागरी कहते थे। अतः स्पष्टतः प्राचीन नागरी की भी दो शाखाएँ हो गई थीं--उत्तरी शाखा और दक्षिणी शाखा। उत्तरी शाखा से देवनागरी, गुजराती, मराठी, महाजनी, कैथी और बँगला लिपियों का विकास हुआ।

२. **दक्षिणी शाखा**--ब्राह्मी लिपि की दक्षिणी शाखा से तेलगु लिपि, ग्रन्थ लिपि, तमिल लिपि, कलिंग लिपि, आदि लिपियाँ उत्पन्न हुईं। इन लिपियों का देवनागरी से सम्बन्ध नहीं है, अतः यहाँ इनका उल्लेख नहीं किया जाता।

देवनागरी लिपि

१. **नाम**--जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ब्राह्मी लिपि ही दसवीं शताब्दि तक आते-आते विभिन्न लिपियों में परिवर्तित हो गई। प्राचीन नागरी का उन लिपियों में प्रमुख स्थान है। देवनागरी लिपि इसी प्राचीन नागरी से उत्पन्न हुई। देवनागरी नाम पड़ने का कारण यह है कि यह लिपि देवभाषा संस्कृत के लिए व्यवहृत होती थी। नागरी नाम पड़ने का कारण यह माना जाता है कि यह नागर ब्राह्मणों की लिपि थी। एक दूसरा मत यह भी है कि यह लिपि नगरों में प्रचलित थी, इस-लिए इसका नाम नागरी पड़ा। कुछ लोग नाग नाम की किसी लिपि से नागरी की उत्पत्ति मानते हैं। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि तान्त्रिक चिह्न देवनगर से यह लिपि उत्पन्न हुई, इसलिए इसका नाम देवनागरी पड़ा। परन्तु ये सभी व्याख्याएँ कल्पना-प्रसूत हैं। प्राचीन नागरी से उत्पन्न यह लिपि देववाणी संस्कृत की लिपि होने के कारण ही देवनागरी कहलाई, यह अधिक सत्य है।

२. **विकास**--यह लिपि ब्राह्मी के प्राचीन नागरी रूप के विकास की ही आगे की कड़ी थी। इसका वर्तमान् रूप १०वीं शताब्दि में बनने लगा था। धीरे-धीरे इसकी वर्णमाला में विकास हुआ। प्रारंभ में इसके वर्ण शिरोरेखा से रहित होते थे। निम्नांकित वर्णों के शिर दो भागों में विभाजित थे--

अ, घ, प, म, ष, स।

ग्यारहवीं शताब्दि से बारहवीं शताब्दि तक यह लिपि अपने वर्तमान् रूप को प्राप्त हो गई थी। किन्तु अब भी कुछ वर्ण पुराने रूप में ही चल रहे थे। यथा--

ड, घ।

ओझा जी ने देवनागरी के अक्षरो का ब्राह्मी के अक्षरों से तुलना दिखाते हुए जो चित्र प्रस्तुत किया है, उससे स्पष्ट पता चलता है कि ब्राह्मी ही गुप्त लिपि तथा कुटिल लिपि के रूप मे विकसित होती हुई वर्तमान् देवनागरी लिपि के रूप को प्राप्त हुई। यहाँ देवनागरी की वर्णमाला के विकास-क्रम को स्पष्ट करने वाला चित्र प्रस्तुत किया जाता है। प्रथम पक्ति के अक्षर आधुनिक देवनागरी लिपि के है तथा अन्य अक्षर उन्ही के प्राचीन रूप है।

देवनागरी के वर्णो का उत्पत्ति-क्रम

अ	ठ	य
अ	ड	र
इ	ड	ल
उ	ढ	व
ए	ण	श
क	ण	ष
ख	त	स
ग	थ	ह
घ	द	ळ
ङ	ध	क्ष
च	न	ज्ञ
छ	प	का
ज	फ	कि
झ	ब	की
झ	भ	कु
ञ	भ	कू
ट	म	के

देवनागरी के अक्षरों के समान ही उसके अक भी धीरे-धीरे विकसित हुए हैं। उनका क्रम इस प्रकार है –

देवनागरी के अंकों का विकास-क्रम

३. **देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता**—पूर्ण वैज्ञानिक लिपि वह है, जो भाषा की समस्त ध्वनियों को ज्यों का त्यों शुद्ध रूप मे अकित कर सके। ससार की अधिकाश लिपियाँ इस दृष्टि से अत्यधिक दोष-पूर्ण है। देवनागरी

लिपि की यह विशेषता है कि उसमे अधिकाशत प्रत्येक ध्वनि को अंकित करने वाले अक्षर हैं। हम हिन्दी भाषा मे जो कुछ बोलते हैं, वही लिखते

हैं। अँगरेजी, उर्दू आदि भाषाओ मे ऐसा नही होता। इन भाषाओं मे कुछ बोलते हैं और कुछ लिखते हैं।

देवनागरी लिपि के अक्षरों का वर्गीकरण भी वैज्ञानिक रीति से किया गया है। ध्वनियो के स्वर तथा व्यजन—दो भेदो के लिए अलग-अलग क्रम से अक्षर निश्चित हैं। अन्य लिपियो मे स्वर और व्यजन को अलग-अलग नही रखा गया। उनमे प्राय स्वर और व्यजन मिले हुए क्रम से पाए जाते हैं।

देवनागरी का स्वरो और व्यजनो का फिर जो विभाजन—ह्रस्व स्वर एव दीर्घ स्वर तथा कठ्य, तालव्य, दन्त्य आदि व्यजन के रूप मे है, वह भी वैज्ञानिक है। यह वर्गीकरण उच्चारण स्थान के अनुसार है। अत इसकी वैज्ञानिकता मे कोई सन्देह नही कर सकता। ससार की कोई भी लिपि इस प्रकार के वैज्ञानिक आधार पर विभाजित नही है।

देवनागरी की वैज्ञानिकता का एक प्रमाण यह भी है, कि वह मात्राओ को भी पूर्ण शुद्ध रूप मे व्यक्त कर सकने मे समर्थ है। उसमे इ, ई, ए, ऐ आदि

के लिए अलग-अलग चिह्न है, जब कि अँगरेजी मे आई, ई, वाई आदि के प्रयोग का अनिश्चय रहता है। समान, उच्चारण की ध्वनियो के लिए कही 'आई', कही 'ई' और कही 'वाई' का प्रयोग होता है।

देवनागरी लिपि मे मात्राओ के पृथक्-पृथक् चिह्न निश्चित होने के कारण किसी भी प्रकार की भ्रान्ति का अवकाश नही रहता। साथ ही, व्यंजनो में भी प्रत्येक ध्वनि का अलग वर्ण नियत होने से उच्चारण और लेखन का साम्य सुरक्षित रहता है। यह किसी भी लिपि की वैज्ञानिकता का सबसे बडा प्रमाण है।

४. देवनागरी लिपि के दोष—पूर्ण वैज्ञानिक लिपि होते हुए भी देवनागरी में कुछ दोष आ गए है। यथा—

यह लिपि उच्चारण के अनुसार चलती रही है, इसलिए इसके कुछ चिह्न अब व्यर्थ हो गए है, क्योकि उच्चारण मे उनका प्रयोग नही होता। यथा, ऋ, ञ, ण, ष वर्ण उच्चारण के अनुकूल नही लिखे जाते, केवल लिखित भाषा के व्याकरण के अनुसार ये आवश्यक है।

कुछ ऐसे अक्षर भी है, जो सम्बन्धित ध्वनियो के पूर्णत सूचक नही है। साथ ही, कुछ ध्वनियो का प्रयोग सर्वत्र एक समान नही होता। ऐसी ध्वनियो ने वास्तव मे भिन्न रूप धारण कर लिए है। उनके लिए भिन्न लिपि-चिह्नो की व्यवस्था देवनागरी लिपि मे नही है।

क्ष, त्र तथा ज्ञ वर्ण अनावश्यक है, क्योकि इनका उच्चारण क्छ, त्र तथा ग्य के समान होता है। अत पूर्वोक्त अक्षरो के विना भी उनसे सम्बन्धित ध्वनियो को लिखा जा सकता है।

र और व जब साथ आते है, तो उनसे 'ख' का भ्रम भी हो जाता है। यह भी देवनागरी का एक दोष है।

ल को ल, अ को अ तथा ण को ण की तरह भी लिखा जाता है। एक ही ध्वनि के लिए दो प्रकार के अक्षर भ्रम पैदा करते है।

इन प्रमुख दोपो के अतिरिक्त वर्णो की सख्या का अधिक होना, मात्राओ का ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ, सर्वत्र लगना, सयुक्त अक्षरो की जटिलता तथा ध और घ मे, भ और म मे, क और फ मे, प और ष मे तथा रा और ग मे अधिक अन्तर न होना भी देवनागरी के ध्यान देने योग्य दोष है। टकन-यत्र के लिए ये दोष बहुत कठिनाई उत्पन्न करते है।

५. देवनागरी लिपि में सुधार—उपर्युक्त दोषो के कारण उत्पन्न समस्याओ से निवृत्ति पाने के लिए सुधार की आवश्यकता प्राय अनुभव की जाती रही

है। राष्ट्र-लिपि के पद की प्रतिष्ठा के अनुकूल उसे बनाने के लिए विद्वानो ने अनेक बार प्रयत्न किए हैं। कुछ विद्वान् उसे अँगरेजी के अनुकरण पर ढालना चाहते हैं। वे सुधार की अपेक्षा उसमे विकार उत्पन्न कर देने का प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसे विद्वान् अँगरेजी के अनुकरण पर वर्ण-सख्या घटाना आवश्यक समझते हैं। परन्तु भाषा की वैज्ञानिकता का महत्व समझने वाले इसके विरोधी हैं। वे कहते हैं कि वर्ण-सख्या घटा देने से सभी ध्वनियो के उच्चारण के अनुसार लिपि नही रह जायगी। यही तक नही, उनका मत है कि ऐसा कर देने से समस्त साहित्य को ही बदलने की आवश्यकता हो जाएगी, क्योकि परिवर्तित लिपि को सीखने वाले लोग पुरानी लिपि से अनभिज्ञ होने के कारण उसमे छपी पुरानी पुस्तको को नही समझ पाएँगे। ऐसा करके हम अपनी बहुत बडी सचित निधि से हाथ धो बैठेगे। यह मत पर्याप्त् महत्वपूर्ण हे। अत लिपि सुधार की चेष्टा बेकार है। किन्तु फिर भी सुधार के लिए प्रयत्न किए गए हैं। वे प्रयत्न निम्नाकित है

१ देवनागरी लिपि मे सबसे पहले काका कालेलकर ने सुधार प्रस्तुत किए थे। महात्मा गान्धी को उनका समर्थन प्राप्त था। उनका प्रस्ताव था कि अ से अ तक के सब वर्ण समाप्त कर केवल अ पर विभिन्न मात्राएँ लगाकर काम चलाया जाय।

वे यह भी कहते थे कि महाप्राण व्यजनो को हटाकर अल्पप्राण व्यजनो मे 'ह' जोडकर काम चलाया जाय। अर्थात् ख को हटा कर कह, घ को हटाकर गह तथा इसी प्रकार अन्य महाप्राण व्यजन लिखे जायँ। ङ, ञ, ण, प, क्ष, त्र तथा ज्ञ को भी वे निकाल देना चाहते थे। उनके प्रस्तावो के अनुसार सेवाग्राम मे जिस वर्णमाला का प्रयोग किया गया, उसमे केवल २० वर्ण तथा १० मात्राएँ रह गई थी। राष्ट्रभाषा प्रचार सभा के साहित्य मे इसी लिपि का प्रयोग किया गया है। परन्तु यह लिपि जन-प्रिय न हो सकी।

२ देवनागरी लिपि मे दूसरा सुधार इससे भी अधिक अवैज्ञानिक था। यह सुधार उत्तर प्रदेश शासन ने एक परिषद् नियुक्त करके कराया था। आचार्य नरेन्द्रदेव को उस परिषद् का सभापति बनाया गया था। इस परिषद् ने पर्याप्त मस्तिष्क खपा कर बहुत सामान्य परिवर्तन किए। यथा, 'इ' की मात्रा को अक्षर के आगे लगाने का प्रस्ताव किया और 'ई' की मात्रा से उसमे केवल खडी पाई की लम्बाई को आधा रखने का निश्चय किया। इसी प्रकार क्ष, त्र, ज्ञ को समाप्त करके उनके स्थान पर क्ष, टर, ग्य आदि लिखने का

प्रस्ताव किया। सयुक्ताक्षरो के व्यजनों को भी अलग-अलग कर देने की

देवनागरी लिपि का नया रूप

अ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
ा	ि	ी	ु	ू	े	ै
ं ँ	ः	ो	ौ	ृ	ॄ	
क	ख	ग	घ	ङ		
च	छ	ज	झ	ञ		
ट	ठ	ड	ढ	ण		
त	थ	द	ध	न		
प	फ	ब	भ	म		
य	र	ल	व			
श	ष	स	ह			
क्ष	ज्ञ	ळ ़	क	प	ह	

बात कही। यथा, कर्म के स्थान पर कर्‌म तथा स्कूल के स्थान पर स्‌कूल लिखने की राय दी।

यो आचार्य नरेन्द्रदेव समिति की नीति मान कर चलने से देवनागरी की वर्णमाला घटने के स्थान पर बढ गई तथा उसमे पहले से भी अधिक जटिलता आ गई। सुधार के पश्चात् लिपि का जो रूप सामने आया, वह इस प्रकार है —

सरकार ने इस लिपि को कानून के बल पर चलाने की चेष्टा की। प्रारभिक पाठशालाओ मे इसी लिपि मे छपी पुस्तके चला दी गई। परन्तु इसमे इतने अधिक दोष थे कि जनता समर्थन करने को तैयार नही हुई। सुधार के स्थान पर विकृति पैदा हो जाने से ये परिवर्तन शीघ्र ही अस्वीकार्य हो गए। सुधार तो यह सोचकर किया गया था कि टाइप आदि मे सुविधा हो जाएगी, परन्तु फल यह हुआ कि लिखने और पढने मे भी आशातीत

कठिनाइयाँ उपस्थित हो गई । 'इ' की मात्रा और 'ई' की मात्रा का अन्तर लिखने मे तो बिलकुल ही समाप्त् हो गया। फलत उच्चारण और लेखन मे अन्तर ही उपस्थित नही हुआ अपितु पठन मे भी असुविधा होने लगी। अत यह सुधरी हुई लिपि फिर सुधारनी पडी और यो अपने पूर्व रूप मे ही चल रही है।

३ डा० सुनीति कुमार चटर्जी आदि कतिपय विद्वानो ने ऐसे सुझाव रखे, जिनके अनुसार देवनागरी के अस्तित्व को ही समाप्त कर देने का भय छिपा था। वे उसके स्थान पर रोमन लिपि के प्रयोग के पक्षपाती सिद्ध हुए।

सौभाग्य की बात है कि सुधार के नाम पर देवनागरी को विकृत करने वाले पूर्वोक्त सभी सशोधन अस्वीकृत तथा अप्रचलित हो गए। जनता ने उन सुधारो को ठुकराकर बहुत बडे साहस का परिचय दिया है तथा देवनागरी की वैज्ञानिकता की रक्षा की है।

१२ | खड़ी बोली हिन्दी के व्याकरण की रूपरेखा

हिन्दी भाषा का वर्तमान् रूप खडी बोली का साहित्यिक रूप है। अत हिन्दी का व्याकरण भी साहित्यिक खडीवोली का व्याकरण है। हिन्दी की अन्य उपभाषाओ और बोलियो से खडीबोली का व्याकरण अनेक बातो मे भिन्न है। अत जब हिन्दी-व्याकरण का प्रसग आता है, तब अन्य हिन्दी- बोलियो और विभाषाओ के व्याकरणिक रूपो को भूल जाना आवश्यक हो जाता है।

खडीबोली हिन्दी का व्याकरण सस्कृत के व्याकरण से तो अत्यधिक भिन्न है। उससे शब्दकोष लेने पर भी हिन्दी ने व्याकरण के क्षेत्र मे स्वतन्त्र विकास किया है। इसके कई कारण है। सस्कृत भाषा की प्रकृति हिन्दी की प्रकृति से भिन्न है। हिन्दी की प्रकृति अँगरेजी के अधिक निकट है। स्वीट नामक विद्वान् ने अँगरेजी को अयोगी श्लिष्ट योगात्मक भाषा माना है। हिन्दी भी कुछ इसी प्रकार की भाषा है। अँगरेजी के समान हिन्दी मे प्रयोग के लक्षण मिलते है, साथ ही सस्कृत के अनुकरण की प्रवृत्ति से योग के लक्षण भी दिखाई देते है। उदाहरणार्थ, अँगरेजी के समान हिन्दी मे स्थानानुसार शब्द के अर्थ का निर्धारण होता है एव सहायक क्रिया तथा परसर्ग अलग रहते है। नीचे के वाक्यो मे शब्दों की स्थिति एव परसर्ग तथा सहायक क्रिया की ओर ध्यान दिया जाय—

१—मोहन ने राम को पुस्तक दी है।

२—राम ने मोहन को पुस्तक दी है।

३—राम को मोहन ने पुस्तक दी है।

४—पुस्तक मोहन ने राम को दी है।

५—मोहन ने पुस्तक राम को दी है।

६—राम ने पुस्तक मोहन को दी है।

७—पुस्तक राम ने मोहन को दी है।

इन सभी वाक्यो मे समान शब्दो का प्रयोग है, किन्तु उनके स्थान बदले हुए हैं। फलत प्रत्येक वाक्य का अन्य वाक्यों से भिन्न अर्थ है। ने, को, परसर्ग भी सज्ञाओ से अलग प्रयुक्त हुए हैं। अत वे एक शब्द को छोड दूसरे शब्द के पास पहुँच कर अर्थ पर प्रभाव डालते हैं। 'दी' क्रिया से सहायक क्रिया "है" अलग है। अत 'दी' से उसे सुविधा-पूर्वक अलग किया जा सकता है। इस प्रकार सरलता से क्रिया भी अर्थ-परिवर्तन कर देती है। वस्तुत. यह सब अँगरेजी की प्रकृति के अनुकूल है। सस्कृत की प्रकृति इससे भिन्न है, क्योकि उसमे योगात्मक भाषा के लक्षण अधिक मिलते हैं। सस्कृत के शब्दो का अर्थ स्थान के अनुसार नही बदलता और न उसके परसर्ग या सहायक क्रियाएँ ही पृथक्-पृथक् आते हैं। उदाहरणार्थ कुछ वाक्य लीजिए—

१—माणवक पन्थान पृच्छति।

२—शत जयति देवदत्तम्।

३—सुधा क्षीरनिधि मथ्नाति।

४—राम स्वाग्रज गुणै अतिशेते।

इन वाक्यो मे शब्दो को स्थान बदलकर रखा जाय तो भी अर्थ मे अन्तर नही आता। परसर्ग तथा सहायक क्रियाएँ भी अर्थ तत्व से पृथक् नही हैं। अत स्पष्ट है कि हिन्दी से सस्कृत की प्रकृति भिन्न है। परन्तु यह भिन्नता सर्वत्र नही पाई जाती। हिन्दी भाषा कई बातो मे सस्कृत की ओर झुकी हुई हे। प्रत्यय एव उपसर्ग लगाकर शब्द-रचना करने की प्रवृत्ति हिन्दी और सस्कृत मे समान पाई जाती है। साथ ही विभक्ति लगा कर क्रिया बनाने की पद्धति भी दोनो भाषाओ मे एक समान है।

इस प्रकार हिन्दी भाषा मे अँगरेजी और सस्कृत दोनो की प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। यो यह भाषा दोनो भाषाओ के बीच की स्थिति मे है। यही कारण है कि इसका व्याकरण सस्कृत और अँगरेजी दोनो से प्रभावित होते हुए भी दोनो से भिन्न है। वास्तव मे भाषाओ के विकास मे प्रश्लिष्ट योगात्मक से अयोगात्मक की ओर जाने की जो प्रवृत्ति पाई जाती है, उसी के अनुसार सस्कृत से हिन्दी विकसित हुई है, अत अँगरेजी के व्याकरण से उसका कई बातो मे साम्य स्थापित हो जाना सहज है।

सस्कृत के व्याकरण की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। उसमे सधि, समास

एव शब्द-रूपो का साम्राज्य है। हिन्दी का व्याकरण उस दृष्टि से भिन्न है। उसमे समस्त शब्द निम्नाकित ८ भागो मे विभाजित है

१—सज्ञा
२—सर्वनाम
३—विशेषण
४—क्रिया
५—अव्यय
६—उपसर्ग
७—परसर्ग
८—प्रत्यय

सस्कृत मे प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति धातु-मूलक होती है। किन्तु हिन्दी-शब्दो का विकास इतने भिन्न प्रभावो से हुआ है कि अब प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति सस्कृत के किसी मूल धातु-शब्द से नही खोजी जा सकती। हिन्दी के जो शब्द अपने तत्सम रूप की रक्षा किए हुए है, उन्ही के विषय मे धातु-गत व्युत्पत्ति की बात चल सकती है।

हिन्दी की सज्ञाएँ भी विभिन्न प्रभावो से विकसित हुई है। सस्कृत की मौलिक कुलीनता की रक्षा का निरन्तर प्रयत्न करते हुए हिन्दी के सज्ञा शब्द विदेशी तथा देशी अनेक प्रकार के सम्मिश्रणो का फल है। साथ ही सस्कृत के लिंग, वचन और कारक से भिन्न पद्धति पर हिन्दी के लिंग, वचन और कारक विकसित हुए है, अत सस्कृत के कई तत्सम सज्ञा शब्द भी हिन्दी मे आकर या तो भिन्न रूप मे प्रयुक्त होने लगे है या भिन्न अर्थ देने लगे है। हिन्दी-सज्ञाओ के लिंग वचन तथा कारक क्रियाओ को भी प्रभावित करते है, जब कि सस्कृत मे ऐसा नही होता। विशेषण की प्रवृत्ति भी सस्कृत से भिन्न है। हिन्दी मे विशेष्य के अनुसार विशेषण का परिवर्तन नही होता, जब कि सस्कृत मे विशेष्य सज्ञा के अनुसार विशेषण का रूप हो जाता है।

हिन्दी के सर्वनामो का विकास भी स्वतत्र पद्धति पर हुआ है। उसमे सस्कृत के सर्वनामो जैसी जटिलता नही है। उदाहरणार्थ सस्कृत मे अन्य पुरुष के लिए सर्वनाम के रूप लिंग के अनुसार भिन्न-भिन्न होते है, किन्तु हिन्दी मे ऐसा नही है। हिन्दी मे 'वह' का प्रयोग स्त्रीलिंग, पुल्लिग तथा नपुंसकलिंग तीनो के लिए होता है। फिर नपुंसकलिंग तो हिन्दी ने स्वीकार ही नही किया। अत सस्कृत की सज्ञा और सर्वनाम के साथ लिंग सम्बन्धी जो जटिलता है, वह हिन्दी मे आकर समाप्त हो गई है। हिन्दी मे सर्वनाम का लिंग क्रिया के अनुसार निर्णीत होता है। उदाहरणार्थ—

१–वह जाता है। (पुल्लिग)
२–वह जाती है। (स्त्रीलिंग)
३—तुम जाते हो। (पुल्लिग)
४—तुम जाती हो। (स्त्रीलिंग)
५—वे जाते हैं। (पुल्लिग)
६—वे जाती हैं। (स्त्रीलिंग)
७—मैं जाता हूँ। (पुल्लिग)
८—मैं जाती हूँ। (स्त्रीलिंग)

सर्वनामो की व्युत्पत्ति भी सस्कृत के मूल रूपो से नही की जा सकती। न जाने कितने प्रभावो से हिन्दी के वर्तमान् सर्वनाम विकसित हुए हैं।

हिन्दी के अव्ययो का भी वैदिक भाषा से अब तक स्वतत्र परम्परा मे विकास हुआ है। विभिन्न विदेशी प्रभाव भी उन पर पडे हैं। अत यह नही कहा जा सकता कि हिन्दी अव्ययो का व्याकरणिक रूप पूर्णत सस्कृत या किसी अन्य भाषा पर निर्भर है। हिन्दी की क्रियाएँ प्रकृति और प्रवृत्ति दोनो मे पूर्ण स्वतत्र नही हैं। उनका सज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण शब्दो से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। सस्कृत की क्रियाओ के समान न तो उनके रूपो मे जटिलता मिलती है और न वे उन शब्दो की उपेक्षा करके अपना स्वतत्र अस्तित्व निर्मित करती हैं। क्रियाओ के लिंग, वचन, कारक तथा काल सज्ञा, सर्वनाम एव विशेषण का ध्यान रखकर चलते हैं।

हिन्दी के उपसर्ग, परसर्ग तथा प्रत्यय भी वाक्य-रचना मे स्वतत्र तथा महत्व-पूर्ण स्थान रखते हैं। हिन्दी उपसर्गो का अपना पृथक् इतिहास है। उन पर देशी-विदेशी अनेक प्रभाव पडे हैं। परसर्गों का वर्तमान् रूप भी अपने भीतर ऐसा इतिहास छिपाए हुए है, जिसका अधिकाश अभी तक नही खोजा जा सका, विद्वान् केवल अनुमान लगाकर रह गए हैं। प्रत्ययो का विकास हिन्दी ने अधिकाशत स्वतत्र रूप से किया है। सस्कृत से अब-तक उसके प्रत्यय कितने रूप बदल चुके हैं, यह भी स्वतत्र अध्ययन का विषय है।

वस्तुत हिन्दी भाषा का अपना स्वतत्र व्याकरणिक विकास-इतिहास है अत उस पर भिन्न-भिन्न अध्यायों मे विचार करना आवश्यक है। आगे के अध्यायो मे हम हिन्दी-व्याकरण के रूप पर विस्तार से विचार करने का प्रयत्न करेंगे। हिन्दी की व्याकरणिक मान्यताएँ भाषा वैज्ञानिक विकास की किस पृष्ठ-भूमि पर खडी हैं, यह स्पष्टत समझने के लिए सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय, उपसर्ग, परसर्ग तथा प्रत्यय पर पृथक्-पृथक् अध्यायो मे आगे विचार किया जाएगा।

१३ | हिन्दी की संज्ञा

(क) रूपान्तर के आधार

संज्ञा के रूप सामान्यत कारक, लिग एव वचन पर निर्भर होते है। सस्कृत मे आठ विभक्तियो मे भिन्न-भिन्न रूप बनते हैं। फिर लिग-भेद से भी रूप-भेद हो जाता है। वह भेद वचनो के अनुसार वढ भी जाता है। सामान्यत तीन वचनों तथा आठ विभक्तियो मे प्रत्येक सज्ञा के २४ रूप होते हैं, किन्तु लिग और शब्दान्त के अनुसार वह रूप-भेद सभी सज्ञाओ का समान नही होता। उदाहरणार्थ, सस्कृत मे बालक के २४ रूप इस प्रकार होते हैं.—

	एक वचन	द्वि० वचन	वहुवचन
प्रथमा	बालक	बालकौ	बालका
द्वि०	बालकम्	बालकौ	वालकान्
तृ०	बालकेन	बालकाभ्याम्	बालकै
च०	बालकाय	बालकाभ्याम्	बालकेभ्य.
प०	बालकात्	बालकाभ्याम्	बालकेभ्य
ष०	बालकस्य	बालकयो	बालकानाम्
सप्त०	बालके	बालकयो	बालकेषु
सम्बोधन	हे बालक	हे बालकौ	हे बालका

बालक पुल्लिग सज्ञा है, किन्तु प्रत्येक पुल्लिग सज्ञा के रूप इसी प्रकार नही वन सकते। उदाहरणार्थ, भानु शब्द भी पुल्लिग है, परन्तु उसके रूप इस प्रकार बनते हैं —

	ए० व०	द्वि० व०	व० व०
प्रथमा	भानु	भानू	भानव
द्वि०	भानुम्	भानू	भानून्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
तृ०	भानुना	भानुभ्याम्	भानुभि
च०	भानवे	भानुभ्याम्	भानुभ्य
प०	भानो	भानुभ्याम्	भानुभ्य
ष०	भानो	भान्वो	भानूनाम्
स०	भानौ	भान्वो	भानुषु
स०	हे भानो	हे भानू	हे भानव

इस प्रकार सस्कृत मे सज्ञा के रूप शब्द के अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त आदि के अनुसार चलते हैं तथा लिंग, वचन और विभक्ति के अनुसार उनके अनेक परिवर्तन हो जाते हैं।

हिन्दी की सज्ञा के रूप इन आधारो पर इतने विभिन्न रूप धारण नही करते। उसमे लिंग और वचन का भेद तो होता है, परन्तु उतना अधिक और जटिल नही है, जितना सस्कृत मे है। उदाहरणार्थ, हिन्दी मे द्विवचन नही होता, अत सस्कृत मे आठ विभक्तियो मे द्विवचन के जो रूप बनते हैं, वे हिन्दी मे नही बनते। इसके अतिरिक्त विभिन्न कारको मे भी प्राय सज्ञा का रूप अविकृत रहता है, केवल प्रत्येक कारक का चिह्न सज्ञा के साथ जोड दिया जाता है। एकवचन से बहुवचन मे सज्ञा रूप कही-कही परिवर्तित अवश्य हो जाता है, किन्तु फिर कारको के अनुसार एक वचन के समान ही कारक चिह्न लग जाते हैं। एक उदाहरण देखिए —

बालक

कारक	एक वचन	बहुवचन
कर्ता	बालक	बालक
	,, ने	बालको ने
कर्म	,, को	,, को
करण	,, से	,, से
सम्प्रदान	,, को	,, को
अपादान	,, से	,, से
सम्बन्ध	,, का, के, की	,, का, के की
अधिकरण	,, मे	,, मे
सबोधन	हे ,,	हे बालको

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि एकवचन से बहुवचन बनाते समय 'ओ' की वृद्धि हो जाती है, तत्पश्चात् कारको के अनुसार किसी भी वचन मे कोई रूप परिवर्तित नही होता, केवल कारक-चिह्न लग जाते है।

ऊपर के उदाहरण से यह भी स्पष्ट है कि हिन्दी मे सज्ञा शब्द के मुख्य रूप चार ही है—दो मूल रूप और दो विकृत रूप। मूल रूप बालक है, जो दोनो वचनो मे अविकृत रहता है, किन्तु उसके दोनो वचनों मे दो विकृत रूप भी बनते है।

ये विकृत रूप हर एक सज्ञा के नही होते। निम्नाकित वाक्यो मे 'गधा' शब्द के मूल तथा विकृत रूप उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत किए जाते है :—

मूल रूप

एक व०—गधा गया।
ब० व०—गधे गये।

विकृत रूप

ए० व०—गधे को भगाओ।
ब० व०—गधो को भगाओ।

ये रूप लिग-भेद के आधार पर भी परिवर्तित होते है, किन्तु कारको मे लिग-भेद का कोई प्रभाव नही पडता। यथा—

पुल्लिग	स्त्रीलिंग
बालक	बालिका
बालको	बालिकाओ

बालिका के रूप विभिन्न कारको तथा दोनो वचनो मे इस प्रकार बनते है—

	एक व०	बहु व०
कर्ता	बालिका	बालिकाएँ
	,, ने	बालिकाओ न
कर्म	,, को	,, को
करण	,, से	,, से
सम्प्रदान	,, को	,, को
अपादान	,, से	,, से
सम्बन्ध	,, का, के, की	,, का, के, की
अधिकरण	,, मे	,, मे
सम्बोधन	हे ,,	हे बालिकाओ

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी की सज्ञा के रूप सस्कृत की सज्ञा के अनुसार नही बने। उनमे उतनी जटिलता भी नही है। हिन्दी-सज्ञा-रूपो का यह परिवर्तन निम्नाकित आधारो पर निर्भर मिलता है --

१ एक वचन से वहुवचन का परिवर्तन।
२ विभिन्न कारको के चिह्नो या परसर्गो का सयोग।
३ पुल्लिग और स्त्रीलिंग का अन्तर।

(ख) रूपान्तर का इतिहास

रूपान्तर के आधारो को समझ लेने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी की सज्ञा का विकास सस्कृत से भिन्न पद्धति पर हुआ है। प्राचीन आर्य-भाषाओं मे सज्ञा-रूपो मे वहुत दुरूहता थी, जैसा कि सस्कृत के रूपो से स्पष्ट है। यह दुरूहता हिन्दी तक आते-आते विलकुल समाप्त हो गई। सस्कृत की दुरूहता लोगो को न अखरी हो, ऐसी वात नही, परन्तु उसका व्याकरण ऐसा कठोर शासक था, जिसकी कही भी अवज्ञा नही की जा सकती थी—आज भी नही की जा सकती। अत सस्कृत भाषा का प्रयोग करने वालो को अपनी भाषा का स्वाभाविक प्रवाह भुला देना पडता था। किन्तु जव जनता ने भाषा के प्रकृत प्रवाह का अनुसरण किया तो वे सभी सज्ञा-रूप, जो दुरूह तथा जटिल थे, धीरे-धीरे समाप्त हो गए। मध्यकालीन आर्य-भाषाओ मे हमे स्पष्टत उस जटिलता और दुरूहता का अवसान दिखाई देता है। जव सज्ञा शव्दो के रूप घिसने और घटने-वढने लगे तो उनके सस्कृत-प्रयुक्त व्याकरणिक रूप की रक्षा सभव न रही। यहाँ सस्कृत की कुछ सज्ञाओ के मध्यकालीन रूप दिए जाते हैं। इन सज्ञाओ को सस्कृत के अनुसार २४ रूपो मे परिवर्तित करना सभव नही था, क्योकि उनके मूल रूप ही कुछ-के-कुछ हो गए थे—

सस्कृत	म० का० आ० भा०
राज्ञी	राणी
कृष्ण	कण्ह
श्मशान	सुसाण
आम्र	अम्ब
विन्दु	वुन्द
स्तन	थण
सध्या	सञ्झ
वार्ता	वत्ता

सस्कृत	म० का० आ० भा०
कार्य	कज्ज
शय्या	सेज्ज
शकट	छक्कड
वृश्चिक	विच्छिको
चञ्चु	चञ्चू
मर्कटक	मक्कटको

इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि सस्कृत के सज्ञा-शब्दो को म० का० भा० आ० भाषाओ मे पर्याप्त मात्रा मे रूप-परिवर्तन करना पडा था। फलत बहुत से अकारान्त शब्द ईकारान्त, ऊकारान्त, ओकारान्त आदि हो गए थे। इसी प्रकार उकारान्त शब्द आकारान्त, इकारान्त आदि रूपो मे आ गए थे। ऐसा हो जाने के कारण सस्कृत के सज्ञा-रूप बनाने के व्याकरणिक आधार लागू नही हो सकते थे। जब सस्कृत मे ही अकारान्त और ऊकारान्त सज्ञाओ के रूप समान नही रहते, तब म० का० आ० भा० मे वैसा कैसे सभव था। ऐसी दशा मे एक ही मार्ग था कि या तो सस्कृत की किसी भी सज्ञा को, चाहे वह म० का० आ० भा० मे आकर अकारान्त से उकारान्त हो जाय या किसी अन्य रूप के दूसरे अन्य अन्त को प्राप्त हो जाए, किन्तु उसके सभी सस्कृत रूपो की उसी क्रम से रक्षा की जाय, अथवा जिस प्रकार उसका शब्दान्त हो उसी अनुसार उसके रूप चलाए जाये। परन्तु इससे सज्ञा के रूपो मे भयकर अराजकता खडी हो जाती। उदाहरणार्थ, विन्दु से विकृत होकर बने बुन्द के रूप उकारान्त रखे जाते, तो भी व्याकरणिक अराजकता थी और अकारान्त रखे जाते तो भी पूर्व रूपो का त्याग करके नितान्त नए मार्ग पर चलना था। वस्तुत मध्यकालीन आ० भा० में ऐसा करने की आवश्यकता ही नही समझी गई। मूल रूप मे विकार ही इसलिए किया गया था, ताकि समस्त जटिलता और दुरूहता से मुक्ति मिल जाय। ऐसा करने की स्वतत्रता ने म० का० आ० भा० मे सज्ञाओ को सरल रूपो की ओर बढा दिया। फलत आधुनिक काल तक आते-आते सज्ञा का नए रूपो मे विकास हुआ।

आधुनिक आर्यभाषाओ में सज्ञा के रूप बहुत सरल हो गए है तथा उनमें अधिकाशत एकरूपता भी आ गई है। हिन्दी-भाषा की वर्तमान सज्ञाएँ इसी विकास का परिणाम है। हिन्दी-सज्ञा मे इस समय रूपान्तर की जो प्रणाली मिलती है, वह प्राकृत से अपभ्रश तक धीरे-धीरे विकसित हुई है। यह प्रणाली

अपभ्रश मे पूर्णत: प्रचलित हो गई थी। अत आधुनिक हिन्दी-सज्ञा के वर्तमान् रूपान्तर को अधिकाश सरलता, एकरूपता तथा स्पष्टता का श्रेय अपभ्रश को मिलना चाहिए।

(ग) हिन्दी-संज्ञा के ऐतिहासिक भेद

हमने ऊपर हिन्दी-सज्ञा के रूपान्तर के इतिहास की ओर सकेत किया है। यहाँ यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि हिन्दी की सभी सज्ञाएँ एक ही प्रकार मे विकसित होकर वर्तमान् रूप को प्राप्त नही हुई है। सामान्यत ऐतिहासिक दृष्टि से हम उन्हे निम्नाकित भेदो मे विभाजित कर सकते है —

१—तद्भव सज्ञाएँ
२—तत्सम सज्ञाएँ
३—देशज सज्ञाएँ
४—विदेशी सज्ञाएँ

हिन्दी मे जिन सज्ञा-शब्दो का प्रयोग होता है, उनमे से अधिकाश वे सज्ञाएँ है, जो सस्कृत के तत्सम सज्ञा शब्दों से विकृत होकर बनी है। ऐसी सज्ञाओ को हम तद्भव सज्ञाएँ कह सकते है।

तत्सम सज्ञाएँ वे सज्ञा-शब्द है, जो सस्कृत से प्रत्यक्ष मार्ग से आए है और साहित्यिक हिन्दी मे प्रयुक्त होते है। ऐसे सज्ञा-शब्दो के रूपो मे कोई विकार नही हुआ है।

देशज वे सज्ञाएँ है, जो हिन्दी की विभिन्न बोलियो मे विभिन्न प्रभावो से विकसित हुई है, किन्तु जिनका साहित्यिक हिन्दी मे भी प्रयोग होता है। हिन्दी-क्षेत्र की सीमाओ पर बोली जाने वाली विभिन्न भाषाओ से भी इस प्रकार के सज्ञा-शब्द आ मिले है और हिन्दी की बोलियो ने जिन्हे नया रूप दे दिया है।

अरबी, फारसी तथा अँगरेजी के अनेक सज्ञा शब्द भी हिन्दी मे आ गए है। ऐसी सज्ञाओ को हम विदेशी सज्ञाएँ कह सकते है। हिन्दी ने अपनी प्रकृति से ऐसी सभी सज्ञाओ को अधिकाशत शासित कर दिया है।

१४ | हिन्दी-लिंग

लिंग शब्द चिह्न का वाची है। ससार के विभिन्न पदार्थों का नामकरण करने समय उनके कुछ चिह्नों के अनुसार भेद किये जाते हैं। सभो स्थूल ओर सूक्ष्म पदार्थ, चाहे वे जड हो या चेतन, तीन भेदो मे विभाजित किए जा सकते हैं --

१. स्त्रो-वाची पदार्थ
२. पुरुष-वाची पदार्थ
३. स्त्री और पुरुष के बोध से रहित पदार्थ।

इन तीनो प्रकार के पदार्थो को सस्कृत भाषा मे क्रमश स्त्रीलिंग, पुल्लिग तथा नपुसकलिग कहा गया है।

हिन्दी-लिग का इतिहास

प्राचोन भारतोय आर्य-भाषा (सस्कृत) मे चेतन पदार्थ पुल्लिग, स्त्रीलिंग तथा नपुँसक लिंग के तीन भेदो मे विभाजित थे। जो पदार्थ लिंग की भावना से रहित थे, उनको नपुसक लिंग मे सम्मिलित किया जाता था। प्रकृति के वे पदार्थ, जो अचेतन थे, प्राय नपुसक लिंग मे सम्मिलित थे। उसमे लिंग-विधान का प्रमुख आधार प्रत्यय थे। म० भा० आ० भा० (प्राकृत) मे भी लिंग का नियमन इसी प्रकार चला। किन्तु धीरे-धीरे शब्द-रूपो मे एकता लाने की प्रवृत्ति वढ जाने से अपभ्रश मे नपुसक लिंग लुप्त होने लगा था। ऐसे सभी शब्द जो सस्कृत मे नपुसक लिंग माने जाते थे, प्राय पुल्लिग माने जाने लगे थे। इस प्रकार नपुसकलिंग के पुल्लिग मे लय हो जाने से हिन्दी में आते-आते केवल दो लिंग रह गए। कुछ शब्द ऐसे भी थे जो नपुसकलिंग थे और स्त्री लिंग मे लय हो गए।

किन्तु सभी आधुनिक आर्यभाषाओ पर ऐसा प्रभाव नही पडा। मराठी, गुजराती और सिंहाली भाषाएँ द्रविड भाषाओ के पडोस मे विकसित हुईं,

इसलिए इन भाषाओ में नपुंसकलिंग का ह्रास नही हुआ। द्रविड भाषाओ मे अब भी तीन लिंग पाए जाते हैं और उसी के अनुसार मराठी, गुजराती तथा सिंहाली मे भी तीनो लिंग मिलते हैं। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि दक्षिण मे संस्कृत बोलने और संस्कृत-ग्रन्थो को महत्व देने वाले ऐसे ब्राह्मण रहते हैं, जो अपनी कट्टरता के लिए विख्यात हैं। उन्होने संस्कृत की शुद्धता के अनुकरण पर मराठी और गुजराती मे व्याकरणिक शब्द-रूपो की रक्षा की, फलत लिंग-सम्बन्धी वह परिवर्तन वहाँ संभव नही हुआ जो परिवर्तन उत्तर और पूर्व को धीरे-धीरे बढता गया। मध्यदेशीय भाषाओ म लिंग-भेद के प्रति मध्य-मार्गी दृष्टिकोण पाया जाता है। इसीलिए हिन्दी, पंजाबी, राजस्थानी तथा सिंधी मे दो लिंग मिलते हैं। किन्तु पूर्वी भारत की भाषाओ मे लिंग-भेद के प्रति पर्याप्त् शिथिलता पाई जाती है। यही कारण है कि बिहारी, उडिया, बँगला तथा असमी मे लिंग-सम्बन्धी कोई, विशेष कडाई नही है। एक प्रकार से इन भाषाओ से लिंग-भेद उठ-सा गया है। डा० चटर्जी ने इसका कारण कोल भाषाओ का प्रभाव बतलाया है। डा० धीरेन्द्र वर्मा का भी ऐसा ही मत है। वे कहते हैं कि "भारत की पूर्वी भाषाओ मे लिंग-भेद के शिथिल होने का कारण प्राय निकटवर्ती तिब्बत और बर्मा प्रदेशो की अनार्य भाषाओ का प्रभाव माना जाता है।"[1]

हिन्दी मे आकर नपुंसकलिंग की समाप्ति से जहाँ सरलता आई है, वहाँ संस्कृतज्ञ विद्वानो के लिए कठिनाई भी उपस्थित हो गई है, या यो कहिए कि वे हिन्दी की प्रकृति को न जानने के कारण शुद्ध हिन्दी-ज्ञाताओ के लिए कठिनाई उपस्थित करते हैं। संस्कृत के अनुकरण पर लिंग-भेद करने की प्रवृत्ति द्विवेदीयुगीन हिन्दी-साहित्य से बहुत बढ गई है। संस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग लेखक-गण मूल लिंग-भेद के अनुसार करना चाहते हैं। हिन्दी मे नपुंसक लिंग का अभाव तो स्पष्टत है ही, साथ ही स्त्रीलिंग और पुंल्लिग-सम्बन्धी संस्कृत के नियम भी नही चल पाते हैं। उदाहरणार्थ, 'आत्मा' संस्कृत मे पुंल्लिग है, परन्तु हिन्दी मे स्त्रीलिंग माना जाता है। संस्कृतज्ञ विद्वान् 'आत्मा' का हिन्दी मे भी पुंल्लिग मे प्रयोग कर जाते हैं।

हिन्दी की पूर्वी बोलियाँ पूर्वी भारत की भाषाओ के निकट होने के कारण लिंग-भेद के विषय में शिथिलता दिखलाती है। इसलिए हिंदी मे लिंग-

---

१ डा० धीरेन्द्र वर्मा कृत 'हिन्दी भाषा का इतिहास' पृष्ठ २५१

भेद व्याकरणिक दृष्टि से सरल होने पर भी व्यावहारिक दृष्टि से बहुत जटिल हो गया है।

जो शब्द सस्कृत से प्राकृत और अपभ्रश मे होते हुए हिन्दी तक लिंग-भेद की रक्षा करते हुए आए है, उनका रूप भी इतना बदल गया है कि पुराने रूप से मिलाने पर समता दिखाई नही देती। इसका कारण यह है कि प्राचीन आर्य-भाषा के प्रत्यय हिन्दी तक आते-आते घिस कर मूल रूप से भिन्न हो गए है और उन्ही के कारण लिंग का प्राचीन काल से अब तक का परिवर्तन सरलता से पहचाना नही जाता। इसका फल यह होता है कि जिन लोगो की मातृभाषा हिन्दी नही है, वे सरलता से हिन्दी शब्दो का निर्णय नही कर पाते। ऐसे लोग यह भी कह सकते है कि हिन्दी मे लिंग-सम्बन्धी कोई नियम नही है। परन्तु प्रत्येक शब्द के लिंग का पुरातन इतिहास खोजने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी मे, अनेक जटिलताएँ होने पर भी उचित व्याकरणिक लिंग-विधान है।

हिन्दी-लिंग और संज्ञा

हिन्दी मे सज्ञा, सर्वनाम विशेषण तथा क्रिया के लिंग के सम्बन्ध मे अलग-अलग नियम है। सज्ञा के लिंग प्राय प्रत्ययो के योग से अपना अन्तर सूचित करते है। पुल्लिग से स्त्रीलिंग बनाने के लिए प्राय· निम्नाकित प्रत्ययो का प्रयोग किया जाता है —

१. **ई प्रत्यय**

यह प्रत्यय पुल्लिग से स्त्रीलिंग बनाने मे बहुत प्रयुक्त होता है। यथा—

पुल्लिग	स्त्रीलिग
छुरा	छुरी
टुकडा	टुकडी
पत्ता	पत्ती
नथुना	नथुनी
चक्का	चक्की
पोथा	पोथी
लडका	लडकी
घोडा	घोडी
चरखा	चरखी
गधा	गधी

२—'इया' प्रत्यय

घोडा	घुडिया
चूहा	चुहिया
चिडा	चिडिया
फोडा	फुडिया

३—'इन' प्रत्यय

चमार	चमारिन
धोबी	धोबिन
सुनार	सुनारिन

४—'नी' प्रत्यय

शेर	शेरनी
मोर	मोरनी
जाट	जाटनी

५—'आनी' प्रत्यय

मेहतर	मेहतरानी
सेठ	सेठानी
जेठ	जेठानी
नौकर	नौकरानी

'ओई', 'आइन' आदि इसी प्रकार के अन्य प्रत्यय है। इन प्रत्ययो के अतिरिक्त शब्द के अन्त्यक्षर का नियम भी चलता है, परन्तु उसके अपवाद भी मिलते है। यथा, प्राय अकारान्त शब्द पुल्लिग और ईकारान्त शब्द स्त्रीलिंग होते है—

अकारान्त पुल्लिग	ईकारान्त स्त्रीलिंग
खटमल	टोली
झुड	चिट्ठी
कुटुम्ब	रोटी
दल	टोपी
मडल	नदी
फल	सवारी
पापड	बेडी
	गोली

अकारान्त	ईकारान्त
नल	घाटी
घाट	डोरी
बादल	फली
रेत	छुरी
लट्ठ	गिट्टी
हल	पटरी
घर	नली
पत्थर	
प्रेम	

परन्तु इस नियम के अपवाद भी मिलते हैं। यथा—

ईकारान्त पुंलिग शब्द	अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द
पानी	चील
घी	कोयल
मोती	बटेर
दही	जोक
मही	भीड
यात्री	फौज

आकारान्त शब्द स्त्रीलिंग और पुल्लिग दोनो मिलते हैं। यथा—

स्त्रीलिंग आकारान्त	पुल्लिग आकारान्त
मैना	कौवा
सभा	भेडिया
प्रजा	चीता
फुडिया	केंचुआ
पटिया	चमडा
पुडिया	आटा
खटिया	पहिया
धारा	गन्ना
	पैसा
	कपड़ा

लिग-भेद से अर्थ-परिवर्तन

हिन्दी मे लिग-भेद का अध्ययन करन से पता चलता है कि एक ही शब्द जब पुल्लिग से स्त्रीलिग बनता हे, तो कभी-कभी उसका अर्थ भी बदल जाता है। यथा--

स्त्रीलिंग	पुल्लिग
जाला (मकडी का)	जाली (लोहे की)
कठा (सोने का आभूषण)	कठी (सामान्यत भक्त की माला)
घडा (बर्तन)	घडी (समय-सूचक यत्र)
किनारा (तट)	किनारी (धोती की)
अडा (मुर्गी आदि का)	अडी (एक वस्त्र)
बीडा (पान का)	बीडी (तम्बाकू की)
पन्ना (कागज का)	पन्नी (सोन-चाँदी की)
घाट (नदी या तालाब का)	घाटी (पर्वत की)
चिट्ठा (विवरण)	चिट्ठी (पत्र)
चौका (भोजनालय)	चौकी (काठ या पत्थर की)
टोला (मुहल्ला)	टोली (झुड)
पीढा (बैठने का)	पीढी (पुश्त)
बदला (प्रतिशोध)	बदली (आकाश की)
रेत (बालू)	रेती (लोहे की)
शीशा (दर्पण या एक धातु)	शीशी (काँच का एक बर्तन)

इस प्रकार के अर्थान्तर लिग-भेद के आधार पर हिन्दी के बहुत अधिक शब्दो मे पाए जाते हैं। हिन्दी की बोलियो मे अर्थान्तर की सूचना देने वाले इस प्रकार के लिंग-परिवर्तन प्राय होते रहते हैं।

हिन्दी का लिंगभेद व्याकरणिक दृष्टि से सस्कृत के लिंग-भेद के समान चाहे महत्वपूर्ण न हो, किन्तु उससे भाषा की शक्ति बढी है, यह मानना पडेगा, क्योकि लिंग-भेद ने हिन्दी-शब्दो को नए अर्थ प्रदान किए हैं। यह अर्थ-क्षमता अधिकाशत लिंग-भेद के प्रभाव से हिन्दी-सज्ञाओ को ही प्राप्त हुई है।

हिन्दी-लिग और सर्वनाम

हिन्दी के सज्ञा-शब्दो मे लिंग-भेद की जैसी जटिलता है, वैसी जटिलता

सर्वनामो के साथ नही पाई जाती। हिन्दी के सर्वनामो का लिंग प्राय' क्रिया के लिंग से ज्ञात हो जाता है। यथा--

पुल्लिग-- वह जाता है।

स्त्रीलिग--वह जाती है।

पुल्लिग-- मै पढता हूँ।

स्त्रीलिंग--मै पढती हूँ।

पुल्लिग- तुम पढते हो।

स्त्रीलिग-- तुम पढती हो।

परन्तु कही-कही सर्वनामो मे स्त्रीलिंग बनाने की भी पद्धति चलती है। यथा--

पुल्लिग --यह मेरा है।

स्त्रीलिंग--यह मेरी है।

इसी प्रकार तेरा, तेरी, उसका, उसकी आदि रूपो का भी भिन्न लिंगो मे विकास हुआ है।

हिन्दी-लिग और विशेषण

विशेषणो मे प्राय विशेष्य से ही लिग-भेद की सूचना दी जाती है। प्रयोग के बिना हिन्दी-विशेषण प्राय पुल्लिग रूप मे ही रहते है। यथा--

सुन्दर (लडका, लडकी),

परिश्रमी ,, ,,

सुशील ,, ,,

दुश्चरित्र ,, ,,

हिन्दी-लिंग और क्रिया

हिन्दी मे क्रिया का लिंग प्राय कर्ता के अनुसार चलता है। यथा--

१--गाय घास चरती है।

२--बैल घास चरता है।

इसी प्रकार जब कर्ता कई होते है, किन्तु उनकी क्रिया एक होती है, तो उन कर्ताओ मे अन्तिम कर्ता के लिंग के अनुसार क्रिया का लिंग पाया जाता है। यथा--

"चार लडके, दो रथ और कई लडकियाँ जाती हैं।"

हिन्दी-क्रिया के लिंग पर अँगरेजी के लिंग-प्रयोग का भी पर्याप्त् प्रभाव पडा है। अत इस प्रकार की कई कर्ता वाली क्रियाओ के लिंग अब पुल्लिंग के होने लगे हैं। यथा—

"चार लडके, दो रथ और कई लडकियाँ जाते हैं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी-लिंग प्राचीन आर्यभाषा से अब तक विभिन्न परिवर्तनो से होता हुआ विकसित हुआ है। इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि उसके विकास की मूल प्रवृत्ति जटिलता से सरलता की ओर रही है। इस समय उसके रूप मे धीरे-धीरे जो विकास हो रहा है, वह उसकी सरलता का ही सूचक है।

---

१५ | हिन्दी-वचन

प्राचीन आर्य भाषा मे वचन की सख्या ३ थी। सस्कृत मे एक वचन, द्विवचन तथा बहुवचन के रूप बनते हैं। व्याकरण के कठोर नियमन के कारण सस्कृत मे वचन के तीनो रूप सुरक्षित रहे। किन्तु व्यवहार मे द्विवचन की अनावश्यकता शीघ्र अनुभव की जाने लगी थी। इसलिए मध्य कालीन भारतीय आर्य-भाषाओ मे द्विवचन समाप्त हो गया। किन्तु जहाँ आवश्यकता पडती थी, वहाँ 'द्वि' शब्द प्रयोग करके काम चलाया जाता था। 'द्वि' का प्राकृत मे 'दुवे' रूप मिलता है। यथा, 'दो मोर' के लिए "दुवे मजुला।" अपभ्रश तक 'द्विवचन' के लोप की प्रवृत्ति चली आई और उसके फलस्वरूप हिन्दी मे भी 'द्विवचन' नही मिलता। म० आ० भा० के समान 'द्विवचन' की सूचना ने के लिए 'दो' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यथा—दो आदमी, दो शेर, दो लडके।

सस्कृत में एक वचन से बहुवचन बनाने के लिए मूल शब्द मे विकार उत्पन्न किया जाता था। यथा—

गाय—	एकवचन	द्वि० व०	बहु० व०
	धेनु	धेनू	धेनव
	धेनुम्	धेनू	धेनून
	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभि —आदि

यह विकार विभिन्न विभक्तियो मे विभिन्न प्रकार से होता था। लिंग-भेद के अनुसार भी इस विकार मे परिवर्तन आ जाता था। सस्कृत भाषा व्याकरण-सम्मत रूप अपनाए रही, इसलिए उसमे वचन के सभी रूप ज्यो-के-त्यो सुरक्षित पाए जाते हैं। किन्तु मध्यकालीन आर्य-भाषाएँ सरलता की ओर जा रही थी। उनको व्याकरण की जटिलता स्वीकार नही थी। अत उनमे द्विवचन तो समाप्त हुआ ही, साथ ही लिंग-भेद के कारण सस्कृत मे चलने वाले विभिन्न वचन-विकार भी लुप्त होने लगे। प्रथमा विभक्ति का

बहुवचन प्रत्यय "आ" जो प्राचीन आर्यभाषा (संस्कृत) मे चलता था, अपभ्रंश मे लुप्त हो गया। इसका एक कारण यह भी था कि अपभ्रंश भाषा मे पद के अन्त मे आने वाले ह्रस्व स्वर के लोप की प्रवृत्ति बढ़ गई थी। अपभ्रंश से जब ऐसे शब्द हिन्दी मे आए तो उनमे भी बहुवचन सूचक प्रत्यय की अनिवार्यता नही रही। यथा—

संस्कृत—पुत्रा (ब० वचन)
अपभ्रंश—पुत्तु (,,)
हिन्दी— पूत (,,)

हिन्दी मे पूत शब्द प्रत्यय-हीन अवस्था मे एक वचन तथा बहुवचन दोनो रूपो मे प्रयुक्त होता है। यथा—

एक व०—उसके एक पूत है।
बहु व०—उसके चार पूत है।

संस्कृत के अधिकाश कारको (विभक्तियो) के प्रत्यय हिन्दी तक आते-आते इसी प्रकार लुप्त हो गए हैं। उदाहरणार्थ, कर्म, सम्प्रदान, अपादान तथा अधिकरण कारको के बहुवचन के प्रत्यय आधुनिक भारतीय आर्यभाषा (हिन्दी) मे नही मिलते। ये प्रत्यय मध्यकालीन आ० भा० मे ही लुप्त हो रहे थे। हिन्दी मे केवल कर्ता, करण एव सम्बन्ध कारको के बहुवचन के रूप मध्यकालीन आर्य-भाषा से आए, किन्तु इनमे भी स्थान-परिवर्तन हो गया। उदाहरणार्थ, मध्यकालीन आ० भा० मे जिस प्रत्यय का प्रयोग करण कारक के लिए होता था, उसका हिन्दी मे आकारान्त पुल्लिग कर्ता कारक के साथ होने लगा। एक उदाहरण देखिए —

म० आ० भा०	आ० भा० आ० भा० (हिन्दी)
घोडेहि (करण)	घोडे (कर्ता)

यह 'घोडेहि' शब्द 'घोटेभि' संस्कृत शब्द का विकृत रूप है। इसी प्रकार 'घोटकानाम्' से 'घोडो' बना है। विभिन्न कारको मे वचन की सूचना देने के लिए विभक्ति-प्रत्ययो की यह अदला-बदली म० भा० आ० भाषाओ मे बहुत बढ गई थी और उसी के आधार पर हिन्दी-वचनों के रूप विकसित हुए। संस्कृत के सम्बन्ध कारक का 'स्य' प्रत्यय तथा अधिकरण का 'स्मिन्' प्रत्यय म० भा० आ० भाषा मे क्रमश 'ह' तथा 'हि' बनकर कर्म, सम्प्रदान एव अपादान कारको मे भी लगने लगे थे। हिन्दी तक आते-आते 'ह' व्यजन का लोप हो गया और उसके स्थान पर 'अइ' और फिर 'ए' हो गया।

विकास की इस प्रक्रिया ने हिन्दी के बहुवचन को बहुत सरल बना दिया। सामान्यत: हिन्दी के वचन की निम्नांकित प्रमुख प्रवृत्तियाँ मिलती हैं—

१ कई शब्दो मे एकवचन और बहुवचन के रूप समान रहते हैं, केवल क्रिया से उनका अन्तर सूचित किया जाता है। यथा—

(क)	यह मेरा घर है।	(एक वचन)
	ये किसके घर हैं ?	(बहुव०)
(ख)	यह बर्तन उसका है।	(ए० व०)
	ये बर्तन उसके हैं।	(ब० व०)
(ग)	भाई आता है।	(ए० व०)
	चार भाई आते हैं।	(ब० व०)

बहु वचन का बोध कराने मे विशेषण भी सहायता करता है। कभी-कभी क्रिया से बहुवचन का बोध नही होता, तब विशेषण ही उसका बोध कराता है। उदाहरणार्थ—

ए० व०—यह बर्तन उसे दे दो।
ब० व०—ये बर्तन उसे दे दो।

इन वाक्यो मे 'यह' शब्द 'बर्तन' के एक वचन का सूचक है, जब कि 'ये' के प्रयोग से 'बर्तन' शब्द द्वितीय वाक्य मे बहु वचन हो गया है।

बहुवचन का यह अपरिवर्तित रूप पुल्लिग की व्यजनान्त तथा कुछ स्वरान्त सज्ञाओं में प्राय कर्ता कारक में ही रहता है। स्त्रीलिंग व्यजनान्त तथा आकारान्त सज्ञा के कर्ता कारक मे बहुवचन बनाने के लिए 'ए' का प्रयोग होता है। यथा—

ए० व०	ब० व०
बात	बाते
व्यथा	व्यथाएँ
मोटर	मोटरे
गेंद्	गेंदे

स्त्रीलिंग ईकारान्त कर्ताकारक मे बहुवचन बनाने के लिए अनुस्वार, ईं या इयाँ का प्रयोग करने की प्रथा मिलती है। यथा—

ए० व०	ब० व०
बेटी	बेटीं
	बेटियाँ

ए० व०	ब० व०
रोटी	रोटी
	रोटियाँ
रानी	रानी
	रानियाँ

विद्वानों का मत है कि ये 'एँ', ई तथा 'इयाँ' बहुवचन सूचक प्रत्यय संस्कृत के नपुंसक लिंग प्रथम बहुवचन प्रत्यक्ष अनि' का विकृत रूप है। विकार का क्रम इस प्रकार बताया जाता है:—

आनि	(शुद्धावस्था)
आइ	(प्रथम विकार)
एँ	(द्वितीय ,,)
एँ	(तृतीय ,,)
इयाँ	(चतुर्थ ,,)
ई	(पञ्चम ,,)

पुल्लिग के आकारान्त शब्दो के कर्ताकारक मे बहुवचन बनाने के लिए बहुत सरल नियम मिलता है। उसमें प्राय 'आ' के स्थान पर 'ए' कर देते हैं। यथा——

ए० व०	ब० व०
भाला	भाले
ठेला	ठेले
केला	केले
लडका	लडके
फरसा	फरसे
खिलौना	खिलौने

अन्य सभी कारको मे एक वचन से बहु वचन बनाने की प्रक्रिया इससे भी अधिक सरल तथा समान मिलती है। उनमे प्राय 'ओ' प्रत्यय के योग से काम चला लिया जाता है। यथा——

ए० व०	ब० व०
खेल	खेलों
मेला	मेलो
लडका	लडको

इनका प्रयोग कारक-चिह्न जोड कर किसी भी अन्य कारक मे कर सकते है। यथा——

१——खेलो मे, खेलो से, खेलो का।
२——मेलों मे, मेलो से, मेलो की।
३——लडको को, लडको मे, लडको से।

हिन्दी मे बहुवचन बनाने के लिए इससे भी अधिक सुविधा-जनक एक अन्य पद्धति यह पाई जाती है कि जिस एक वचन को बहु वचन बनाना होता है, उसमे वृन्द, गण, युग्म, जोडा, जोडी, दर्जन, कोडी आदि शब्द जोड देते है। यथा——

एक वचन	बहुवचन
बालक	बालक गण
पुरुष	पुरुष गण
छात्र	छात्र वृन्द
शब्द	शब्द युग्म
कबूतर	कबूतर युग्म
शुक	शुक युग्म
सारस	सारस जोडी

हिन्दी में संस्कृत की परम्परा से वचन का प्रयोग दूर हो गया है, इसका अन्य प्रमाण यह भी है कि संस्कृत मे सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रिया में बहुवचन का प्रत्यय लगता था, किन्तु हिन्दी मे विशेषण मे बहुवचन का प्रत्यय नही लगता। जो सर्वनाम शब्द सकेत वाचक विशेषण के रूप मे प्रयुक्त होते है, उन्हे छोड कर शेष सभी विशेषण प्राय. बहुवचन सज्ञा के साथ भी प्रत्यय हीन अवस्था मे ही रहते है। यथा——

ए० व०——सुन्दर लडका
ब० व०——सुन्दर लडके

क्रिया को एकवचन से बहु वचन करने के लिए भी बहुत सरल नियम मिलता है। प्राय मूल क्रिया मे 'ए' प्रत्यय का योग कर देने तथा सहायक क्रिया मे अनुस्वार लगा देने से बहुवचन बन जाता है। यथा——

ए० व०	ब० व०
खेलता है	खेलते है।
पढता है	पढते है।

किन्तु भूतकाल मे सहायक क्रिया मे अनुस्वार लगाने की आवश्यकता नही होती। यथा--

ए० व०	ब० व०
पढता था	पढते थे।
खेलता था	खेलते थे।

भविष्य काल मे अनुस्वार 'ए' मे ही आ जुडता है। यथा—

ए० व०	ब० व०
खेलेगा	खेलेगे
पढेगा	पढेगे
जाएगा	जाएँगे।

सर्वनामो मे बहुवचन बनाने के लिए सस्कृत के समान रूप मे विकार हो जाता है। यथा--

मैं	हम
मुझे	हमे
मुझको	हमे
मेरे	हमारे
मुझमें	हममे
तू	तुम
तुझे	तुम्हे
तुझको	तुमको
तेरे	तुम्हारे
वह	वे
उस	उन
उसने	उन्होने

इस प्रकार हम देखते है कि हिन्दी मे वचन का विकास प्राचीन आर्य-भाषा की दीर्घ परम्परा मे हुआ है। सस्कृत वचन की कुछ प्रवृत्तियाँ म० आ० भा० के काल मे ही समाप्त् हो गई थी और कुछ धीरे-धीरे हिन्दी तक आते-आते समाप्त हो गई। कुछ प्रवृत्तियाँ नए रूप मे विकसित हुई। कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ भी है, जिनके चिह्न पर्याप्त् परिवर्तन हो जाने पर भी अब भी शेष है। हिन्दी मे बहुवचन बनाने के लिए जो प्रत्यय सज्ञाओ मे लगते है वे अधिकाशत सस्कृत की विभक्तियो के प्रत्ययो के ही अवशिष्ट रूप है, जो घिस जाने एव स्थान-च्युत हो जाने के कारण सरलता से पहचान मे नही आते।

---

१६ | हिन्दी के कारक-चिन्ह

इतिहास

प्राचीन आर्य-भाषा मे शब्दो के रूप सभी विभवियो मे सयोगात्मक होते थे। हिन्दी मे जिस प्रकार कारक-चिह्न अलग जुडते है, उस प्रकार पृथक् चिह्नो की प्रवृत्ति सस्कृत भाषा मे नही थी। मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषाओ मे धीरे-धीरे सयोग की प्रवृत्ति समाप्त हो गई। इसका फल यह हुआ कि शब्दो के मूल रूप विभिन्न विभक्तियो मे प्रयोग में आने लगे। विभवित-युवत रूपो का अर्थ समझने मे कोई कठिनाई नही होती थी, किन्तु मध्यकालीन आर्यभापाओं मे शब्द का विभक्ति-रूप समाप्त् हो जाने से अर्थ समझने मे कठिनाई होने लगी। इस कठिनाई को दूर करने के लिए मूल शब्द के साथ ऐसे सहायक शब्दों का प्रयोग होने लगा, जो विभक्ति की सूचना देकर अर्थ के स्पष्टीकरण मे सहायक होते थे। इन्ही शब्दो से हिन्दी के वर्तमान् कारक-चिह्नो का विकास हुआ है। डा० धीरेन्द्र वर्मा का कथन है कि "घिसते-घिसते ये प्राय. इतने छोटे हो गए है कि इनके मूल रूपो को पहचानना प्राय दुस्तर हो गया है। इसके अतिरिक्त भाषा के साधारण शब्द समूह मे इनका पृथक् अस्तित्व नही रह गया है। इसी कारण इन्हे सज्ञा के मूल रूपो के साथ लिखने की प्रवृत्ति हो रही है।"[1]

सस्कृत मे कारक के चिह्न २४ प्रकार के होते थे, जो शब्द मे सयुक्त रहते थे। हिन्दी मे सहायक शब्दो के प्रयोग द्वारा जब कारक की सूचना देने का कार्य प्रारम्भ हुआ, तो इस जटिलता को भी समाप्त् कर दिया गया। वास्तव मे म० आ० भा० से ही जटिलता समाप्त् होने लगी थी। हिन्दी मे नपुसक लिंग के न होने से कारक के ८ रूप तो स्वत समाप्त् हो गए। शेप १६ रूपो मे भी एक वचन तथा बहुवचन का अन्तर करने का कार्य

---

१ हिन्दी भाषा का इतिहास—डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ २५८

कारक-चिह्नो पर निर्भर न रहा। सस्कृत मे एक वचन और वहुवचन का अन्तर कारक की सहायता से ही प्रकट होता है। यथा—

कविम्—द्वितीया का एक वचन
कवीन्— ,, ,, वहु वचन

परन्तु हिन्दी मे इस प्रकार की जटिलता भी नही रही। उसमे कारक चिह्नो का प्रयोग किसी शव्द के वचन-सम्वन्धी अन्तर की सूचना नही देता। यथा—

लडका ने—कर्ता कारक एक वचन
लडको ने— ,, ,, वहु वचन

इन दोनो उदाहरणो मे 'ने' कारक-चिह्न एक वचन तथा वहुवचन मे समान रूप से लगा हुआ है। इसी प्रकार अन्य कारक-चिह्न भी अपरिवर्तित अवस्था मे प्रत्येक शव्द के साथ एक वचन तथा वहु वचन—दोनो अवस्थाओ मे जुड जाते है। ऐसा इसलिए है, क्योकि हिन्दी के कारक-चिह्न सहायक शव्दो से घिस कर परसर्ग वनते-वनते मूल रूप वन गए है। प्रो० गार्डन एच० फेयर वैक ने इस वात को सिद्ध किया है कि हिन्दी के कारक-चिह्न मूल रूप है। उनकी मान्यता है कि कारक-चिह्न मूल शव्द के साथ रहने चाहिए, किन्तु इसके विपरीत वे वाक्य मे सुविधानुसार कही भी आ जाते है।[1] निम्नाकित वाक्यो मे प्रयुक्त कारक-चिह्न इसका प्रमाण है —

१ यहाँ का आदमी वहुत वुरा है।
२ आप मेज, कुर्सी इत्यादि को यहाँ से हटा दीजिए।
३ ये लडके धरती और आकाश के वीच मे है।
४ वह लोहे का है।
५. तुर्की भाषा इसी कुल की है।

इन वाक्यो मे रेखाकित का, को, से, मे, का, की कारक-चिह्न जिन शव्दो के पश्चात् आए है, उनसे सम्वन्धित नही है। यदि इन्हे मूल रूप न मान कर कारक-चिह्न माना जाय तो फिर 'यहाँ', इत्यादि, यहाँ, वीच, को सज्ञा मानना पडेगा। परन्तु सचाई यह है कि 'यहाँ' शव्द 'इस स्थान' जैसे किसी शव्द के लोप की पूर्ति कर रहा है और उसके आगे प्रयुक्त 'का' चिह्न 'स्थान' से विछुड कर स्वतत्र मूल रूप मे प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार द्वितीय वाक्य मे 'को' चिह्न 'इत्यादि' के साथ सम्वन्धित नही है, अपितु कुर्सी का

---

१ देखिए, हिन्दी-अनुशीलन, वर्ष १३, अक १-२, पृष्ठ ७८-८१

सम्बन्धी है। वास्तव मे मेज और कुर्सी अपने कारक रूप की सूचना स्वत' दे रहे हैं तथा 'को' स्वतत्र रूप मे आया है। यही कारण है कि वह मेज और कुर्सी दोनो के कारक-रूप को अभिव्यक्ति मे सहायक होते हुए भी अपनी स्वतत्र सत्ता घोषित कर रहा है। हिन्दी मे सविभक्तिक रूपो की सख्या घट गई है तथा कारक-चिह्न अर्थ की अभिव्यक्ति मे योग देने की आवश्यकता के अनुसार वाक्य मे स्थान बनाते हैं। गार्डन एच० फेयरबैंक ने उन्हे मूल रूप मे स्वीकार करते हुए इसके निम्नाकित कारण बतलाए हैं—

"१—का, मे, ने, तक आदि को हिन्दी मे पृथक् मूल रूप मानने का प्रथम कारण हिन्दी के बल देने के ढग पर निर्भर है। यदि 'का' इत्यादि को सज्ञा के साथ सयुक्त किए गए कारक की विभक्ति के रूप मे एक अकेला शब्द समझा जाय तो बलाघात का यह नियम लागू नही होगा, क्योकि सज्ञा पर बल देने की स्थिति मे 'का' इत्यादि के योग से कोई प्रभाव नही होगा।

२—परसर्गो को पृथक् मूल रूप समझने का दूसरा कारण यह भी है कि परसर्ग के पूर्व की सज्ञा पहले ही से कारक-चिह्नित होती है और यदि पूर्ण सहिति को एक अकेला रूप समझा जाय तो विभक्ति दोहरी हो जाती है।

३—परसर्गों को पृथक् मूल रूप समझने का तीसरा कारण उन रूपो पर आधारित है, जिनमे ये परसर्ग जुड सके। यदि हम परसर्ग-युक्त एक रूप को अकेला कारक रूप समझे तो हम इस प्रकार के समस्त रूपो को कारक-चिह्नित सज्ञाओं के रूप में विभाजित कर सकते हैं।"[१]

अत कारक-चिह्नो को पृथक् मूल रूप में स्वीकार करना ही उचित है। विद्वानो ने इन्हे परसर्ग की सज्ञा दी है। हिन्दी मे पाए जाने वाले परसर्गों की व्युत्पत्ति पर सक्षेप मे यहाँ विचार किया जाता है।

व्युत्पत्ति

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हिन्दी के कारक-चिह्न, जिन्हे विद्वानो ने परसर्ग कहा है, स्वतत्र शब्द थे, किन्तु घिसते-घिसते वे वर्तमान अवस्था मे रह गए हैं। विद्वानो ने उनकी पूर्वावस्था का पता लगा कर उनकी व्युत्पत्ति इस प्रकार बतलाई है —

ने

यह परसर्ग पश्चिमी हिन्दी मे कर्ताकारक के साथ आता है। प्राय. कर्ता

१ हिन्दी अनुशीलन, वर्ष १३, अक १ २, पृष्ठ ७९।

कारक के साथ कोई चिह्न नही आता। सज्ञा-पद के कर्मणि तथा भावे प्रयोग मे ही यह परसर्ग आता है।

इस परसर्ग की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतैक्य नही है। बीम्स ने इसको करण कारक के अन्तर्गत मान कर विचार किया है। उनकी मान्यता है कि सम्प्रदान तथा करण कारको के चिह्न व्युत्पत्ति के विचार से समान रूप मे थे। इसलिए उन्होने 'ने' को 'लगि' 'लागि' आदि शब्दो से उत्पन्न माना है। ब्लाक और ग्रियर्सन इसका सम्बन्ध 'तन' से मानते है। ट्रम्प ने इसकी व्युत्पत्ति तृतीया 'एन' से बतलाई है। परन्तु इस सम्बन्ध मे विद्वानो ने आपत्ति प्रकट की है। डा० धीरेन्द्र वर्मा कहते है कि 'मराठी में यह 'ए' तथा गुजराती मे 'ए' के रूप मे वर्तमान् है। इस तरह 'एन' के 'न' का धीरे-धीरे लोप होता गया है। फिर 'एन' का ने होना कैसे सभव है?"[1]

हार्नली ने मारवाडी मे सम्प्रदान के लिए 'नै' और 'ने' के प्रयोग का पता लगाकर यह मत प्रकट किया है कि शायद उस कारक मे अनावश्यक समझ कर कर्ताकारक के लिए 'ने' का प्रयोग होने लगा।

डा० सुनीतिकुमार चटर्जी तथा डा० सुकुमार सेन ने 'ने' की व्युत्पत्ति 'कर्ण' शब्द से मानी है। उनका मत है कि कर्ण से कन्न, कन्नहि, नइ और फिर 'ने' हो गया। कन्नौजी बोली मे 'कने' शब्द समीप के अर्थ मे प्रयुक्त होता है, जिससे 'ने' की यह व्युत्पत्ति प्रमाणित होती है।

इस प्रकार 'ने' की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे विद्वानो ने विभिन्न अनुमान लगाए है। अभी तक सर्वमान्य व्युत्पत्ति नही दी जा सकी है।

को

कर्म एव सम्प्रदान कारको मे इस परसर्ग का प्रयोग होता है। हार्नली तथा बीम्स ने इस परसर्ग की व्युत्पत्ति 'कक्षे' से मानी है। उनके मतानुसार 'कक्षे' से काख, फिर काख, काह, कहे, कौ, को आदि के क्रम से 'को' का विकास हुआ। ट्रम्प ने यह माना है कि 'को' की व्युत्पत्ति 'कृत' से इस प्रकार हुई—

कृत—कितो—किओ—को।

से

करण तथा अपादान कारको मे इस परसर्ग का प्रयोग होता है। बीम्स ने इसकी व्युत्पत्ति 'सम' से मानी है। हार्नली ने 'अस्' से सिद्ध की है।

---

१ हिन्दी भाषा का इतिहास, डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ २६०

डा० उदयनारायण तिवारी का मत है कि 'से' का मूल रूप 'सम-एन' है, जिससे इसकी व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से हुई है—

समएन > सएँ > सइँ > से > से।"[१]

के लिए

यह सम्प्रदान कारक का परसर्ग है। इसकी व्युत्पत्ति 'के' और 'लिए' पर अलग-अलग विचार करने से निष्पन्न होती है। 'के' की व्युत्पत्ति 'कृते' से मानी गई है। उसका क्रम इस प्रकार है—

कृते > कए > के।

'लिए' की व्युत्पत्ति 'लग्ने' 'लग्गे', 'लिए' के क्रम से मानी जाती है।

का, के, की

ये परसर्ग सम्बन्ध कारक के साथ प्रयुक्त होते हैं। इनकी व्युत्पत्ति कृत से इस प्रकार हुई—

कृत > करितो > करिओ > केरवो > केरओ > केरो > केर > का।

'का' ही 'के' तथा 'की' मे रूपान्तरित हो गया है।

में, पर

ये दोनो अधिकरण कारक के साथ आने वाले परसर्ग है। 'मे' की उत्पत्ति मध्ये से मज्झे, मज्झि, मज्झहि, माहि, महि, में—के क्रम से हुई है। हार्नली ने 'पर' की उत्पत्ति परे से परि, पर के क्रम से मानी है।

---

१ हिन्दी-भाषा का उद्गम और विकास, पृष्ठ ४४२

हिन्दी-सर्वनाम | १७

संज्ञा के स्थान पर सर्वनाम का प्रयोग होता है। संस्कृत मे लिंग और वचन के अनुसार सर्वनाम के अनेक रूप बनते हैं। प्राचीन आर्यभाषा की यह प्रवृत्ति मध्यकालीन आर्यभाषाओ मे ह्रासोन्मुखी हो गई और हिन्दी मे आकर सर्वनामो का रूप बहुत सरल हो गया। लिंग-भेद के आधार पर जिस प्रकार संस्कृत मे अलग-अलग रूप बनते थे, उस प्रकार हिन्दी मे नही मिलते। स्त्रीलिंग तथा पुल्लिंग दोनों मे हिन्दी-सर्वनामो का रूप एक समान रहता है। अत उनकी संख्या बहुत कम रह गई है। हम समस्त हिन्दी-सर्वनामों को निम्नाकित वर्गों मे विभाजित कर सकते हैं —

१—पुरुष वाचक सर्वनाम—मैं, तू
२—निश्चय वाचक सर्वनाम—वह, यह
३—प्रश्नवाचक सर्वनाम—क्या, कौन
४—अनिश्चय वाचक सर्वनाम—कुछ, कोई
५—सम्बन्ध वाचक सर्वनाम—जो
६—नित्यसम्बन्धी सर्वनाम—सो
७—निजवाचक सर्वनाम—अपना
८—आदर सूचक सर्वनाम—आप

इनमे से कुछ सर्वनाम विशेषण के समान भी प्रयुक्त होते हैं। यथा—

वह— वह आ रहा है। (सर्वनाम)
वह आदमी आ रहा है। (विशेषण)

यह— यह लाओ। (सर्वनाम)
यह कुर्सी लाओ। (विशेषण)

कौन— कौन बोला ? (सर्वनाम)
कौन लडका बोला ? (विशेषण)

डा० उदयनारायण तिवारी का मत है कि 'से' का मूल रूप 'सम-एन' है, जिससे इसकी व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से हुई है—

समएन 7 सएँ 7 सइँ 7 से 7 से।"[१]

के लिए

यह सम्प्रदान कारक का परसर्ग है। इसकी व्युत्पत्ति 'के' और 'लिए' पर अलग-अलग विचार करने से निष्पन्न होती है। 'के' की व्युत्पत्ति 'कृते' से मानी गई है। उसका क्रम इस प्रकार है—

कृते 7 कए 7 के।

'लिए' की व्युत्पत्ति 'लग्ने' 'लग्गे', 'लिए' के क्रम से मानी जाती है।

का, के, की

ये परसर्ग सम्बन्ध कारक के साथ प्रयुक्त होते हैं। इनकी व्युत्पत्ति कृत से इस प्रकार हुई—

कृत 7 करितो 7 करिओ 7 केरवो 7 केरओ 7 केरो 7 केर 7 का।

'का' ही 'के' तथा 'की' मे रूपान्तरित हो गया है।

में, पर

ये दोनो अधिकरण कारक के साथ आने वाले परसर्ग है। 'मे' की उत्पत्ति मध्ये से मज्झे, मज्झि, मज्झहि, मांहि, महि, मे—के क्रम से हुई है। हार्नली ने 'पर' की उत्पत्ति परे से परि, पर के क्रम से मानी है।

---

१ हिन्दी-भाषा का उद्गम और विकास, पृष्ठ ४४२

हिन्दी-सर्वनाम | १७

संज्ञा के स्थान पर सर्वनाम का प्रयोग होता है। सस्कृत मे लिग और वचन के अनुसार सर्वनाम के अनेक रूप ,बनते है। प्राचीन आर्यभाषा की यह प्रवृत्ति मध्यकालीन आर्यभाषाओ मे ह्रासोन्मुखी हो गई और हिन्दी मे आकर सर्वनामो का रूप बहुत सरल हो गया। लिग-भेद के आधार पर जिस प्रकार सस्कृत मे अलग-अलग रूप बनते थे, उस प्रकार हिन्दी मे नही मिलते। स्त्रीलिंग तथा पुल्लिग दोनों मे हिन्दी-सर्वनामो का रूप एक समान रहता है। अत उनकी सख्या बहुत कम रह गई है। हम समस्त हिन्दी-सर्वनामो को निम्नाकित वर्गों मे विभाजित कर सकते है --

१--पुरुष वाचक सर्वनाम--मै, तू
२--निश्चय वाचक सर्वनाम--वह, यह
३--प्रश्नवाचक सर्वनाम--क्या, कौन
४--अनिश्चय वाचक सर्वनाम--कुछ, कोई
५--सम्बन्ध वाचक सर्वनाम--जो
६--नित्यसम्बन्धी सर्वनाम--सो
७--निजवाचक सर्वनाम--अपना
८--आदर सूचक सर्वनाम--आप

इनमे से कुछ सर्वनाम विशेषण के समान भी प्रयुक्त होते है। यथा--

वह-- वह आ रहा है। (सर्वनाम)
वह आदमी आ रहा है। (विशेषण)

यह-- यह लाओ। (सर्वनाम)
यह कुर्सी लाओ। (विशेषण)

कौन-- कौन बोला ? (सर्वनाम)
कौन लडका बोला ? (विशेषण)

क्या— क्या खा रहे हो ? (सर्वनाम)
क्या चीज खा रहे हो ? (विशेषण)
जो— जो आएगा, आ जाएगा। (सर्वनाम)
जो लडका आएगा, आ जाएगा। (विशेषण)

हिन्दी के सभी सर्वनामो मे कारक-चिह्नो का प्रयोग सज्ञाओ के समान ही होता है। अत सस्कृत की तरह उनके अलग-अलग रूप हिन्दी मे नही बनते। इसलिए कारको के कारण हिन्दी के सर्वनामो मे विशेष जटिलता नही पाई जाती। सामान्यत कारक-चिह्न लगाने से प्रमुख सर्वनामो के जो रूप बनते हे, वे इस प्रकार हें—

मैं

एक वचन— मैने, मुझको, मुझसे, मेरे मुझपर, मुझमे आदि।
बहुवचन— हमने, हमको, हमसे, हम पर, हमारे, हम मे आदि।

तू

एक वचन—तूने, तुझको, तेरे, तुझसे, तुझपर, तुझमे' तेरे लिए।
बहुवचन— तुमने, तुमको, तुम्हारे, तुमसे, तुम्हारे लिए, तुम पर, तुम मे।

यह

एक वचन—इसने, इसको, इसे, इससे, इस पर, इसके लिए, इसमे आदि।
बहुवचन— इन्होने, इन्हे, इनको, इनसे, इन पर, इनके लिए, इनमे आदि।

वह

एक वचन—उसने, उसको, उसे, उससे, उस पर, उसके लिए, उसमे।
बहुवचन— उन्होने, उन्हे, उनको, उनसे, उन पर, उनके लिए, उनमे आदि।

अन्य सर्वनामो मे इतना रूप-परिवर्तन नही होता। ये रूप भी सज्ञाओ के समान कारक-चिह्नो का योग करके सरलता से बन जाते हे। अत हिन्दी-कारक व्याकरणिक दृष्टि से बहुत सरल हे। इनका विकास किन मूल रूपो से हुआ है, इस पर यहां विचार किया जाता है—

१. पुरुष वाचक सर्वनाम

(क) उत्तम पुरुष सर्वनाम

मैं—यह उत्तम पुरुष एक वचन सर्वनाम है। इसकी उत्पत्ति सस्कृत के तृतीया 'मया' रूप से मानी जाती है। जिसका क्रम इस प्रकार है—

मया से मई
मई से मैं

डा० उदयनारायण तिवारी ने मया+एन से मैं की व्युत्पत्ति मानी है। वस्तुत मैं का अनुस्वार 'एन' से ही आया है। सस्कृत के 'अह' से इसका सम्बन्ध नही है, ऐसा विद्वानो का मत है।

हम—मैं का वहुवचन रूप 'हम' भी सस्कृत के 'वय' मे उत्पन्न नही हुआ है। विद्वानो के मतानुसार इसकी उत्पत्ति वैदिक 'अस्मे' से इस प्रकार हुई है—

अस्मे—अस्म—अम्ह—हम्म—हम

मेरा—मेरा की व्युत्पत्ति 'मम+केर' से मानी जाती है। उसका क्रम इस प्रकार है—

मम+केर—ममेर—मेर—मेरा।

हमारा—इसी प्रकार अस्म+कर से हमारा उत्पन्न हुआ है।

मुझ—मुझ की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे विद्वानो का मत है कि यह सर्वनाम मह्यम् से मज्झ और फिर मुझ होकर वना।

(ख) मध्यम पुरुष सर्वनाम

तू—इस सर्वनाम का मूल सम्बन्ध वैदिक तु तथा त्वम् से जोडा जाता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने त्वया से तू की उत्पत्ति मानी। उनके अनुसार त्वया, तुम, तुअ, तू का क्रम इसके विकास में रहा है।

तुम—इसका सम्बन्ध सस्कृत के 'तुष्मे' मे जोडा जाता है। प्राकृत मे इसका 'तुम्हे' रूप वना तथा अपभ्रश मे 'तुम्हइ' होकर हिन्दी में 'तुम' हो गया।

तेरा—इसकी उत्पत्ति मेरा के समान ही तव+केर से हुई है।

तुम्हारा—इसकी उत्पत्ति तुष्म+केर से मानी गई है, जो इस प्रकार है—

स्म+तुकेर—तुम्ह करको—तुम्ह अरओ—तुम्हारो—तुम्हारा।

तुझ—इस सर्वनाम की व्युत्पत्ति मुझ के समान तुभ्यम् से हुई है। क्रम इस प्रकार है—

तुभ्यम्—तुज्झ—तुझ

२—निश्चय वाचक सर्वनाम

वह—चटर्जी ने इस सर्वनाम की व्युत्पत्ति सस्कृत के कल्पित रूप 'अव' से मानी है, जो इस प्रकार है—

अव—वो—वह

सस्कृत के 'तद्' से इसका कोई सम्बन्ध नही है।

डा० उदयनारायण तिवारी का मत है कि 'वह' की उत्पत्ति सस्कृत अदस् शब्द के रूप 'असौ' मे इस प्रकार हुई है[1]—

सस्कृत=असौ
पाली=असु
प्राकृत=असो
अपभ्रंश=अहो
हिन्दी=ओह, वह

उस—इस सर्वनाम की व्युत्पत्ति सस्कृत अवस्य से इस प्रकार मानी जाती है—

सस्कृत=अवस्य
प्राकृत=अउस्स
हिन्दी=उस

डा० उदयनारायण तिवारी का मत है कि 'अमुष्य' से 'उस' उत्पन्न हुआ है। यथा—

संस्कृत=अमुस्य
पाली=अमुस्स
प्राकृत=अउस्स
हिंदी=उस

उन्ह—इसकी व्युत्पत्ति उसके समान अमुष्याम् से मानी गई है। क्रम इस प्रकार है—

अमुष्याम्—अउण—उण्ह—उन्ह।

यह—हार्नली ने इस सर्वनाम की व्युत्पत्ति एषा से मानी है—

एषा—एहा—यह

चटर्जी का मत है कि 'एत' से 'यह' उत्पन्न हुआ है। डा० उदयनारायण तिवारी के मतानुसार एष से यह उत्पन्न हुआ है—

एष—एसो—एहो—यह।

३—प्रश्नवाचक सर्वनाम

क्या—इस शब्द की व्युत्पत्ति अनिश्चित मानी जाती है। 'किम्' से इसका विकास सभव नही है। 'क' से इसकी उत्पत्ति मानी जा सकती है—

क=का=क्या

---

१ देखिए—हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृष्ठ ४६३

किन्तु इस विकास मे अर्थान्तर भी उपस्थित हो गया है।

किस---इसकी उत्पत्ति कस्य से हुई है---

कस्य=कस्स=किस

कौन---इस सर्वनाम की व्युत्पत्ति क+पुन से मानी जाती है---

क पुन =कपुण=कउण=कौण=कौन।

किन्ह---इसकी व्युत्पत्ति सस्कृत केषा के कल्पित रूप काना से मानी जाती है---

काना=केणा=केना=किन=किन्ह

४--अनिश्चय वाचक सर्वनाम

कोई---यह सर्वनाम सस्कृत 'क अपि' से उत्पन्न हुआ है। क्रम इस प्रकार है---

क अपि=कोऽपि=कोवि=कोइ=कोई।

किसी---इसकी उत्पत्ति कस्यापि से इस प्रकार हुई है---

कस्यापि=कस्स वि=कस्सइ=किसी।

कुछ---यह सर्वनाम किं+चिद् से उत्पन्न माना जाता है---

किं+चिद्=किंछि=किछि=किछु=कुछ।

५--सम्बन्ध वाचक सर्वनाम

जो---यह शब्द संस्कृत य से बना है---

य =यो=जो

जिस---इसकी उत्पत्ति सस्कृत 'यस्य' से हुई है---

यस्य=जिस्स=जिस।

जिन---इसकी उत्पत्ति सस्कृतके 'याना' से मानी जाती है।

६--नित्य सम्बन्ध सर्वनाम

सो---इसकी उत्पत्ति सस्कृत के 'स' से मानी जाती है---

स =सो

तिन्ह---इसकी उत्पत्ति तेषा से इस प्रकार हुई है---

तेषा=ताना=ताण=तिन=तिन्ह।

तिस---इसकी उत्पत्ति सस्कृत 'तस्य' से मानी जाती है---

तस्य=तस्स=तिस

७--निज वाचक सर्वनाम

अपना--आप से अपना रूप सम्बन्ध कारक मे बना है। इसकी उत्पत्ति प्राकृत अप्पाणो से हुई है--

अप्पाणो = अप्पाणु = अपना।

आपस--इसकी उत्पत्ति आत्मस्य से मानी जाती है--

आत्मस्य = आपस्स = आपस

८ आदर-सूचक सर्वनाम

आप--इसकी उत्पत्ति सस्कृत 'आत्मन्' से मानी जाती है--

आत्मन् = आप्पणो = अप्पाण = अप्प = आप।

वस्तुत यह 'आप' शब्द पहले 'निजवाचक' सर्वनाम के रूप मे विकसित हुआ और बाद मे उसका प्रयोग 'आदर सूचक' रूप मे भी होने लगा।

हिन्दी-सर्वनामो की व्युत्पत्ति पर विचार करने से ज्ञात होता है कि अभी तक इस क्षेत्र मे जो कार्य हुआ है, वह पूर्ण सतोषजनक नही है, क्योंकि अधिकाश सर्वनामो के वर्तमान् रूपो की व्युत्पत्ति अनुमान से सिद्ध की गई है।

हिन्दी-विशेषण | १८

श्री कामता प्रसाद गुरु ने विशेषण के मुख्य तीन भेद किए हैं—

१—सार्वनामिक विशेषण

२—गुणवाचक विशेषण

३—संख्या वाचक विशेषण

सार्वनामिक विशेषण शब्दों पर 'सर्वनाम' अध्याय के अन्तर्गत विचार किया जा चुका है। शेष दो प्रकार के विशेषणों पर यहाँ विचार किया जाता है।

गुण वाचक विशेषण

गुणवाचक विशेषणों की संख्या प्रत्येक भाषा में अन्य सब विशेषणों से अधिक होती है। ये विशेषण काल, स्थान, आकार, दशा एवं गुण के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। ये विशेषण वाक्य में विशेष्य पद के अनुसार लगते हैं।

प्राचीन आर्य-भाषा में विशेषण-पदों के रूपों में विशेष्य पदों के अनुसार परिवर्तन होता था। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं में भी यह पद्धति अधिकांशत चलती रही। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में यह प्रवृत्ति अपवाद रूप में कहीं-कहीं मिलती है। सामान्यत पश्चिमी हिन्दी बोलियों में विशेष्य के अनुसार विशेषण के रूप में परिवर्तन कर देने के कुछ उदाहरण मिलते हैं। यथा—

विशेषण	विशेष्य
नया	ग्रन्थ
नयी	पुस्तक
पुराना	घर

पुरानी	हवेली
लम्बा	आदमी
लम्बी	स्त्री
चौडा	मैदान
चौडी	पट्टी
ऊँचा	पेड
ऊँची	दीवार
नीचा	पौधा
नीची	धरती
भला	आदमी
भली	स्त्री

परन्तु अधिकाशत हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुसार विशेषण विशेष्य के अनुसार बदलते नही है। यथा—

विशेषण	**विशेष्य**
वर्तमान्	दशा
वर्तमान्	काल
आगामी	वर्ष
आगामी	तिथि
गोल	छेद
गोल	टोपी
समान	साहस
समान	बुद्धि
सुन्दर	लडका
सुन्दर	लडकी

जिन शब्दो मे विशेष्य के अनुसार लिंग या वचन सम्बन्धी परिवर्तन होता है, वे विशेषण अधिकाशत आकारान्त होते है। पुल्लिग विशेष्य शब्द के साथ आकारान्त विशेषण कर्ता कारक के एक वचन मे विकार-हीन रहता है। यथा—

१—भला आदमी ऐसा नही करता।

२—ऊँचा पेड जल्दी गिर जाता है।

परन्तु जब वे बहुवचन-विशेष्य के साथ आते है, तो प्राय: उनमे विकार हो जाते है। आकारान्त के स्थान पर वे एकारान्त हो जाते है। यथा—

१—भले आदमी ऐसा नही करते।
२—ऊँचे पेड जल्दी गिर जाते है।

सस्कृत मे विशेष्य के अनुसार विशेषण के बदलने की जो प्रवृत्ति थी, उसका इसमे अनुकरण नही मिलता, क्योकि उस नियम से भला और ऊँचा शब्द अपने विशेष्य आदमी और पेड के अनुसार अविकृत रहने चाहिए थे। अत ध्यान से देखने से ज्ञात होता है कि प्रा० आ० भा० के विशेष्यानुसारी विशेषण रूप हिन्दी मे नही चलते। विकार या तो होता ही नही या होता है तो स्वतत्र रूप से होता है। हिन्दी के विशेषण लिंग, वचन और कारक के अनुसार जहाँ अपने रूप में परिवर्तन करते है, वहाँ वे विशेष्य के रूप की चिन्ता नही करते। कही-कही इस तथ्य के ऐसे अपवाद भी मिलते है, जो सस्कृत के अनुकरण पर बदलते जान पडते है। साधारणत कर्ता बहुवचन एव विकारी कारको के दोनो वचनो मे आकारान्त विशेषणो का पदान्त 'आ' 'ए' हो जाता है और उसके अनुसार आकारान्त विशेष्य भी बदल जाता है। यथा—

अच्छा	लडका
अच्छे	लडके
बुरा	घोडा
बुरे	घोडे
काला	बछडा
काले	बछडे

इन उदाहरणो मे अच्छा, बुरा एव काला शब्द आकारान्त विशेषण है तथा उनके साथ विशेष्य भी आकारान्त है। अत दोनो मे रूप-परिवर्तन समान प्रणाली से हुआ है। यह परिवर्तन सस्कृत की परम्परा के अनुकूल प्रतीत होता है। लिंग के अनुसार भी ऐसे सभी आकारान्त एक वचन पदो मे प्राय. विशेषण विशेष्य का अनुसरण करता है। यथा—

अच्छा	लडका
अच्छी	लडकी
बुरा	घोडा
बुरी	घोडी
काला	बछडा
काली	बछडी

किन्तु बहुवचन स्त्रीलिंग मे यह नियम नही चलता। यथा--

अच्छी	लडकी
अच्छी	लडकियाँ
बुरी	घोडी
बुरी	घोडियाँ
काली	बछडी
काली	बछडियाँ

इससे भी स्पष्ट है कि हिन्दी के विशेषण प्रायः स्वतत्र रूप से अपना रूप बदलते है।

आकारान्त विशेषणो के अतिरिक्त अन्य विशेषणो मे रूप-परिवर्तन नही होता, जिससे हिन्दी-विशेषण की स्वतत्र प्रवृत्ति का पता चलता है। यथा--

अकारान्त विशेषण—	सहज	बुद्धि	——
	सहज	प्रेम	——
	दीन	पुरुष	पुरुषो
	दीन	स्त्री	स्त्रियो
	योग्य	छात्र	छात्रो
	योग्य	छात्रा	छात्राओ

ऊकारान्त विशेषण——

घरू	नौकर	नौकरो
घरू	बात	बाते
झगडालू	लडका	लडके
झगडालू	लडकी	लडकियाँ

गुणवाचक विशेषणो मे तुलना सूचित करने वाले विशेषण भी होते है। प्रा० आ० भा० मे तुलना का भाव प्रकट करने के लिए 'तर' तथा 'तम' प्रत्यय जोडते थे, परन्तु हिन्दी के तद्भव रूपो मे ये प्रत्यय समाप्त हो गए। इनके स्थान पर हिन्दी मे 'से' परसर्ग का प्रयोग होने लगा है। यथा—

१--यह कार्य उससे अच्छा है।
२--आम अनार से अच्छा है।

कभी-कभी जैसा गुण सूचित करना होता है, उसी प्रकार का सहायक शब्द भी जोड दिया जाता है। यथा—

१––वह तुमसे ज्यादा अच्छा है।

२––आम अनार से बढकर मीठा है।

तुलना मे जब किसी वस्तु को सबसे अच्छा बताना होता है, तो सस्कृत 'तम' के स्थान पर 'सबसे' का प्रयोग करते है। यथा––

१––वह सबसे अच्छा है।

२––तुम सबसे योग्य हो।

समानता का भाव 'सरीखा' और 'जैसा' शब्दो के योग से भी प्रकट किया जाता है। यथा––

१––तुम सरीखा आदमी नही मिलेगा।

२––वह पुस्तक इस जैसी नही है।

पूर्वोक्त उदाहरणो मे 'से' परसर्ग की व्युत्पत्ति सर्वनाम के विवेचन मे, बताई जा चुकी है। 'सरीखा' और 'जैसा' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है––

सरीखा––	सदृश	सस्कृत
	सरीच्छ	म० आ० भा०
	सरीखा	हिन्दी
जैसा––	यादृश	सस्कृत
	जइस	म० आ० भा०
	जैसा	हिन्दी

संख्या वाचक विशेषण

हिन्दी मे सख्या वाचक विशेषण गणना, क्रम, समूह, गुण, भिन्नता आदि के लिए प्रयुक्त होते है। गणना वाची शब्द आधुनिक आर्य भाषाओ मे प्राय समान पाए जाते है। ऐसे शब्द बहुत कम है, जिनमे ध्वनि-परिवर्तन हुआ है। यथा, पजाबी मे 'बीस' के लिए 'वीह'। हिन्दी के गणना वाचक शब्द अधिकाशत मध्य कालीन आर्यभाषा मे निश्चित हो गए थे। पाली मे इनका जो रूप विकसित हुआ, वही भारतीय आधुनिक भाषाओ मे आया। पाली पर तत्कालीन पडौसी बोलियो का भी प्रभाव पडा था, इसलिए उसमे बोलियो के भी कुछ गणनावाची शब्द आए होगे। उसी का बचा हुआ रूप वे शब्द है, जो आधुनिक भा० आ० भाषाओ मे कही-कही मिल जाते है। बीस का 'वीह' रूप इसी प्रकार का है। पाली से आधुनिक आर्यभाषाओ मे कही-कही जो परिवर्तन मिलता है, वह प्राय 'स' के स्थान पर 'ह' का है। यह परिवर्तन केवल उत्तर-पश्चिम की आर्यभाषा मे ही कही-कही ग्रहण हुआ है।

हिन्दी के गणनावाची विशेषणो की व्युत्पत्ति विभिन्न विद्वानो ने निम्नाकित रूप मे स्वीकार की है—

आ० का०	म० का०	प्रा० का०
१—एक	एक्क	एक
२—दो	दुये, दो	द्वौ
३—तीन	तिणि	त्रीणि
४—चार	चत्तारि	चत्वारि
५—पाँच	पञ्च	पञ्च
६—छ	छह्	षट्
७—सात	सत्त	सप्त
८—आठ	अट्ठ	अष्ट
९—नौ	नव, नअ	नव
१०—दस	दस, डह	दश
११—ग्यारह	एआरह	एकादश
१२—बारह	बारस	द्वादश
१३—तेरह	तेरस	त्रयोदश
१४—चौदह	चउद्दह	चतुर्दश
१५—पन्द्रह	पणरह	पञ्चदश
१६—सोलह	सोलह	षोडश
१७—सत्रह	सत्तरह	सप्तदश
१८—अठारह	अट्ठारह	अष्टादश
१९—उन्नीस	उनवीसइ	ऊनविंशति
२०—वीस	वीसइ	विंशति
२१—इक्कीस	एक्कवीसअ	एकविंशति
२२—वाईस	वावीसा	द्वाविंशति
२३—तेईस	तेवीसा	त्रयोविंशति
२४—चौवीस	चउव्वीस	चतुर्विंशति
२५—पच्चीस	पचवीस	पचविंशति
२६—छव्वीस	छव्वीस	षड्विंशति
२७—सत्ताईस	सत्तवीसा	सप्तविंशति
२८—अट्ठाईस	अट्ठावीसा	अष्टाविंशति

आ० का०	म० का०	प्रा० का०
२९——उन्तीस	अणवीसा	ऊनत्रिंशति
३०——तीस	तीसअ	त्रिंशत्
३१——इकत्तीस	एक्कतीसअ	एकत्रिंशत्
३२——बत्तीस	बत्तीसा	द्वात्रिंशत्
३३——तेतीस	तेत्तीस	त्रयस्त्रिंशत्
३४——चौतीस	चोतीस	चतुस्त्रिंशत्
३५——पैंतीस	पणतीस	पञ्चत्रिंशत्
३६——छत्तीस	छतीस	षट्त्रिंशत्
३७——सैंतीस	सत्ततीस	सप्तत्रिंशत्
३८——अड़तीस	अट्ठतीसा	अष्टात्रिंशत्
३९——उन्तालीस	उन्तालीस	ऊनचत्वारिंशत्
४०——चालीस	चत्तालीसा	चत्वारिंशत्
४१——इकतालीस	एक्कचत्तालीसा	एकचत्वारिंशत्
४२——व्यालीस	वायालीस	द्विचत्वारिंशत्
४३——तेतालीस	तेआलीसा	त्रिचत्वारिंशत्
४४——चवालीस	चोवालीसा	चतुश्चत्वारिंशत्
४५——पैंतालीस	पन्नचत्तालीसा	पञ्चचत्वारिंशत्
४६——छियालीस	छच्चत्तालीसा	षट्चत्वारिंशत्
४७——सैंतालीस	सत्तालीसा	सप्तचत्वारिंशत्
४८——अड़तालीस	अट्ठअत्तालीस	अष्टचत्वारिंशत्
४९——उचास	ऊणपचासा	ऊनपचाशत्
५०——पचास	पचासा	पञ्चाशत्
५१——इक्यावन	एक्कावण	एक पञ्चाशत्
५२——बावन	बावण	द्वि ,,
५३——त्रेपन	त्रिप्पण	त्रि ,,
५४——चौवन	चउप्पण	चतु ,,
५५——पचपन	पचावण	पञ्च ,,
५६——छप्पन	छप्पण	षट् ,,
५७——सत्तावन	सत्तावण	सप्त ,,
५८——अट्ठावन	अट्ठवण	अष्ट ,,

५९—उनसठ	अउणट्ठि	ऊनषष्टि
६०—साठ	सट्ठि	षष्टि
६१—इकसठ	एक सट्ठि	एक षष्टि
६२—वासठ	बासट्ठि	द्वा ,,
६३—त्रेसठ	तिरसट्ठि	त्रि ,,
६४—चौसठ	चउसट्ठि	चतु ,,
६५—पैंसठ	पइसट्ठि	पञ्च ,,
६६—छियासठ	छयासट्ठि	षट् ,,
६७—सड़सठ	सत्तसट्ठि	सप्त ,,
६८—अड़सठ	अट् सट्ठि	अष्ट ,,
६९—उनहत्तर	एउणसत्तरि	एकान्नसप्तति
७०—सत्तर	सत्तरि	सप्तति
७१—इकहत्तर	एकसत्तरि	एक ,,
७२—बहत्तर	बावत्तरि	द्वा ,,
७३—तिहत्तर	तेवत्तरि	त्रि ,,
७४—चौहत्तर	चउहत्तरि	चतुस् ,,
७५—पचहत्तर	पञ्जहत्तरि	पञ्च ,,
७६—छियत्तर	छावत्तरि	षट् ,,
७७—सतत्तर	सत्तहत्तरि	सप्त ,,
७८—अठत्तर	अट्ठहत्तरि	अष्ट ,,
७९—उन्नासी	उणास्सी	ऊनाशीति
८०—अस्सी	असीइ	अशीति
८१—इक्यासी	एक्कासीइ	एकाशीति
८२—ब्यासी	बासीइ	द्वयशीति
८३—तिरासी	तेसीइ	त्र्यशीति
८४—चौरासी	चउरासीइ	चतुरशीति
८५—पचासी	पञ्चासीइ	पञ्चाशीति
८६—छियासी	छडसीइ	षडशीति
८७—सतासी	सत्तासीइ	सप्ताशीति
८८—अठासी	अट्ठासि	अष्टाशीति
८९—नवासी	एगूणनउइ	नवाशीति

९०—नव्वै	नव्वए	नवति
९१—इक्यानवे	एक्काणउइ	एकनवति
९२—बानवे	बाणउइ	द्विनवति
९३—तिरान्वे	तेणउइ	त्रिनवति
९४—चौरान्वे	चउणउइ	चतुर्नवति
९५—पचान्वे	पञ्चाणउइ	पञ्चनवति
९६—छियान्वे	छण्णउइ	षण्णवति
९७—सतान्वे	सत्तानउए	सप्तनवति
९८—अठान्वे	अट्ठानउइ	अष्टानवति
९९—निन्यान्वे	नवन्नवइ	नवनवति
१००—सौ	सअ	शत
१०००—दससौ	दस सौ	दश शत
लाख	लक्ख	लक्ष
करोड	कोडि	कोटि
अरब	अब्बु	अब्ज
खरब	खब्ब	निखर्व

इन सख्या वाचक विशेपणो से गणना प्रकट होती है। किन्तु इनके अतिरिक्त क्रम सूचित करने वाले सख्या वाचक विशेषण भी होते हैं। ये विशेपण पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ आदि के रूप मे प्रत्येक सख्या वाचक विशेपण से बन जाते हैं। कतिपय प्रारम्भिक क्रम-सख्या-वाचक विशेपणो की व्युत्पत्ति यहाँ दी जाती है –

१—पहला—पढिल्ल—पहिल—पहला

२—दूसरा—हार्नली ने इसकी व्युत्पत्ति दू तथा सरा के योग से बतलाई है। 'सरा' को उन्होंने 'सृत' से उत्पन्न माना है तथा 'द्वि' से 'दू'।

३—तीसरा—इसकी भी उत्पत्ति द्विस्सृत से दूसरा के समान ही त्रिस्सृत से हुई है।

४—चौथा इसकी उत्पत्ति चतुर्थ—चउत्थ—चौथा के क्रम से हुई है।

क्रम-सख्या वाचक विशेषणो के अतिरिक्त समानुपाती सख्यावाचक विशे-पण भी सख्या से बनते है। यथा, दूना, तिगुना, चौगुना आदि। ऐसे कुछ शब्दो की व्युत्पत्ति यहाँ दी जाती है—

१ दूना—यह शब्द द्विगुण से बना है।

२ तिगुना—यह शब्द त्रिगुण से बना है।

३ चौगुना—यह शब्द चतुष्क से बना है।

इसी प्रकार गुणात्मक सख्यावाचक शब्द सख्या से बने है। कुछ गुणात्मक शब्द इस प्रकार हैं—

पञ्जा—यह शब्द सस्कृत पञ्चक से बना है।

सत्ता—इसकी व्युत्पत्ति 'सत्तक' से हुई है।

भाग-सूचक सख्याएँ भी सख्यावाचक विशेषणो से उत्पन्न हुई है। ऐसे कतिपय शब्दो की व्युत्पत्ति यहाँ दी जाती है—

पाव=पाद—पाअ—पउआ—पाव

तिहाई=त्रि भागिक—तिहाइअ—तिहाई

आधा=अर्द्ध—अद्ध—आधा

डेढ=द्वि अर्द्ध—डिअड्ढ—डेढ

सवा=सपाद—सवाअ—सवा

लिग का प्रभाव—सख्या वाचक विशेषणा पर लिंग का बहुत कम प्रभाव पडता है। गणनावाची विशेषण प्राय स्त्रीलिंग तथा पुल्लिग दोनो मे समान रहते है। यथा—

एक लडका—एक लडकी

चार कुत्ते—चार गाएँ

ग्यारह आदमी—ग्यारह स्त्रियाँ

अस्सी चूहे—अस्सी चीटियाँ

क्रम सूचित करने वाले सख्यावाचक विशेपणो पर लिंग का प्रभाव पडता है। वे स्त्री लिंग मे प्राय ईकारान्त हो जाते है। यथा—

तीसरा आदमी

तीसरी स्त्री

चौथी पुस्तक

चौथा ग्रन्थ

समानुपाती विशेषण भी प्राय लिंगानुसार बदल जाते है। यथा—

दूना काम

दूनी भीड़

चौगुना पानी

चौगुनी मिट्टी

गुणात्मक सख्यावाचक विशेषणो मे भी इसी प्रकार परिवर्तन हो जाता है। यथा--

पञ्जा-- पञ्जी

सत्ता-- सत्ती

भाग-सूचक विशेषणो मे कही लिंग के अनुसार परिवर्तन होता है और कही नही होता है। यथा--

एक पाव घी--एक पाव सुपाडी

तिहाई फल--तिहाई मिठाई

आधा दूध--आधी मिठाई

इस अध्ययन से स्पष्ट है कि हिन्दी मे सख्यावाचक विशेषणो के परिवर्तन मे व्याकरणिक नियमो की अपेक्षा व्यवहार की सुविधा अधिक सहायक हुई है।

——

१६ | हिन्दी-क्रिया

क्रिया-रूपो के प्राचीन आधार

हिन्दी की क्रिया सस्कृत-क्रिया से विकसित होकर वर्तमान् अवस्था को प्राप्त हुई है। सस्कृत मे क्रिया के रूप निम्नाकित आधारो पर बनते थे—

१—तीन पद

क—आत्मनेपद

ख—परस्मैपद

ग—उभयपद

२—तीन वाच्य

क—कर्तृ वाच्य

ख—कर्म वाच्य

ग—भाव वाच्य

३—दश काल

क—वर्तमान् काल—लट्

ख—आज्ञा— लोट

ग—विधि— विधिलिङ

घ—अनद्यतनभूत— लङ

ङ—परोक्ष भूत— लिट्

च—सामान्यभूत— लुङ

छ—अनद्यतन भविष्य— लुट्

ज—सामान्य भविष्य— लृट्

झ—आशी — आशीर्लिङ

ञ—क्रियातिपत्ति— लृङ

४--तीन पुरुष

क--प्रथम पुरुष

ख--मध्यम पुरुष

ग--अन्य पुरुष

५--तीन वचन

क--एक वचन

ख--द्वि वचन

ग--बहुवचन

प्रत्येक क्रिया को इन आधारो पर ५४० प्रकार से रूपान्तरित किया जाता था। इसके अतिरिक्त सभी क्रियाओ के रूप समान नही बनते थे, अत उन्हे १० वर्गों मे विभाजित किया गया था, जिनको गण कहते थे। उन सब के रूप पूर्वोक्त आधारो पर अलग-अलग ५४० प्रकार से बनते थे। सस्कृत-क्रिया की यह जटिलता अब भी ज्यो की त्यो वर्तमान् है।

आधारो में परिवर्तन

मध्यकालीन आर्यभाषा ने इस जटिलता से बचने के कई मार्ग निकाले। पाली मे इस सम्बन्ध मे निम्नाकित परिवर्तन हुए

१--गणो की सख्या १० के स्थान पर ५ रह गई, क्योकि पाँच गणो के रूप अन्य पाँच गणो के समान कर दिए गए।

२--द्विवचन को समाप्त् करके केवल २ वचन शेप रह गए।

३--पदो का अन्तर विशेप न रहा।

४--कालो की सख्या १० से घटाकर ८ कर दी गई।

इस प्रकार पाली मे क्रिया-रूपो के आधारो मे पर्याप्त् परिवर्तन हुआ। फलत जहाँ सस्कृत मे ५४० प्रकार से प्रत्येक क्रिया के रूप बनते थे, वहाँ पाली मे केवल २४० प्रकार से बनने लगे।

प्राकृत मे आकर क्रिया-रूप के आधारो मे और अधिक परिवर्तन हुआ। वे परिवर्तन इस प्रकार है--

१--धातुओ का गणो मे विभाजन लगभग समाप्त् हो गया।

२--पद और वाच्य मे भी कमी की गई तथा ६ के स्थान पर केवल ३ प्रयोग रह गए।

३--कालो की सख्या घटते-घटते केवल ४ रह गई।

इस प्रकार क्रिया-रूपो के आधारो मे अत्यधिक परिवर्तन हुआ और सस्कृत की जटिलता म० का० आ० भाषाओ मे धीरे-धीरे समाप्त् हो गई।

सस्कृत-क्रिया पूर्वोक्त परिवर्तनो से होती हुई जब हिन्दी तक आई, तो वह सरल हो गई। उसमे सस्कृत-क्रिया के रूपाधारो मे निम्नाकित परिवर्तन हुए--

१--धातुओ मे गण-विभाजन न रहा।

२--पद और वाच्य की उलझन समाप्त् हो गई है तथा नई सरल प्रवृत्तियो का उदय हुआ है।

३--कालो मे क्रिया के रूप परिवर्तित करने की नई सरल पद्धति हिन्दी ने अपनाई है। सस्कृत के १० कालो मे केवल ३ काल रह गए है।

४--वचनो की सख्या भी २ ही स्वीकार की गई है।

५--लिग भी तीन के स्थान पर २ रह गए हैं।

इन परिवर्तनो के अतिरिक्त सबसे महत्व का परिवर्तन यह हुआ है कि हिन्दी-क्रिया सस्कृत की सश्लेषावस्था त्याग कर विश्लेषावस्था मे आ गई है।

हिन्दी-क्रिया के धातु-रूप

हिन्दी-क्रियाओ की मूल धातुएँ हार्नली के मतानुसार ५०० के लगभग हैं। ये धातुएँ डा० चटर्जी के विभाजन के अनुसार निम्नाकित दो श्रेणियो में आती हैं--

१--सिद्ध धातुएँ
२--साधित धातुएँ

१. सिद्ध-धातुएँ--

जो धातुएँ मूल रूप मे सुरक्षित हैं, सिद्ध धातुएँ कही जा सकती हैं। ये चार प्रकार की हैं--

(क) सस्कृत से आगत तद्भव धातु
(ख) सस्कृत णिजन्त से आगत धातु
(ग) सस्कृत के तत्सम एव अर्द्ध तत्सम धातु
(घ) सदिग्ध व्युत्पत्ति वाली देशी धातु

(क) सस्कृत से आगत तद्भव धातु--जो धातुएँ तद्भव रूप मे हिन्दी मे प्रा० आ० भा० से आई हैं, उनकी सख्या हार्नली ने ३९३ बतलाई है।

ये धातुएँ साधारण तथा उपसर्ग-युक्त दो रूपों में मिलती हैं। कतिपय साधारण तद्भव सिद्ध-धातुएँ निम्नांकित हैं--

सा० त० सि० धातु	संस्कृत धातु
कर् (ना)	कृ
कह् (ना)	कथ्
गिन् (ना)	गण्
गूँज् (ना)	गुञ्ज्
जान् (ना)	ज्ञा
ताक् (ना)	तर्क
दे (ना)	दा
नाच् (ना)	नृत्
पीना (ना)	पा
पूछ् (ना)	पृच्छ्
मल् (ना)	मर्द्
रख् (ना)	रक्ष्

उपसर्ग-युक्त धातुओं के उदाहरण निम्नांकित हैं :

उपज् (ना)	उत् + पद्यते
उग् (ना)	उत् + गम
उतर् (ना)	उत् + तृ
पोछ् (ना)	प्र + उञ्छ्
सौंप् (ना)	सम् + अर्प

(ख) **संस्कृत णिजन्त से आगत धातु**--हिन्दी की वे धातुएँ जो संस्कृत में 'णिजन्त' थी, किन्तु प्रेरणा का भाव खोकर सिद्ध रूप में हिन्दी में आगई हैं, इस वर्ग में रखी जा सकती हैं। यथा--

छा (ना)	छादयति
तपा (ना)	तापयति
मार (ना)	मारयति
जला (ना)	ज्वालयति

(ग) **संस्कृत के तत्सम एवं अर्द्ध तत्सम धातु**--आधुनिक काल में संस्कृत और हिन्दी के पारस्परिक सम्पर्क से संस्कृत की कुछ धातुएँ तत्सम तथा अर्द्ध तत्सम रूपों में हिन्दी में आगई हैं। यथा—

तज्— त्यज्
सेव्— सेव
गरज्— गर्ज

(घ) **संदिग्ध व्युत्पत्ति वाली देशी धातु**—इस वर्ग मे वे धातुएँ आती हैं जिनके सस्कृत रूप नही मिलते तथा अन्य कोई व्युत्पत्ति भी सदिग्ध है। इस प्रकार की कुछ धातुएँ निम्नाकित है

टोक्, ठेल्, पटक्, डपट्, लङ्।

२ **साधित धातुएँ**—इस वर्ग मे वे धातुएँ आती है, जो सस्कृत धातुओ के आधार पर हिन्दी मे विकसित हुई है। यथा—

करवाना	कर् + वा
गढवाना	गढ + वा
लिखवाना	लिख् + वा
पढवाना	पढ् + वा
चढवाना	चढ् + वा
मिट्वाना	मिट् + वा
पिटवाना	पिट् + वा
हरवाना	हर् + वा

इन उदाहरणो मे 'वा' प्रत्यय के योग से नए रूप की साधना की गई है। कही-कही 'वा' के साथ 'ल' का भी आगम हुआ है। यथा—

पीना से	पिलवाना
देना से	दिलवाना
खाना से	खिलवाना

डा० उदयनारायण तिवारी का मत है कि ऐसी क्रियाओ मे 'वा' की उत्पत्ति द्विगुणित णिच् प्रत्यय 'आप्' से निम्नाकित रूप मे हुई है[1]—

आप् + आप् = आवाप = वा

कैलॉग के अनुसार 'ल्' की उत्पत्ति 'पा' धातु मे 'आप्' के स्थान पर 'आल्' जोड कर 'पालय्' णिजन्त रूप बनाने के अनुकरण पर प्राकृत मे हो गई थी और उसी से हिन्दी मे इसका आगमन हूआ। डा० उदयनारायण तिवारी के मतानुसार साधित धातुओ का दूसरा वर्ग नाम धातुओ का है।

---

१ देखिए, हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृष्ठ ४८५

ऐसी धातुएँ सज्ञा तथा विशेषण पदो के तत्सम तथा अर्द्ध तत्सम रूपो से बनी है। यथा—

आलाप से अलापना
लोभ से लुभाना
काम से कमाना
दुख से दुखाना
दुलार से दुलराना
आकुल से अकुलाना

ऐसी कुछ धातुएँ तत्सम शब्दो के तद्भव रूपो से भी बनी है। यथा—

पाश से फाँसना
वातुल से बौराना
व्याख्यान से बखानना
शुष्क से सूखना

तीसरे प्रकार की साधित धातुएँ वे है, जो नामधातुओं के साथ प्रत्यय का योग होने से बनी है। यथा—

आर्त+क्त से अटकना
च्युत+क्त से चूकना
घर्ष+वृत्त से घिसटना

हिन्दी मे चौथे प्रकार की साधित धातुएँ वे है, जिनका अनुकरणात्मक शब्दो से विकास हुआ है। यथा—

फूंकना, थरथराना, कूजना, गूंजना।

हिंदी-क्रिया की विशेषताएँ

१—हिन्दी की क्रियाएँ अकर्मक और सकर्मक दो भेदो मे विभाजित है। प्राय सिद्ध और साधित दोनो प्रकार की धातुएँ अकर्मक और सकर्मक दोनों प्रकार की हो सकती है, किन्तु अधिकाशत सिद्ध धातुएँ अकर्मक होती है।

२—हिन्दी की प्राय' सभी धातुओ के क्रिया-रूप एक ही पद्धति से बनते है। होना, करना, लेना, जाना तथा देना—केवल ये पाँच धातुएँ ऐसी है, जिनके रूप भिन्न प्रकार से बनते है। कुछ उदाहरण देखिए—

लिखना	लिखता है	लिखा
पढना	पढता है	पढा
करना	करता है	किया
देना	देता है	दिया
मारना	मारता है	मारा
देखना	देखता है	देखा
होना	होता है	हुआ
लेना	लेता है	लिया

३--हिन्दी की धातुओ मे लिंग-भेद के अनुसार रूप-परिवर्तन होता है। यथा--

पढना	पढता है	पढती है
जाना	जाता है	जाती है
देना	देगा	देगी
लिखना	लिखेगा	लिखेगी

लिंग-भेद के अनुसार क्रिया का रूप-परिवर्तन संस्कृत-कृदन्त के अनुकरण पर विकसित हुआ है।

४--हिन्दी की धातुओ मे वचन के अनुसार भी रूप-भेद हो जाता है। यथा--

करना	करता है	करते हैं
लिखना	लिखता है	लिखते हैं
दौडना	दौडता है	दौडते हैं

५--पुरुष-भेद के अनुसार भी हिन्दी-क्रिया के रूप मे अन्तर आ जाता है। यथा--

प्रथम पु०--वह जाता है।

मध्यम पु०--तुम जाते हो।

उत्तम पु०--मैं जाता हूँ।

६--हिन्दी की धातु मे प्रत्येक काल मे प्राय. सहायक क्रिया लगती है। यथा--वर्तमान् काल मे--है, हूँ, हो

क--वह जाता है।

ख--मैं जाता हूँ।

ग--तुम जाते हो।

भविष्य काल मे--गा, गे

ख——मैं जाऊँगा।

ग——तुम जाओगे।

भूत काल में——था, थे

क——वह जाता था।

ख——मैं जाता था।

ग——तुम जाते थे।

७——हिन्दी-क्रिया का वाच्य बनाने का ढग आधुनिक युग का उसका निजी विकास है। प्राय कर्मवाच्य बनाने के लिए मूल क्रिया के भूतकाल के कृदन्त रूपों में जाना धातु के आवश्यक रूप का योग कर देते हैं। यथा——

पढा जाय, लिखा जाय

पढी गई, लिखी गई

पढी जाएगी, लिखी जाएगी

पढी जाती है, लिखी जाती है।

८——हिन्दी में सयुक्त क्रिया का भी मौलिक विकास हुआ है। सस्कृत में क्रिया से जो काम प्रत्यय लगाकर लिया जाता था, हिन्दी में वह काम सयुक्त क्रियाओं से लिया जाता है। ऐसी क्रियाएँ हिन्दी में बहुत हैं। यथा——

फेक देना, फाड डालना, लिख लेना, खा चुकना, पढ चुकना, ले जाना, गा देना, सो जाना, खेल करना आदि।

हिन्दी सहायक क्रिया के मुख्य रूप

पीछे हम यह बात कह आए हैं कि हिन्दी की सभी क्रियाओं में प्राय: सहायक क्रिया लगती है। इसकी सहायता से क्रिया के कालों का भेद प्रकट किया जाता है। 'होना' सहायक क्रिया का वह मूल रूप है, जिससे उसके निम्नाकित मुख्य रूप निष्पन्न होते हैं ——

वर्तमान् काल

	ए० व०	ब० व०
उ० पु०	हूँ	हैं
म० पु०	है	हो
अ० पु०	है	हैं

भूतकाल

	ए० व०	ब० व०
उ० पु०	था	थे
म० पु०	था	थे
अ० पु०	था	थे

भविष्यकाल

	ए० व०	ब० व०
उ० पु०	होऊँगा, हूँगा	होवेंगे, होंगे
म० पु०	होगा	होगे
अ० पु०	होगा	होंगे

आज्ञा-सूचक वर्तमान् काल

	ए० व०	ब० व०
उ० पु०	होऊँ	हों
म० पु०	हो	होओ
अ० पु०	हो	होवें

सभावनार्थ भूत काल

	ए० ब०	ब० व०
उ० पु०	होता	होते
म० पु०	होता	होते
अ० पु०	होता	होते

सहायक क्रिया की व्युत्पत्ति—हिन्दी की 'होना' सहायक क्रिया के पूर्वोक्त रूप एक मूल से निर्मित होने पर भी उनकी व्युत्पत्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से है। यथा—

हूँ	अस्मि से	अम्हि	हूँ।
है	अस्ति से	अत्थि	है।
था	स्थित से	थाइ	था।
गा	गम् के 'गत' से	गदो	गा।

अन्य सहायक क्रिया-रूप इन्हीं रूपों से विकसित हुए हैं।

हिन्दी-क्रिया के काल और सस्कृत कालों से उनका सम्बन्ध—

हिन्दी-क्रिया के मुख्य काल तीन हैं —

१ वर्तमान् काल

२. भूत काल

३ भविष्य काल

ये तीन काल निश्चय, आज्ञा तथा सभावना और व्यापार की पूर्णता, अपूर्णता आदि के आधार पर १६ प्रकार के रूपो मे क्रिया को परिवर्तित करते हैं। वे रूप इस प्रकार हैं —

१	वर्तमान्	अपूर्ण निश्चयार्थी—	तुम खेलते हो।
२	,,	सभावनार्थी	अगर तुम खेले।
३	,,	पूर्ण निश्चयार्थी	तुम खेले हो।
४	,,	आज्ञार्थी	तुम खेलो।
५	,,	अपूर्ण सभावनार्थी	अगर तुम खेलते हो।
६	,,	पूर्ण ,,	अगर तुम खेले हो।
७	भूत	निश्चयार्थी	तुम खेले।
८	,,	सभावनार्थी	अगर तुम खेलते।
९		अपूर्ण निश्चयार्थी	तुम खेलते थे।
१०	,,	,, सभावनार्थी	अगर तुम खेलते होते।
११	,,	पूर्ण निश्चयार्थी	तुम खेले थे।
१२	,,	,, सभावनार्थी	अगर तुम खेले होते।
१३	भविष्य	निश्चयार्थी	तुम खेलोगे।
१४	,,	आज्ञार्थी	तुम खेलना।
१५	,,	अपूर्ण निश्चयार्थी—	तुम खेलते होगे।
१६	,,	पूर्ण ,,	तुम खेले होगे।

इन कालों में से कुछ काल तो सस्कृत के कालो का अवशेष हैं और कुछ काल सस्कृत कृदन्तो से बने हैं। वर्तमान् सभावनार्थी तथा आज्ञार्थी काल प्रथम प्रकार के हैं तथा भूत निश्चयार्थी, भूत सभावनार्थी एव भविष्य आज्ञार्थी द्वितीय कोटि मे आते हैं। तीसरे प्रकार के वे शेष काल हैं, जो सस्कृत कालो का अवशेष न होकर आधुनिक काल मे ही विकसित हुए हैं। ऐसे कालो की क्रियाएँ कृदन्त तथा सहायक क्रिया के योग से बनी है।

ग्रियर्सन ने सस्कृत से सम्बन्धित हिन्दी कालो के क्रिया-रूपो की निम्नाकित प्रकार से व्युत्पत्ति दी है —

चलूं	चलामि	चलऊँ	चलूं।
चले.	चलसि	चलहि	चले।
चले	चलाम	चलामो	चले।

चलो	चलथ	चलह्	चलो।
चले	चलन्ति	चलहिं	चले।
चलूं	चलानि	चलमु	चलूं।
चल	चल	चलसु	चल।
चले	चलतु	चलहु	चले।
चले	चलाम	चलामो	चले।
चलो	चलत	चलह्	चलो।

इन रूपो मे 'चले', 'चले', 'चलो' आदि की व्युत्पत्ति एकाधिक वार आज्ञा, सभावना आदि के अनुसार बनने वाले रूपो की दो गई है। डा० ग्रियर्सन ने हिन्दी मे ये शब्द रूप मे समान होते हुए भी भिन्न-भिन्न सस्कृत शब्दो से उत्पन्न माने है।

हिन्दो की भूतकालिक क्रिया के कुछ रूप प्रा० आ० भा० के भूतकालिक कृदन्त रूप से निष्पन्न सिद्ध किए गए हैं। यथा--

चला	चलित	चलिओ	चला
चलतो	चलन्त् (चल्+अन्त)	चलतो	चलता
होता	भवन्	होन्तो	होता

खडी बोली हिन्दी की भविष्यकालिक क्रिया के रूपो का स्वतत्र विकास हुआ है। किन्तु उसकी ब्रज, कन्नौजी आदि बोलियो मे सस्कृत भविष्यकालिक क्रिया के अवशेष मिल जाते हैं। यथा--

ब्रज	**प्राकृत**	**सस्कृत**
चलिहौ	चलिस्सामि	चलिष्यामि
चलिहै	चलिस्ससि	चलिष्यसि
चलिहैं	चलिस्सामो	चलिष्याम

कृदन्ती रूप

धातु मे जिस प्रत्यय को जोड कर सज्ञा, विशेषण या अव्यय वनाया जाता है, उसको 'कृत्' प्रत्यय कहा जाता है। उस प्रत्यय से जो शब्द 'बनता' है, उसको कृदन्त कहते हैं। कृदन्त का अर्थ है—कृत्+अन्त अर्थात् जिसके अन्त में कृत प्रत्यय हो। उदाहरण के लिए 'कर्तृ' शब्द को लें। यह शब्द 'कृ' (करना) धातु मे 'तृच्' प्रत्यय के योग से कृ+तृ=कर्तृ वना है। अत 'कर्तृ' को कृदन्त रूप माना जाएगा। इस प्रकार क्रिया के कृदन्त रूप सज्ञा,

विशेषण तथा अव्यय बन जाते हैं। जो कृदन्त संज्ञा या विशेषण होते हैं, उनके रूप परिवर्तित होते हैं, किन्तु जो कृदन्त अव्यय होते हैं, वे एक-रूप रहते हैं। कभी-कभी कृदन्तों से क्रिया का भी काम लिया जाता है। उदाहरणार्थ, 'गत' कृदन्त विशेषण है, किन्तु इससे क्रिया का भी काम लिया जाता है।

संस्कृत के अनुकरण पर हिन्दी में भी कृदन्ती रूपों का विकास हुआ। खड़ी बोली हिन्दी में इस प्रकार के रूप वर्तमान् तथा भूतकालिक दोनों में पाए जाते हैं तथा काल-रचना में सहायक होते हैं।

खड़ी बोली के वर्तमान् कालिक कृदन्ती रूप—वर्तमान् कालिक कृदन्ती रूप खड़ी बोली में धातु के अन्त में 'ता' प्रत्यय लगाने से बनते हैं। यथा—

चल् से   चलता आदमी
बह् से   बहता पानी

खड़ी बोली के वर्तमान् कालिक कृदन्त रूपों की उत्पत्ति संस्कृत वर्तमान् कालिक कृदन्त के अन्त (शतृ प्रत्यय) वाले रूपों से बताई जाती है। यथा—

संस्कृत   पचन्
प्राकृत   पचतो
हिन्दी   पचता

उड़ती चिड़िया, बहता नाला, फिरता जोगी इसी प्रकार संस्कृत से बने हैं।

हिन्दी की वर्तमान् काल की क्रिया में ये कृदन्त रूप अधिकतर लगते हैं। यथा—

वह चलता है।

इस वाक्य में 'चलता' कृदन्त रूप है, जो 'है' सहायक क्रिया के साथ लगकर क्रिया का काम देता है। हिन्दी की अधिकांश क्रियाएँ कृदन्त हैं।

भूतकालिक कृदन्ती रूप—हिन्दी में भूतकालिक कृदन्त के रूप 'आ' (पुल्लिंग) तथा 'ई' (स्त्रीलिंग) प्रत्ययों के योग से बनते हैं। यथा—

सुनना से—सुना (हुआ) समाचार
पढ़ना से—पढ़ा (हुआ) पाठ
देखना से—देखा (हुआ) दृश्य
भरना से—भरा थाल
गिरना से—गिरा पत्ता

ये कृदन्ती रूप विशेषण के रूप मे आए हैं। इस कृदन्त रूप की व्युत्पत्ति सस्कृत के कर्मवाचक कृदन्त के त, इत, (क्त) प्रत्यय वाले रूपो से हुई है। यथा—

सस्कृत	कृत
प्राकृत	करिओ
हिन्दी	करा

हिन्दी-क्रिया मे भूतकालिक कृदन्ती रूप भी बहुत अधिक पाए जाते है। यथा—

(१) देखा गया।
(२) सुना गया।
(३) लिखा गया।
(४) पढा गया।

भूतकालिक कृदन्ती रूपो मे लिंग-भेद के लिए आकारान्त से ईकारान्त हो जाता है। यथा—

(१) देखी गई।
(२) सुनी गई।
(३) लिखी गई।
(४) पढी गई।

द्वैत कृदन्ती रूप—हिन्दी मे क्रिया के पूर्वकालिक रूपो का द्वित्व भी किया जाता है। अत द्वैत कृदन्त रूप भी हिन्दी-क्रिया मे बहुत मिलते हैं। उदाहरणार्थ—

उडना से— उडते-उडते
जाना से— जाते-जाते
पढना से— पढते-पढते

पूर्वकालिक कृदन्त सयुक्त क्रियाओ मे भी मिलते है। यथा—

(१) फेक देना।
(२) फाड डालना।
(३) जा सकना।
(४) खा चुकना।

(५) पढ़ा करना

(६) खेला करना।

संयुक्त क्रियाओं में भूतकालिक तथा भूतकालिक कृदन्त-युक्त रूप भी मिलते हैं। यथा—

(१) जाती रहना, जाते रहना आदि।

(२) गाती रहना, गाते रहना आदि।

(३) घटती जाती थी।

(४) बढ़ती जाती थी।

———

२० | हिन्दी के अव्यय, उपसर्ग एवं प्रत्यय

अ—अव्यय

प्राचीन आर्य भाषा मे संज्ञा तथा सर्वनाम शब्दो के अन्त मे तद्धित प्रत्ययो के योग से अव्यय बन जाते थे। मध्यकालीन भा० आ० भाषाओ मे भी यह प्रवृत्ति चलती रही और वही से हिन्दी मे भी आई। हिन्दी के अधिकाश अव्यय या तो प्राचीन अव्ययो का कोई रूप है या संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण से बने हैं।

प्राचीन अव्यय से निर्मित अव्यय

वर्तमान् रूप	म० प्रा० भा० मे	प्राचीन रूप
आज	अज्ज	अद्य
आगे	अग्गे	अग्रे
कल	कल्ल	कल्यम्
तुरन्त	तुरंति	तुरते
नित	नित्त	नित्यम्
अब	एव्व	एवम्
और	अवर	अपर
बहुत	बहुत्त	बहुत्वम्

संज्ञा से निर्मित अव्यय

हिन्दी	संस्कृत
जी (जी हाँ)	जीव
राम-राम	राम
थू-थू	थूत्कार

सर्वनाम से निर्मित अव्यय

सर्वनाम	अव्यय
कुछ	कुछ-कुछ
कब	कब-कब
इस	ऐसे
किस	कैसे
जिस	जैसे
तिस	तैसे
यह	यों
क्या	क्यों

क्रिया से निर्मित अव्यय

क्रिया	अव्यय
दौड़ना	दौड़कर
उठना	उठकर
पढ़ना	पढ़कर

कारकों के रूप में प्रयुक्त अव्यय

अव्यय	कारक
प्रति	कर्म
द्वारा	करण
कारण	,,
मारे	,,
निमित्त	सम्प्रदान
हेतु	,,
वास्ते	,,
अपेक्षा	अपादान
आगे	,,
साथ	अपादान
मध्य	अधिकरण
बीच	,,
भीतर	,,
ऊपर	,,
पास	,,

अव्यय के भेद

हिन्दी-अव्ययो को कामताप्रसाद गुरु ने चार भेदो मे विभाजित किया है—

१ क्रिया-विशेषण अव्यय
२ समुच्चय बोधक अव्यय
३ विस्मयादि बोधक अव्यय
४ सम्बन्ध-सूचक अव्यय

१. क्रिया-विशेषण अव्यय

हिन्दी मे क्रिया-विशेषण अव्यय तीन प्रकार के पाए जाते है—

क—सस्कृत के तत्सम अव्यय
ख—तत्सम अव्ययो से विकसित तद्भव अव्यय
ग—विदेशी अव्यय

(क) प्रथम प्रकार के क्रिया-विशेषण अव्ययो का कोई इतिहास नही है, क्योकि उनमे परिवर्तन नही हुआ है। इस प्रकार के कुछ अव्यय निम्नाकित हैं—

अकस्मात्, पश्चात्, प्राय , बहुधा, अत , अस्तु, वृथा, सम्प्रति, कदाचित् ।

(ख) द्वितीय प्रकार के क्रिया-विशेषण अव्यय सस्कृत के विभिन्न शब्दों से म० भा० आ० भा० मे परिवर्तित होकर आए हैं ।

यथा—

हिन्दी	म० आ० भा०	संस्कृत
भीतर	अब्भन्तर	अभ्यन्तर
बाहर	बाहिरो	बहि.
परसो	परस्स	पर श्वस्

तृतीय प्रकार के क्रिया-विशेषण अव्यय विदेशी भाषाओ से हिन्दी मे आए हैं। यथा—

हमेशा, जल्दी, जरूर, फौरन् ।

२. समुच्चय बोधक अव्यय

और, तो, चाहे, कि, भो आदि समुच्चय बोधक अव्यय शब्द हैं। इनकी व्युत्पत्ति इस प्रकार मानी जाती है .—

हिन्दी	म० भा० आ० भा०	संस्कृत
और	अवर	अपर

तो	अतो	तत
चाहे	चाहइ	चक्षते
कि	कि	कि
भी	विहि	अपि हि

वा, अथवा, किन्तु तथा परन्तु, एव, तथा भी समुच्चय बोधक अव्यय हैं, पर ये हिन्दी मे तत्सम रूप मे ही पाए जाते हैं।

३. विस्मयादि बोधक अव्यय

ऐसे शब्दो की सख्या अधिक नही है। ये तत्सम, तद्भव तथा विदेशी तीनो रूपो म पाए जाते हैं। कुछ विस्मयादि बोधक अव्यय इस प्रकार हैं —

शब्द	व्युत्पत्ति
दुहाई	दो+हाय
शाबाश	फारसी मे शादबाश
थू-थू	प्रा० मे थू—स० मे थत्कार
आह	सस्कृत 'आ' से
ओहो	सस्कृत—अहो+ओ

४—सम्बन्ध बोधक अव्यय

इन अव्ययो का प्राय कारक-चिह्नो के समान प्रयोग होता है। प्रति, कारण, द्वार, मारे, निमित्त, हेतु इसी प्रकार के अव्यय हैं, जिनकी व्युत्पत्ति हम पीछे बता आए हैं।

सम्बन्ध बोधक अव्यय भी तत्सम, तद्भव तथा विदेशी तीनो प्रकार के मिलते हैं। अनन्तर, पश्चात्, अतिरिक्त, तुल्य आदि तत्सम रूप मे हैं। पीछे, नीचे, बाहर, सा, ऐसा आदि तद्भव होकर बने हैं। बाद, खातिर, निस्बत, बगैर, खिलाफ, लायक आदि अव्यय विदेशी भाषाओ से हिन्दी मे आए हैं।

ब—उपसर्ग और प्रत्यय

शब्द-रचना मे जो शब्दाश प्रारम्भ मे जुडता है, उसे उपसर्ग कहते हैं और जो अश बाद मे जुडता है, उसे प्रत्यय कहते हैं। प्रत्यय के पश्चात् शब्द के वाक्य-गत सम्बन्ध को प्रकट करने के लिए कारक-चिह्न या परसर्ग का योग किया जाता है।

उपसर्ग—हिन्दी मे निम्नाकित तीन प्रकार के उपसर्ग मिलते हैं—

१ तत्सम उपसर्ग

२ तद्‌भव उपसर्ग

३ विदेशी उपसर्ग

१—**तत्सम उपसर्ग**—वे उपसर्ग जो सस्कृत से हिन्दी मे शुद्ध शब्दों के साथ शुद्ध रूप मे चले आए है, तत्सम उपसर्ग कहलाते हैं। ऐसे उपसर्गों की सख्या अधिक नही है।

२—**तद्‌भव उपसर्ग**—वे उपसर्ग है, जो या तो प्राचीन या मध्यकालीन आर्य-भाषा के तत्सम उपसर्गों से तद्‌भव होकर बने है या जिनको लोक-भाषा से ग्रहण किया गया है।

३—**विदेशी उपसर्ग**—विदेशी भाषाओ का सम्पर्क बढने से जो उपसर्ग हिन्दी मे आ गए है, उन्हे विदेशी उपसर्ग कह सकते हैं।

व्युत्पत्ति

१—तत्सम उपसर्गों की व्युत्पत्ति का कोई विशेष इतिहास नही, है क्योंकि उनके रूप मे विकार उत्पन्न नही हुआ।

२—तद्‌भव उपसर्गों की व्युत्पत्ति का इतिहास इस प्रकार है —

उपसर्ग	प्राचीन रूप	शब्दो में प्रयोग
अ	अ	अथाह
		अजान
अन	अन्	अनगिनती
		अनजान
अति	अति	अत्यन्त (अति+अत)
		अति-भार
अध	अर्द्ध	अधबीच
		अधमरा
		अधकचरा
उन	ऊन	उन्तीस
		उन्तालीस
औ	अव	औगुन
दु	दुर्	दुबला
दु	द्वी	दुधारा
नि	निर्	निडर
		निबल

बिन	बिना	बिन ब्याहा
भर	भृ	भर-पेट
		भरसक
सु	सु	सुडौल
		सुजान

३--विदेशी उपसर्ग--अरबी-फारसी आदि भाषाओं के जो उपसर्ग हिन्दी में आ गए हैं, उनके कुछ उदाहरण मय व्युत्पत्ति के यहाँ दिए जाते हैं --

विदेशी उपसर्ग	विदेशी मूल रूप	प्रयोग
कम्	कम	कमजोर
खुश	खुश	खुशदिल
		खुशहाल
हर	हर	हरघडी
		हररोज
दर	दर	दरसल
ना	ना	नापसद
ब	बद	बदमाश,
		बदनसीब
बे	बे	बेईमान
		बेशरम
बिला	बिला	बिलाशक
बे	बे	बेईमान
ला	ला	लाजवाब
		लावारिश
सर	सर	सरपच
हम	हम	हमदर्दी

अरबी-फारसी के अलावा अँगरेजी के भी कुछ प्रत्यय हिन्दी के प्रयोग में आने लगे हैं। यथा--

हैड	हैडपण्डित
	हैडक्लर्क
सब्	सब्डिप्टी
हाफ	हाफ सिटी

प्रत्यय

उपसर्गों के समान 'प्रत्ययों' को भी हम तत्सम, तद्भव तथा विदेशी प्रत्ययों के तीन भेदों में विभाजित कर सकते हैं। यहाँ तद्भव तथा विदेशी प्रत्ययों की व्युत्पत्ति पर विचार किया जाता है —

प्रत्यय	प्राचीन रूप	तभद्व प्रत्यय	उदाहरण
अ	अ, आ, अम्		चकोर से चकोर वार्ता से बात गृहम् से घर
अता, अती	अन्त्		बहना से बहता बढना से बढती
अक्कड			पीना से पियक्कड भूलना से भुलक्कड
अन्, न्	अन्		ज्वल् से जलन लेना से लेन, देना से देन
अन्त	अन्त्		गढना से गढन्त रटना से रटन्त
अ	आक (वैदिक)		मरना से मरा घेरना से घेरा छलना से छला जलना से जला
आइ, आई	(आप्+इका से उत्पन्न) (ताति-ताइ-आइ-आई के क्रम से उत्पन्न)		कमाना से कमाई पढाना से पढाई लिखना से लिखाई जडना से जडाई
आऊ	(णिच्+आप्+उक से उत्पन्न)		बिकना से बिकाऊ उडना से उडाऊ उठना से उठाऊ
आक, आका	('आपक से उत्पन्न)		तैरना से तैराक लडना से लडाका
आडी	(कारी-आरी-आडी के क्रम से उत्पन्न)		खेलना से खिलाडी

आन	(णिच्+आपन से उत्पन्न)	मिलाना से मिलान उठाना से उठान
आप	(आत्मन् से उत्पन्न)	मिलना से मिलाप
आर	('कार' से उत्पन्न)	स्वर्णकार से सुनार चर्मकार से चमार
आरा	(आर मे आ के योग से उत्पन्न)	निवटना से निवटारा छूटना से छुटकारा
आपा	आप्	पुजापा
आल्	आलय से उत्पन्न	श्वसुरालय से ससुराल
आलू	'आलु'	झगडालू
आव आवा	('णिच्+आप+अ+क' से उत्पन्न)	चढाव (चढना) झुकाव (झुकना) भुलावा (भुलाना) पहिरावा (पहिरना)
आवट	'आप्+वृत्ति' से उत्पन्न	सजावट (सजाना) लिखावट (लिखना)
आस	('आप्+वश' से उत्पन्न)	मुतास (मूतना से) प्यास (पीना से)
आहट	(बीम्स के अनुसार 'आतु' या अतु से उत्पन्न)	चिकनाहट (चिकना) चिल्लाहट (चिल्लाना)
आवना	(आप्+न्+आ से उत्पन्न--डा० उ० ना० तिवारी)	सुहावना (सुहाना) डरावना (डरना)
आली	अवली	दिवाली (दीपावली)
इया	(इय या इक से उत्पन्न)	कन्नौज से कनोजिया पहाड से पहाडिया
इयल	(इय के इया रूप से उत्पन्न)	सडियल (सडना से) मरियल (मरना से)
इन आइन	('आनी' से विगड कर बना है)	धोविन (धोबी से) पण्डिताइन (पडित से)
ई	(इन्, ईय, इक आदि कई प्रत्यय विगड कर ई बने--डा० धीरेन्द्र वर्मा)	देशी (देशीय) माली (मालिन) तेली (तैलिक)

उआ	(उक, इक से उत्पन्न)	खरुआ (क्षारुक) गेरुआ (गैरिक)
ऊ	(उक से उत्पन्न)	खाऊ (खाना से) चालू (चलना से)
एल एला ऐला	(इनकी उत्पत्ति 'इल' से मानी जाती है)	फूल से फुलेल एक से अकेला बन से बनैला
एरा	(इसकी उत्पत्ति डा० तिवारी ने अ+कर तथा अ+तर से दो रूपो मे मानी है)	(१) अ+कर=चित्र+कर चितेरा (२) अ+तर=घन+तर=घनेरा
ज जा जी	जात	भानेज, भतीजा भतीजी
ट	वर्त	झपट, कपट
त	त्व	रगत
ता	'त्व'	ममता
	अत्	खाता
न, ना, नी	(हार्नली के अनुसार 'अनीय' से उत्पन्न)	चलन छलना होनी
पन	त्वन	कालापन
री	रूप से— (चटर्जी)	गठरी
ल ला ली	'इल' से—(बीम्स)	पायल हठीला गठीली
वाला	'पाल' से—(हार्नली)	गोपाल से ग्वाला
वैया	'तव्य+इ' से—(हार्नली)	खिवैया (खेना से)
स सा सी	'सदृश' से (हार्नली)	आपस वैसा वैसी
सरा	'सृ' से—(चटर्जी)	दूसरा, तीसरा

हर	'प्रा० ह्+स० र' से—(डा० तिवारी)	पीहर
हरा	'हार' से उत्पन्न	रुपहरा, इकहरा
हारा	'हारक' से उत्पन्न (डा० उ० ना० तिवारी)	लकड़हारा

इन तद्भव प्रत्ययो के अतिरिक्त कतिपय ऐसे तद्भव प्रत्यय भी मिलते है जिनकी व्युत्पत्ति सदिग्ध है। यथा—

ड	खिलवाड
डी	पिछाडी
डा	अखाडा
	नगाडा
	बछड़ा
ऐत	डकैत
	लडैत
ओड	हँसोड
ओडा	हथौडा
	मगौडा
औवल	बुझौवल
व	अब्र
हा	पनिहा
	—आदि।

विदेशी प्रत्यय

हिन्दी मे अरबी-फारसी से कई प्रत्यय आ गए है। डा० उदयनारायण तिवारी एव डा० चटर्जी ने ऐसे प्रत्ययो पर पर्याप्त् विचार किया है। कतिपय प्रमुख प्रत्यय यहाँ प्रस्तुत किए जाते है—

प्रत्यय	विदेशी रूप	उदाहरण
आना	आन.	जुर्माना
		सालाना
खाना	खान.	दवाखाना
		डाकखाना
		मवेशीखाना

ई	ई	दोस्ती (दोस्त से)
		मस्ती (मस्त से)
खोर	खोर	घूसखोर
		चुगलखोर
गर	गर	सौदागर
		जादूगर
गीरी	गर	कुलीगीरी
चा	चा (तुर्की)	बगीचा
ची	ची (फारसी)	मसालची
दार	दार	ईमानदार
		थानेदार
दान	दान	कलमदान
नवीस	नवीस	नकलनवीस
बाज	बाज	दगाबाज
वान	वान	दरवान
		गाड़ीवान
बद	बन्द	कमरबद
		बिस्तरबन्द

हिन्दी शब्द-समूह तथा उसके प्रधान उद्गम | २१

हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति पर विचार करते समय हम यह बता चुके हैं कि वह भारत की भाषा-परम्परा का सबसे महत्वपूर्ण वर्तमान् रूप है। आज वह देश की राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकृत होकर उसी महत्व का उद्घोष कर रही है। उसको इतना गौरव मिलने का कारण उसकी व्यापकता पर निर्भर है। भारत की कोई अन्य भाषा अभी तक अपने भीतर वह प्रवृत्ति हिन्दी के समान नहीं अपना सकी, जिस प्रवृत्ति से किसी भाषा का क्षेत्र व्यापक बनता है। अँगरेजी को एक लघु द्वीप की भाषा होने पर भी अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्राप्त हुआ, इसका कारण ही यह है कि उसमें अपना क्षेत्र व्यापक बनाने की अपूर्व क्षमता है। हिन्दी ने भी अपने अन्दर उस क्षमता का धीरे-धीरे विकास किया है। वह क्षमता प्रत्येक भाषा के शब्द-समूह पर निर्भर होती है। जो भाषा अपना शब्द-कोष जितना अधिक बढा लेती है, वह उतना ही अधिक अपना क्षेत्र भी व्यापक बना सकती है। भारत की अधिकांश भाषाएँ शब्द-कोष की वृद्धि के लिए उतनी अधिक उदार एवं सचेत नहीं हैं, जितनी उदार और सचेत हिन्दी भाषा है। इसी गुण के फलस्वरूप उसका शब्द-कोष दिन-प्रतिदिन बढता जा रहा है। यह प्रक्रिया किसी भी भाषा का दोष नहीं, गौरव ही है।

हिन्दी-शब्द-समूह का वर्गीकरण—हिन्दी में अब तक अनेक शब्द विभिन्न स्रोतों से (देश और विदेश की भाषाओं से) अपनाए गए हैं। अत सामान्यत हम उसके शब्द-समूह को निम्नांकित प्रमुख वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

१—तत्सम शब्द—ये वे शब्द हैं जो संस्कृत भाषा से ज्यों के त्यों अर्थात् बिना किसी परिवर्तन के स्वीकार किए गए हैं। उदाहरणार्थ, प्रकाश, गृह, आन्तरिक, शैशव, पुष्प, जलाशय आदि शब्द हिन्दी में संस्कृत से ज्यों के त्यों ग्रहण कर लिए गए हैं।

२—**तद्भव शब्द**—इस वर्ग मे वे शब्द आते हैं, जो सस्कृत से लिए गए हैं, किन्तु उनका मूल रूप सुरक्षित नही रह सका अर्थात् उनके अन्दर ध्वनि, रूप आदि सम्बन्धी परिवर्तन हो गया है। उदाहरण के लिए घर (गृह), पत्ता, (पत्र), मोती (मुक्ता), पूत (पुत्र) आदि शब्द सस्कृत से आए हैं, पर उनके रूप मे परिवर्तन हो गया है।

३—**विदेशी शब्द**—विदेशी भाषाओ से भी हिन्दी ने अनेक शब्द ग्रहण किए हैं। य दोनो प्रकार के शब्द हैं, जो या तो तद्भव होकर आए हैं और हिन्दी की प्रकृति से शासित हो गए हैं या जिनको शिक्षित समुदाय की भाषा मे अपना मूल रूप सुरक्षित रखने का अवसर मिल गया है। उदाहरणार्थ—

तद्भव विदेशी शब्द

अँगरेजी—लालटेन, कट्रोल, गिलास, अस्पताल।

फारसी—मजूर, आखिर, फरेब, पजा आदि।

अरबी—तबादला, तबला, फर्राश, तबियत आदि।

तुर्की—एलाची, उर्दू आदि।

तत्सम विदेशी शब्द

अँगरेजी—गर्ल, कालेज, स्कूल, मास्टर आदि।

अरबी-फारसी—गुलाम, बदनसीब, खुदा, अल्लाह आदि।

४—**देशज शब्द**—ये वे शब्द हैं, जो स्थानीय प्रयोग मे स्वत उत्पन्न हो गए हैं। ऐसे शब्दो का मूल स्रोत अधिक महत्व नही रखता। इन्हे देशज विशेषताओ से युक्त होने के कारण देशी कहा जाता है। यथा—

थोथा, ठर्रा, हुल्लड आदि।

५—**स्वकीय शब्द**—पूर्वोक्त चार प्रकार के शब्दो की कुछ सीमाएँ हैं। वे इधर-उधर से आकर हिन्दी की सम्पत्ति बने हैं। किन्तु कोई भी भाषा इन शब्दो पर तब तक गर्व नही कर सकती, जब तक वह उन्हे पचाकर स्वकीयता प्रदान न करे। ऐसे शब्दो को जिनका निर्माण हिन्दी ने स्वय किया है, हम स्वकीय शब्द कह सकते हैं। इन शब्दो के निर्माण मे तत्सम, तद्भव, विदेशी तथा देशज—सब प्रकार के शब्दो का अस्तित्व समा गया है, किन्तु नए रूप मे वे किसी अन्य भाषा के न होकर हिन्दी के अपने शब्द बन गए हैं। प्रत्येक भाषा मे इस प्रकार के शब्दो का सबसे अधिक महत्व होता है। हिन्दी मे भी उनकी सख्या कम

नहीं है। कुछ शब्द उदाहरण स्वरूप देखिए --

टहल, टहलना, कमाई, कचहरी, कसक, सकुचाना, थैला, थाली, लोटा, सदूक, गाडी आदि।

६--**भारतीय भाषाओ के शब्द**--हिन्दी मे भारत की अन्य भाषाओ से भी शब्दो का आदान-प्रदान हुआ है। इस प्रकार हिन्दी के शब्द-समूह मे अनेक शब्द सम्मिलित हो गए हैं। यथा--

मुडा भाषा से--कौडी, गोडा आदि।

द्रविड भाषाओ से--पिल्ला, मीन, नीर आदि।

मराठी से--चलतू, टिकाऊ आदि।

बँगला से--गल्प, उपन्यास आदि।

७--**मिश्रित शब्द**--हिन्दी मे कुछ शब्द ऐसे भी हैं, जो दो भिन्न भाषाओ के मिश्रित अशो से बने हैं। ऐसे शब्दो मे दो प्रकार के मिश्रण मिलते हैं। प्रथम प्रकार का मिश्रण देशी और विदेशी का है। यथा--

रेलगाडी, डाकघर, चिडियाखाना, दलबदी, अजायबघर आदि।

कुछ शब्द ऐसे हैं, जो दो विदेशी भाषाओ के मिश्रण का परिणाम हैं। यथा--

अर्जीनवीस=अर्जी (अरबी)+नवीस (फारसी)

जमाबदी =जमा (अरबी)+बदी (फारसी)

८--**ध्वन्यात्मक स्वकीय शब्द**--हिन्दी मे कुछ शब्द ऐसे भी है, जो ध्वनि के आधार पर बन गए हैं। यथा--

कलमल, कलमलाना, खरभराना, गरगराना, भडभडाना, तडतडाना, गडगडाना आदि।

१. **सस्कृतियो का मेल**--प्रत्येक भाषा मे सभ्यता की वृद्धि के साथ-साथ नए-नए शब्दो का आगम, निर्माण एव विकास होता रहता है। अनेक शब्द उन भाषाओ से आ जाते हैं, जिनके बोलने वाले लोगो की सभ्यता किसी देश मे आती है। भारत मे भी हिन्दी-शब्द-समूह मे वृद्धि का यह बहुत बडा कारण है। मुसलमानो की सभ्यता जब उनके शासन के साथ यहाँ आई तो अनेक शब्द हिन्दी मे सम्मिलित हो गए। आधुनिक युग मे अँगरेजी के आगमन के साथ अँगरेजी सस्कृति से भारतीय सस्कृति का मेल हुआ, फलत अनेक अँगरेजी शब्द हिन्दी मे आ गए।

२. **ज्ञान का प्रसार**--हिन्दी-शब्द-समूह मे वृद्धि का दूसरा सबसे बडा कारण ज्ञान का प्रसार है। ज्यो-ज्यो भारतीय समाज ज्ञान के विभिन्न नए

क्षेत्रो मे प्रवेश करता गया, त्यों-त्यो नवीन शब्दावली से उसका परिचय हुआ। फलत विज्ञान, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि विभिन्न विषयो से सम्बन्ध रखने वाले अनेक शब्द हिन्दी मे आ गए। कुछ शब्द आवश्यकता के अनुसार प्राचीन भारतीय साहित्य से भी खोज कर अपनाए गए। साथ ही अनेक शब्दो की नव-रचना भी हुई। डा० रघुवीर ने इस प्रकार की एक बृहत् शब्दावली का सचय और निर्माण कर हिन्दी-शब्द-समूह को बढाया है।

३. **सामाजिक परिवर्तन**--समाज मे समय-समय पर जो परिवर्तन होते रहते है, उनके कारण भी नई शब्दावली का ग्रहण और निर्माण होता रहता है। कभी-कभी विदेशी और देशी शब्दो को नए अर्थ भी दिए जाते है। हिन्दी मे भी ऐसा ही हुआ है। सामाजिक जीवन की प्रथाओ और रीति-रिवाजो के अनुसार अनेक नए शब्द हिन्दी मे बढ गए है।

४. **लोक-साहित्य**--हिन्दी के शब्द-समूह मे वृद्धि का चौथा कारण यह है कि गत कई वर्षों से हिन्दी के विद्वान् लोक-साहित्य का अनुसधान और अध्ययन करने मे रुचि दिखा रहे है। लोक-साहित्य के प्रति हमारी अभिरुचि इतनी बढ गई है कि सहज मे हम विभिन्न बोलियो की शब्दावली से परिचित होते जा रहे है। साहित्य-रचना मे बोलियो के शब्दो का ग्रहण होने से जनता मे उनका प्रचार बढ गया है। अत वे शब्द स्थानीय सकीर्णता त्याग कर हिन्दी की सम्पत्ति बन गए है।

५. **देशी भाषाओ का सम्पर्क**--हिन्दी-शब्द-समूह मे वृद्धि का अन्य कारण भारतीय भाषाओ के साहित्यक आदान को माना जा सकता है। बँगला, मराठी, गुजराती, तमिल आदि विभिन्न भाषाओ की रचनाए हिन्दी मे अनूदित हो रही है। फलत साहित्यकार उन भाषाओ की शब्दावली से परिचित होते जा रहे है। ऐसे शब्दो का व्यापक प्रसार भी होने लगा हे।

पूर्वोक्त विभिन्न कारणो से हिन्दी मे इस प्रकार के शब्दो की वृद्धि हुई है —

राजनैतिक शब्द

प्रजातत्र, लोकतत्र, जनसत्ता, लोकशाही, डेमोक्रेसी, जनवादी, प्रजातात्रिक, गणतत्र, कांग्रेस, पार्टी, सोसलिस्ट, कम्यूनिस्ट, किंग, एम्परर, कलक्टर, तह-

सीलदार, मेम्बर, एसेम्बली, स्पीकर, मिनिस्टर, राज्यपाल, गवर्नर, सेक्रेट्री, जज, वकील, मजिस्ट्रेट, जेल, जिला, ब्लीक, बी० डी० ओ०, वोट, इलेक्शन, रिट, पिटीशन आदि।

ये ऐसे शब्द हैं, जो अँगरेजी, अरबी, फारसी आदि भाषाएँ न जानने वाले लोगो की हिन्दी मे भी स्थान पा गए हैं।

सामाजिक-सांस्कृतिक शब्द

गुसलखाना, दवाखाना, मैरिज, सिस्टर, पाउडर, फ्राक, शेरवानी, पाजामा, पेण्ट, कल्चर, मोहर, मुण्डन, फेटा, ईसाई, फूलदान, गुलदस्ता, सालगिरह, स्नान-गृह, अमन, जग, आजादी, धन्यवाद, क्लब, मैच, पार्टनर, हस्तक्षेप, दवाई, लिटरेचर आदि।

शास्त्रीय शब्द

उपनिवेशवाद, समाजवाद, अन्तर्राष्ट्रियता, व्यापारसघ, अवेक्षक, अध्यात्म-वाद, कलावाद, भाषाविज्ञान, विद्या, टेकनीक, विकेन्द्रीकरण, साहित्यकार, प्रगतिवाद, सविधान, वनस्पतिविज्ञान, भौतिकशास्त्र आदि।

आविष्कार-जन्य शब्द

रेडियो, फोन, इजन, एटम, टेलीविजन, पनडुब्बी, बदूक, राकेट, मोटर, कार, साइकिल आदि।

हिन्दी-शब्द-समूह में ह्रास और उसके कारण—जहाँ हिन्दी-शब्द-समूह मे वृद्धि हुई है, वहाँ उसमे ह्रास भी हुआ है। ह्रास के कारण भी उन्ही कारणो पर आश्रित हैं, जिनके प्रभाव से वृद्धि हुई है। एक ओर तो पूर्वोक्त कारणो से हिन्दी मे नए-नए शब्द बाहर से आए और स्वकीय सम्पत्ति से बढे हैं और दूसरी ओर उनका ह्रास भी हुआ है। ऐसे अधिकाश शब्द वे हैं जिनकी आवश्यकता समाप्त हो गई है। सस्कारो, सामाजिक रीतियो, अनुष्ठानो आदि से सम्बन्ध रखने वाले शब्द उनमे होने वाले परिवर्तनो के साथ घटते-बढते रहे हैं। उदाहरणार्थ प्राचीन काल मे यज्ञ की प्रथा थी, इसलिए उससे सम्बन्धित अनेक शब्द प्रचलित थे। हिन्दी-भाषा मे वे शब्द धीरे-धीरे ह्रास को प्राप्त हो गए, क्योकि यज्ञ की प्रथा मे ह्रास हुआ। अग्रलिखित शब्द इसी प्रकार के हैं—

अवसथिक, आनाय्य, यज्वा, यायजूक, स्थाण्डिल, सुत्या, अभिप्लव, अहीन आदि।

आजकल भी पुराने कुछ रीति-रिवाज तेजी से समाप्त् होते जा रहे हैं। अतः उनसे सम्बन्ध रखने वाले शब्द भी ह्रास को प्राप्त हो रहे हैं। यथा—

कनछेदन, मुडन, सोहरि, भेलीगुर, न्योछावर, छटी, घूँघट आदि।

स्त्रियाँ पहले बहुत आभूषण पहनती थी। इसलिए हिन्दी में अनेक ऐसे शब्द प्रचलित हुए जो विभिन्न आभूषणो के नाम थे, किन्तु अब उन आभूषणो का प्रयोग धीरे-धीरे घटता जा रहा है। अत ऐसे अनेक शब्द भी व्यवहार से उठते जा रहे हैं। यथा—

तुर्रा, खँगोरिया, कठश्री, तिलरी, अनवट, गुलीबद, खौरि, खड्आ, हमेल, नथ आदि।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ वे शब्द भी हिन्दी भाषा से उठते जा रहे हैं, जो सामाजिक जीवन मे अप्रिय या अशोभनीय लगते थे। अश्लील शब्दावली का ह्रास सभ्यता की इसी प्रक्रिया का परिणाम् है। इसी प्रकार अन्धविश्वासो जत्र-मत्र, टोटका आदि से सम्बन्धित अधिकाश शब्द अब व्यवहार मे अधिक नही आते। कुछ शब्द इस प्रकार हैं—

चुडैल, जिन्द, छूमतर आदि।

हिन्दी मे व्यक्तिवाचक सज्ञा-शब्दो में धीरे-धीरे ह्रास हो रहा है। सभ्यता के विकास के साथ कलात्मक अभिरुचि प्रत्येक क्षेत्र मे काम करने लगी है। अत अनेक ऐसे शब्द जो व्यक्तियो और वस्तुओ के नाम थे, त्याग दिए गए हैं। फलत धीरे-धीरे वे हिन्दी से उठते जा रहे हैं। घूरेमल, घोटूमल, छकौडी आदि इसी प्रकार के शब्द हैं।

ह्रास की पूर्ति नए शब्दो से स्वत होती जा रही है। इस प्रकार जिन कारणो से ह्रास हुआ है, उनको भी हिन्दी-शब्द-समूह की वृद्धि मे अप्रत्यक्ष रूप से सहायक होना पडा है। विभिन्न रीति-रिवाजो का स्थान नए रीति-रिवाजो ने लिया है तथा पुराने शब्दो से प्रकट होने वाले भाव बदले हैं और ऐसी स्थिति मे नई शब्दावली या तो गढी गई है या बाह्य साधनो से अपनाई गई है।

शब्द-व्युत्पत्ति

हिन्दी-व्याकरण और उसके विभिन्न रूपो का इतिहास बताते समय हम उदाहरणस्वरूप अनेक शब्दो की व्युत्पत्ति पर विचार कर चुके हैं। यहाँ भाषावैज्ञानिक दृष्टि से कतिपय महत्व-पूर्ण शब्दो की व्युत्पत्ति प्रस्तुत की जाती है —

अनाज—यह 'अन्नाद्य' शब्द से उत्पन्न हुआ है। मध्य व्यजन 'न्' का लोप हुआ है। 'द्' तथा 'य' को मिला कर 'द्य' बना है। स्पर्श तथा अन्तस्थ के योग मे 'द' तृतीय स्थान के तालव्य स्पर्श 'ज्' रूप को प्राप्त हुआ है। इस प्रकार 'अनाज' बन गया है।

अहेर—यह सस्कृत 'आखेट' का तद्भव रूप है। 'आ' ह्रस्व होकर 'अ' बन गया है। 'ख' की महाप्राण ध्वनि विकसित होकर 'ह' बन गई है। 'ट' के स्थान पर 'र' हो जाने से 'अहेर' की उत्पत्ति हुई है।

आज—इसका मूल रूप 'अद्य' था। स्पर्श और अन्तस्थ के योग मे दोनो का लोप होकर य के स्थान पर 'ज' हो गया है तथा आदि स्वर दीर्घ हो गया है। यह शब्द प्राकृत अपभ्रश से होता हुआ निम्नाकित क्रम से वर्तमान् रूप को प्राप्त हुआ है—

सस्कृत— अद्य
प्राकृत— अज्ज
अपभ्रश—अज्ज
हिन्दी— आज

आँवला—इस शब्द की उत्पत्ति 'आमलक' शब्द से हुई है। अनुनासिक मध्य व्यजन 'म्' का लोप होकर पूर्व वर्ण 'आ' अनुनासिक बन गया है तथा 'म्' के स्थान पर 'व' हो गया है। 'क्' व्यजन का लोप होकर उसका अन्तिम स्वर 'अ' 'ल' के 'अ' मे मिल कर दीर्घ हो गया है। इस प्रकार 'आमलक' शब्द नए रूप मे आँवला' बन गया है।

आँख—'अक्षि' शब्द से इसकी उत्पत्ति हुई है। स्पर्श और ऊष्म के सयोग मे 'ऊष्म' के लोप का नियम इस शब्द पर लागू हुआ है। अत 'क्ष' का (क्+ष्) ष् लुप्त हो गया है और 'क' महा प्राण 'ख' हो गया है। सयुक्ताक्षर के लोप से प्रथम वर्ण 'अ' दीर्घ हो गया है। किन्तु अनुनासिकता अनुकरण के आधार पर आई है।

इतवार—आदित्यवार से विगड कर इतवार बना है। आद् का लोप होने से 'इ' बचा तथा 'य' का लोप होने से 'त्' में 'अ' का आगम हुआ। यो आदित्यवार से इतवार बना है।

काज—इसका मूल रूप कार्य है। मध्य व्यजन 'र्' का लोप होने तथा 'य' सवर्गीय वर्ण 'ज्' मे परिवर्तित होने से 'काज' हो गया है।

कुम्हार—'कुम्भकार' शब्द से विगड़ कर बना है। 'भ' का 'ह' हो गया है तथा

मध्य व्यजन 'क' लोप को प्राप्त हुआ है। उसका 'आ' स्वर 'ह' मे आ जुडा है।

कोतवाल—यह शब्द 'कोट्टपाल' से बना है। 'ट्ट' मूर्धन्य ध्वनि 'त' मे परिवर्तित हो गई है। 'प' ओष्ठ्य ध्वनि व मे बदल गई है। इस प्रकार कोट्टपाल से कोतवाल हो गया है।

केवट—केवर्त से उत्पन्न है। 'र्' का लोप होकर दन्त्य 'त' 'ट' मे बदल गया है।

कौड़ी—'कपर्द' से उत्पन्न हुआ है। मध्य 'प' व के रूप मे आ गया है तथा 'अ' एव 'व' के योग से 'औ' की उत्पत्ति हुई है। 'र' और 'द' का सयोग होने से ड हो गया है। अन्त्य स्वर 'अ' 'ई' मे परिवर्तित होकर 'कौडी' हो गया है।

कोइल—मध्य व्यजन 'क' के लोप से 'कोकिल' शब्द कोइल बन गया है।

खाट—इसका मूल रूप 'खट्वा' है। मध्य व्यजन 'व' का लोप हो गया है तथा 'ख' व्यजन मे आगे के वर्ण का सयुक्त रूप नष्ट होने से 'अ' का आगम हुआ है। अन्त्य स्वर 'अ' पूर्व व्यजन के दीर्घ हो जाने के कारण ह्रस्व हो गया है।

खीर—'क्षीर' इसका मूल रूप है। स्पर्श 'क्' तथा ऊष्म ष्' के योग मे ऊष्म 'ष्' का लोप हो गया है तथा अल्पप्राण महाप्राण हो जाने से 'क्षी' का 'खी' हो गया है।

गाँव—ग्राम से उत्पन्न यह शब्द मध्य व्यजन 'र्' के लोप तथा 'म्' के सवर्गीय 'व्' मे बदलने से बना है। 'म्' की अनुनासिकता 'गा' मे आ गई है।

गोरू—'गो रूप' से यह शब्द उत्पन्न हुआ है। अन्तिम वर्ण 'प' का लोप हो जाने से यह शब्द शेष रह गया है।

घोडा—घोटक से यह शब्द उत्पन्न हुआ है। मध्य व्यजन 'ट' घोष 'ड्' मे बदला है, फिर 'ड' उत्क्षिप्त 'ड' हो गया है। अन्तिम व्यजन 'क्' का लोप होकर शेष 'अ' 'ट्' के 'अ' मे आ जुडा है। अत 'आ' की उत्पत्ति से घोडा बन गया है।

चीता—चित्रक से चीता बना है। मध्य व्यजन त् तथा ट् लुप्त हो गए है और 'ड' 'ई' बन गया है।

छुरा—छुरक से इसकी उत्पत्ति हुई। क्ष की क+ष् ध्वानियो मे 'ष' के स्थान पर 'छ' हो गया है। फिर 'क्' का लोप होने से 'छु' रह गया

है। इसी प्रकार 'क्' मध्य व्यजन लुप्त हो गया है और उसका 'अ' 'र' मे आ जुडा है।

जनेऊ—यज्ञोपवीत से यह शब्द उत्पन्न हुआ है। 'य', 'ज' मे वदल गया है। 'ज्ञ' का 'ञ्' 'न्' रह गया है तथा 'ज' भाग लुप्त हो गया है। मध्य व्यजन 'प्' 'त्' लुप्त हो गए है तथा 'ओ' सरल रूप मे 'ए' वन गया है। 'व' के अर्ध स्वर मे विकास होने से 'ऊ' हो गया है। यो जनेऊ की उत्पत्ति हुई है।

जमाई—इसका मूल रूप 'जामातृ' है। अन्त्य वर्ण के व्यजन का लोप होकर 'ऋ' 'ई' वन गई है तथा मध्य स्वर 'आ' ह्रस्व हो गया है।

झा—उपाध्याय से घिस कर 'झा' वना है। इसमे आदि, मध्य तथा अन्त के वर्ण लुप्त हो गए है। 'ध्या' मे दन्त्य स्पर्श तथा अन्तस्थ का योग होने से 'य' लुप्त हो गया है और 'ध्' तालव्य 'झ' वन गया है। इस प्रकार घिसते-घिसते उपाध्याय से 'झा' हो गया है।

तेल—'तैल' से तेल वना है, इसमे 'ऐ' का 'ए' होने से विकार उत्पन्न हुआ है।

दियासलाई—दीपशलाका से यह शब्द वना है। 'प' 'व' मे परिवर्तित हो गया है तथा 'व' से य वन गया है। 'का' के मध्य व्यजन का लोप होने से अन्त्य स्वर 'आ' 'ई' वन गया है।

धरम—यह शब्द 'धर्म' से विगड कर धरम वना है। मध्य व्यजन 'र्' मे 'अ' का आगम हो गया है। इसका म० का० आ० भा० मे 'धम्म' रूप मिलता है।

नाच—नृत्य से नाच वना है। 'त्य' मे 'य' का लोप हो गया है तथा स्पर्श 'त्' तालव्य 'च' मे वदल गया है। 'ऋ' का लोप होकर आदि व्यजन 'न्' मे 'आ' का आगम हुआ है।

नेवला—'नकुल' से इस शब्द की उत्पत्ति हुई है। मध्य व्यजन क्' के लोप से उ' स्वर बचा, फिर उ अर्द्ध स्वर होकर 'व' वना। 'न' का 'अ' ए हुआ तथा 'ल' का स्वर 'अ' दीर्घ 'आ' वना। इस प्रकार नकुल से नेवला वन गया।

नैहर—मातृ-गृह से यह शब्द उत्पन्न माना जाता है। लोप और विपर्यय के अनुसार गृह से घर बना है। फिर 'घर' का 'घ' 'ह' मे परिवर्तित होकर 'हर' हो गया है। 'मातृ' से माई वना और माई से 'मै' होकर 'मै' ही 'नै' हो गया है।

पूत—इस का मूल रूप पुत्र है। 'त्र' का 'र्' व्यजन लुप्त हो गया है और 'त्' मे 'अ' का योग होने से 'त' हो गया है। 'पु' का 'उ' दीर्घ होकर 'पूत' वन गया है।

वीफै--यह शब्द वृहस्पति से बना है। 'ऋ' का 'ई' हो गया है तथा 'व' 'व' मे बदल गया है। मध्य व्यजन स् और त् लुप्त होकर ह् और प के योग से 'फ' बन गया है। अन्त्य इ के ए मे परिणत हो जाने से वीफै की उत्पत्ति हुई है।

भभूत--यह शब्द विभूति से उत्पन्न हुआ है। व्यजन-विपर्यय के नियम से मध्य व्यजन 'भ' आदि मे आ गया है तथा आदि एव अन्त्य 'इ' स्वरो का लोप हो गया है। 'व' मध्य मे आकर 'ब' बन गया है।

भौजाई--भ्रातृजाया से इस शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है। 'य' अर्द्ध स्वर 'इ' बना तथा 'या' का दीर्घत्व 'इ' मे आने से 'ई' हुआ। भातृ से भाई और फिर भौ बना। यो भौजाई शब्द उत्पन्न हुआ है।

मूँछ--श्मश्रु से उत्पन्न इस शब्द मे 'श' का लोप होकर स्वर विपर्यय के नियम से अन्त्य स्वर 'उ' आदि व्यजन 'म्' मे मिल गया है। अन्तस्थ और ऊष्म 'श' के सयोग मे 'र्' लुप्त हो गया है। 'श्' सवर्गीय तालव्य रूप मे आ गया है। 'र' अन्तस्थ का द्वितीय वर्ण होने के कारण तालव्य वर्ग का द्वितीय वर्ण 'छ' हो गया है। यो श्मश्रु से मूँछ बन गया है।

मौसी--मातृश्वसा से इसकी उत्पत्ति हुई है। बीच के व्यजनो का लोप होकर मातृ का 'मौ' तथा श्वसा का 'सी' हो गया है।

रैन--'रजनी' से बना है। मध्य तालव्य व्यजन बदल कर 'य' हो गया है और उससे 'र' के 'अ' का योग होकर 'रै' बन गया है।

साँझ--यह शब्द 'सध्या' से उत्पन्न हुआ है। 'ध्या' के स्पर्श और अन्तस्थ लुप्त हुए है तथा अन्तस्थ सवर्गीय तालव्य ध्वनि मे और स्पर्श अपने वर्ग के चतुर्थ स्थान मे रहे है। यो 'ध्या' से 'झ' बना है। संयुक्ताक्षर के लोप से पूर्व स्वर दीर्घ होकर 'सा' बन गया है तथा अनुस्वार 'सा' की अनुनासिकता मे परिवर्तित हो गया है।

साँप--सर्प से यह शब्द उत्पन्न हुआ है। मध्य व्यजन 'र्' का लोप होकर ह्रस्व 'अ' दीर्घ हो गया है। अनुकरण के आधार पर 'सा' मे अनुनासिकता आ गई है।

सुहाग--'सौभाग्य' से यह शब्द उत्पन्न हुआ है। महाप्राण 'भ्' का 'ह्' हो गया है। 'ग्य' के मध्य व्यजन 'य' का लोप हुआ है और 'ग्' मे 'अ' स्वर आ गया है 'सौ' का 'औ' 'उ' मे परिणत होकर सुहाग बन गया है।